ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १७ अंक २

# वेद-ज्योति

माघ २०४९ फरवरी १९९३

अथर्ववेद खण्ड ५६ सामवेद

विश्व वेदपरिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९३, दयानन्दाब्द १६८

शुल्क वार्षिक ४०), आजीवन ४००), विदेश में २५ पौंड, ४० डालर, एक अंक का ४)

सम्पादक- वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ० प्र० २२६००६; दूरभाष ७३५०१ । सहायक- विमला शास्त्री

विषय-सूची—





महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

## दयानन्द के सपनों को साकार करेंगे !

(शान्तिप्रिय 'सौरभ' पुरो. आर्यस० मालवीयनगर दिल्ली)

मिलकर हम सब दयानन्द के सपनों को साकार करेंगे।
शपथ ओम् की निज जीवन में वेदों का उद्धार करेंगे ॥
नहीं लड़ेंगे, नहीं भिड़ेंगे; आपस में हम सब भाई ।
राग-द्वेष की बात भूलकर हर प्राणी से प्यार करेंगे ॥
सब मानव हैं पूज्य सभी का आदर करना परम धर्म है।
आयेंगे जो अतिथि हमारे घर उनका सत्कार करेंगे ॥
घर-घर में ध्वनि ओम की गूंजे मन्त्रों का उच्चारण हो।
वेद-सिद्धान्त जगत में फैले इसी हेतु हम कार्य करेंगे ॥
स्वामी दयानन्द की जय हो, जय हो भारत-माता की।
वेदों का उद्घोष सभी हम इक दूजे के द्वार करेंगे ॥

—०—

इस वर्ष शिवरात्रि १९-२-९३ को है ।

जन्म १८२५ ई० । बोध शिवरात्रि १८३७ ई०

बलिदान दीपावली सं० १९४०, ३०-१०-१८८३ ई०

घर के नाम- मूलशंकर, मूल जी, दयाराम, दयाल जी

परवर्ती नाम शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी, कोलाहल-स्वामी ।
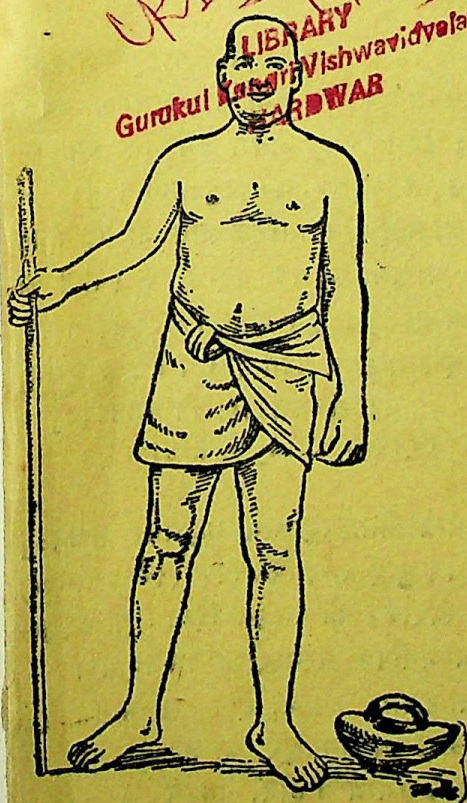
# सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

क्रमाङ्क ८८ । ऋषि वामदेव, देवता इन्द्र, छन्द गायत्री, स्वर षड्ज; विनियोग साम-गान

**कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥**

[ऋ ४-३१-१; यजु २७-३९, ३६-४, साम १६९; ६८२(उ.१.४.१२.१); अथर्व २०- २४-१. ६ वार] .

देखो, ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है—
उपर्युक्त मन्त्र को राहु का कहते हैं, यह मित्र का विधायक है, राहु का वाचक नहीं। अर्थ न जानने से भ्रम-जाल में पड़े हैं।
(सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ११)

महर्षि-भाष्य – किस अतिशय सत्कर्मानुष्ठान वाली उपासना रीति से शुभ गुणों में वर्त्तमान, उस उत्तम गुणालंकृत सभा से प्रकाशित, अद्भुत अनन्त शक्तिमान्, सदा आनन्द से बढ़ता हुआ इन्द्र, परमेश्वर हमारा मित्र जैसे अभिमुख होकर कृपया सदा सहायता करने से हमारा रक्षक हो वैसे ही वह हमें सत्य-प्रेम-भक्ति से सेवनीय है। [ऋ० भा० भू० ग्रन्थ-प्रामाण्याप्रामाण्य-विषय]

ऐसा ही अर्थ अथर्व-भाष्य में स्वश्री क्षेमकरणदास-विश्वनाथ आदि ने किया है।

य २७-३९ का यह आध्यात्मिक अर्थ करके महर्षि ने भाष्य में आधिभौतिक अर्थ किया—

हे विद्वान्! अद्भुत तू सदा बढ़ने वाले का मित्र बन, किसी रक्षादि क्रिया से हमारी रक्षा कर, किसी वर्तना रूप श्रेष्ठ कर्म से हमें नियुक्त कर।

पुनरुक्ति-निवारणार्थ अनेक अर्थ करने चाहिए, अथर्व में यथासम्भव वैज्ञानिक दैविक हों।

## पतञ्जलि का योग दर्शन-शास्त्र २.साधन-पाद (गतांक से आगे)

### ६५. स्वाध्यायाद् इष्ट-देवता-सम्प्रयोगः । ४४

यथार्थ शुद्धभाव, सत्य मानना-बोलना-करना: मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अन्यायाचरण में जाने से रोकना अर्थात् शरीर-इन्द्रिय-मन से शुभ कर्मों का आचरण करना वेदादि सत्य-विद्याओं का पढ़ना-पढ़ाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्म-युक्त कर्मों का नाम तप है। धातु को तप कर चमड़ी को जलाना तप नहीं कहाता। [स० प्र० समुल्लास ११]

अणिमा आदि विभूतियाँ हैं; ये योगी के चित्त में पैदा होती हैं। सांसारिक लोग जो यह मानते हैं कि ये योगी के शरीर में पैदा होती हैं, यह ठीक नहीं है। अणिमा का अर्थ यह है कि (योगी का चित्त) छोटी से छोटी वस्तु को विशेष सूक्ष्म होकर नापने वाला होता है। इसी प्रकार बड़े से बड़े पदार्थ को विशेषकर बड़ा होकर योगी का मन घेर लेता है; इसे गरिमा कहते हैं। ये मन के धर्म हैं, शरीर में इनकी शक्ति नहीं है। [उपदेशमञ्जरी; ११ वाँ उपदेश]

पूर्वोक्त स्वाध्याय से इष्ट देवता अर्थात् परमात्मा के साथ सम्प्रयोग अर्थात् साक्षात् होता है।

## महर्षि दयानन्द सरस्वती [श्री सतीशचन्द्र वर्मा वेदाचार्य, महानगर, लखनऊ]

महर्षि ने योगी-संन्यासी बनकर वेद-भाष्य किया और चैत्र सुदि ५, १९३२ वि० (१०-४-१८७५) को आर्यसमाज स्थापित किया और सत्यार्थप्रकाश रचकर स्वराज्य का सन्देश दिया। गो-करुणा-निधि रचकर गौ-रक्षा के लिए लाखों के हस्ताक्षर कराके प्रार्थनापत्र सरकार को भिजवाये।

अभी ऋषि का कार्य पूरा नहीं हुआ है, उसको पूरा करना हमारा कर्तव्य है। गो-पालन एक उद्योग-रूप में चलाया जाये जिससे बेरोजगारी, दूध-खाद-ऊर्जा की कमी दूर की जा सके।

आर्य-साम्राज्य स्थापित करने के लिए राज्यार्य सभा प्रत्येक आर्य समाज में होनी चाहिये। वेद-प्रचार के लिए आर्यों की ओर आर्य डी० ए० वी० स्कूलों में वेद-संस्कृत [illegible]

# वेदमें सब सत्य विद्यायें (विज्ञान)

## चौदहवीं सत्यविद्या ज्योतिष क्रमागतविद्या ३८-४३

[नक्षत्र-विद्या (ऐस्ट्रोनामी), भूगोल (जियोग्राफी), भूगर्भ (जियोलाजी), गणित (मैथिमेटिक्स)]

क्रमागत ३८ वीं नक्षत्र-विद्या खगोल शास्त्र

**४२५·सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः। अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ।।**

सूर्य अकेला अपनी कीली पर घूमता है और चन्द्रमा फिर उससे उत्पन्न होता है। अग्नि ठण्ड की औषधि है और भूमि बड़ा बीज बोने का क्षेत्र है। [यजुर्वेद २३-१०]

**२६ वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् ।**

**वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ।।** [य २३-६०]

इस यजु० २३- ० में भी चन्द्रमा की उत्पत्ति सूर्य से बतायी गयी है।

**२७ आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।**

**रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ।।** [ऋ ५-४५-६]

इसमें और अन्यत्र भी सूर्य के ७ अश्व (७ रङ्ग की किरणें बतायी हैं।

**२८ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।**

**आ प्राः द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस् तस्थुषश्च ।।**

सूर्य जगत् का आत्मा (गति-दाता) है, वह आश्चर्य-जनक, किरणों का समूह, मित्र-वरुण (हाइड्रोजन-आक्सीजन) और अग्नि का दर्शक; द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष को सब ओर से व्याप्त कर रहा है। [ऋ० १-११५-१, यजु० ७-४२; १३-४६, साम ६-१-३, अथर्व १३-२-३५, २०-१०७-१४]

**२९ अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम् ।**

**अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमाविवेश ।।** [अ ४.११.१]

अनड्वान् (प्राण-धारक परमात्मा और सूर्य) ने पृथिवी-द्यौ-अन्तरिक्ष-दिशाएँ धारण की हैं वह सब भुवन में व्यापक है। अनड्वान् का अर्थ बैल भी है, इससे यह भ्रम फैल गया कि बैल के सींग पर भूमि टिकी है।

**३० शन्नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा। शन्नो मृत्युधूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः।।**

अथर्व १९-९-१०

**३१ यत्त्वा सूर्य स्वर्भानुस् तमसाविध्यदासुरः। अक्षेत्रविद् यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ।।**

**३२ यं वै सूर्यं स्वर्भानुस् तमसाविध्यदासुरः। अत्रयस् तमन्वविन्दन् नह्यन्ये अशक्नुवन् ।।**

ऋ .५-४०-५, ६

इन मन्त्रों में सूर्य-चन्द्र-ग्रहण का वर्णन है। स्वर्भानु राहु-केतु चन्द्र-भूमि की छायाएँ हैं जिनके पड़ने से क्रमशः सूर्य-चन्द्र-ग्रहण होते हैं। भूकम्प से काँपती भूमि, उल्का-पुच्छल तारे शान्त हों। तेजस्वी ग्रह मङ्गल-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-अरुण-वरुण और चन्द्र के ग्रह अश्विनी आदि २८

नक्षत्र कल्याण-कारी हों। सूर्य-चन्द्र-द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष और सुखद लोकों को परमात्मा जगत् के आदि में बनाता है यह ऋ०१०-१९०-३में बताया गया है—

'३ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।

३४ संवत्सरोऽसि परिवत्सरोऽसीदावत्सरोऽसीद्वत्सरोऽसि वत्सरोऽसि ०।।[य २७-४५]

वत्सर (वर्ष) ५ प्रकार के हैं— संवत्सर ३६० दिन का सायन वर्ष, परिवत्सर ३६५ का सौर वर्ष इदावत्सर ३५४ का चान्द्र; इद्वत्सर ३६१ का बार्हस्पत्य और वत्सर ३२४ का नाक्षत्र वर्ष। पूरी सृष्टि और प्रलय प्रत्येक ४३२००००००० चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों की होतीहै — उल्का और धूमकेतुओं का, २८ नक्षत्रों और १२ राशियों का भी वेद में वर्णन है—

३५ शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः।

इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः ।। [अथर्व ८-२-२१]

३६ द्वादश प्रधयश्चक्रमेकं त्रीणि नभ्यानि क उ तच्चिकेत। २

तत्राहतास्त्रीणि शतानि शङ्कवः षष्टिश्च खीला अविचाचला ये।।[अ १०.८.४

३७ सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा।

पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे।।

३८ पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु।

राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्टमूलम्।

३९ अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु।

अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम्।। ४

४० आ मे महच्छतभिषग्वरीय आ मे द्वया प्रोष्ठपदा सुशर्म।

आ रेवती चाश्वयुजौ भगं म आ मे रयिं भरण्य आ वहन्तु।। ५ [अ१९.७]

वैदिक मास १२ मधु-माधव-शुक्र-शुचि-नभः-नभस्य-इष-ऊर्ज-सहः-सहस्य-तपः-तपस्य हैं। १२ नाक्षत्रिक चान्द्रमास चैत्र-वैशाख-ज्येष्ठ-आषाढ-श्रावण-भाद्रपद-आश्विन-कार्तिक-मार्गशीर्ष-पौष-माघ-फाल्गुन जिस नक्षत्र में पूर्णिमा हो या पूर्णिमा में जो नक्षत्र पड़े उसके नाम से हैं।

राशियाँ (सूर्य की संक्रान्तियाँ) १२ मेष-वृष-मिथुन-कर्क-सिंह-कन्या-तुला-वृश्चिक-धनुः-मकर-कुम्भ-मीन हैं। संसार का आरम्भ मेष संक्रान्ति (१४ अप्रैल), चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को हुआ था।

ऊपर १९.७.२-५ में उद्धृत २८ नक्षत्र कृत्तिका-रोहिणी-मृगशिरः-आर्द्रा-पुनर्वसू-पुष्य-आश्लेषा-मघा-पूर्वा फल्गुनी-उत्तरा फल्गुनी-हस्त-चित्रा-स्वाति-विशाखा-अनुराधा-ज्येष्ठा-मूल-पूर्वा अषाढा-उत्तरा अषाढा-अभिजित्-श्रवण-श्रविष्ठा [धनिष्ठा]-शतभिषग्-पूर्वा प्रोष्ठ[भाद्]पदा-उत्तरा भाद्रपदा-रेवती-अश्विनी-भरणी। आज की ज्योतिष में अभिजित् को छोड़कर २७ ही मानते हैं।

ऋतुओं-मासों के नाम और वर्णन यजु अध्याय १३-१४-१५ में हैं। प्रति तीन या ४ वर्ष बाद १ अधिक मास मानकर चान्द्र-सौर वर्ष को बराबर किया जाता है। वेद-वर्णित वर्ष के तीन सौ साठ दिन पृथिवी से चन्द्र के अलग होने पर तीन सौ पैंसठ सही एक बटा चार होने लगे।

येन धर्मः सेव्यते स एव सुखी जायते । जो धर्म का सेवन करता है वही सुखी होता है।

५१ लेख्य-लेखक-प्रकरणम्

मनुष्यो लेखाभ्यासं सम्यक् कुर्यात् । मनुष्य लेख का अभ्यास ठीक करे।

अयमत्युत्तममक्षर-विन्यासङ्करोति । यह अति उत्तम अक्षर लिखता है।

लेखनीं सम्पादय, मसीपात्रमानय, पुस्तकं लिख । कलम बना, दवात ला। पुस्तक लिख।

तत्र पत्रं लिखित्वा प्रेषितं न वा ? वहाँ पत्र लिख कर भेजा वा नहीं ?

प्रेषितं, पञ्च दिनानि व्यतीतानि; भेजा, ५ दिन बीते

तस्य प्रत्युत्तरमप्यागतम् । उसका जवाब भी आगया।

सुवर्णाक्षराणि लिखितञ्जानासि न वा ? सुन्दर अक्षर लिखना जानता है वा नहीं ?

जानामि तु परन्तु सामग्री-सञ्चयने जानता तो हूं परन्तु वस्तुएं इकट्ठी करने

लेखने च विलम्बो भवति । और लिखने में देर होती है।

यद्यङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां लेखनीङ्गृहीत्वा मध्यमो- जो अंगूठा-तर्जनी से कलम पकड़ कर लिखे

परि संस्थाप्य लिखेत्तर्हि प्रशस्तो लेखो जायेत। तो बहुत अच्छा लेख हो।

अयमतीव शीघ्रं लिखति । यह अत्यन्त जल्दी लिखता है।

एतस्य लेखनी मन्दा चलति । इसकी लेखनी धीरे चलती है।

यदि त्वमेकाहं सततं लिखेस्तर्हि कि[illegible] यदि तू एक दिन निरन्तर लिखे तो कितने

श्लोकांल्लिखितुं शक्नुयाः ? श्लोक लिख सकता है?

पञ्चशतानि । पाँच सौ।

यदि शिक्षाङ्गृहीत्वा शनैःशनैर्लिखितुमभ्यसेत् यदि शिक्षा ग्रहण कर धीरे धीरे लिखने का

तर्ह्यक्षराणांसुन्दरं स्वरूपं स्पष्टता च जायेत। अभ्यास करे तो अक्षरों का सुस्वरूप स्पष्टता हो

अस्मिंल्लाक्षारसे कज्जलं सम्मेलितं न वा? इस लाख के रस में काजल मिलाया वा नहीं ?

मेलितं तु न्यूनं खलु वर्तते । मिलाया तो है, परन्तु थोड़ा है।

मनुष्यैर्यादृशः पठनाभ्यासः क्रियेत मनुष्य जैसा पढ़ने का अभ्यास करें

तादृश एव लेखनाभ्यासोऽपि कर्तव्यः । वैसा ही लेख का अभ्यास भी करना चाहिए।

मया वेदपुस्तकं लेखयितव्यमस्त्येकेन मुझको वेद का पुस्तक लिखाना है एक रुपये

रूप्येण कियतः श्लोकान् दास्यसि ? से कितने श्लोक देगा?

अत्युत्तमानि ग्रहीष्यसि चेत्तर्हि शतत्रयम् जो बहुत अच्छे लोगे तो तीन सौ,

मध्यमानि चेच्छतपञ्चकम्, साधारणानि मध्यम तो पाँच सौ, यदि साधारण

चेत्सहस्रं श्लोकान् दास्यामि । लोगे तो हजार श्लोक दूंगा।

शतत्रयमेव ग्रहीष्यामि परन्त्वत्युत्तमं लिखित्वा दास्यसि चेत् ।

तीन सौ ही लूँगा परन्तु बहुत अच्छा लिख कर देगा तो ।

वरमेवङ्करिष्यामि ।

अच्छा, ऐसा ही करूँगा ।

## ५२ मन्तव्यामन्तव्य-प्रकरणम्

त्वं जगत्स्रष्टारं सच्चिदानन्दस्वरूपं परमेश्वरं मन्यसे न वा ?

तू संसार के बनाने वाले सच्चित् और आनन्द-स्वरूप परमेश्वर को मानता है वा नहीं ?

अयं नास्तिकत्वात् स्वभावात् सृष्ट्युत्पत्तिं मत्वेश्वरं न स्वीकरोति ।

यह नास्तिक होने से स्वभाव से सृष्टि की उत्पत्ति को मान कर ईश्वर को नहीं मानता ।

यद्यवङ्कर्तृकार्यं रचक रचनाविशेषान्संसारे निश्चिनुयात्तह्यवश्यं परमात्मानं मन्येत ।

जो यह कर्ता-क्रिया-बनाने वाला और बनावट संसार में निश्चय करे तो अवश्य ईश्वर को माने ।

योऽत्र सृष्टे रचितरचनां पश्यति स जीवः कार्यवत् स्रष्टारङ्कुतो न मन्येत ?

जो यहाँ सृष्टि में पदार्थों की बनावट को देखता है वह कारीगरी के समान उसके बनाने वाले को क्यों न माने ?

यत्रोत्तमा धार्मिका आस्तिका विद्वांसो अध्यापका उपदेष्टारश् च स्युस् तत्र कोऽपि कदाचिन्नास्तिको भवितुं नार्हेत ।

जहाँ श्रेष्ठ धर्मात्मा आस्तिक विद्वान् अध्यापक-उपदेशक हों वहाँ कोई कभी नास्तिक नहीं हो सकता ।

कैः कर्मभिर्मुक्तिर्भवति ? तदा क्व वसन्ति? तत्र किं भुज्यते च ?

किन कर्मों से मुक्ति होती है? तब कहाँ रहते और वहाँ क्या भोगते हैं ?

धर्म्यकर्मोपासना_विज्ञानैर्मुक्तिर्जायते, तदानीं ब्रह्मणि निवसन्ति परमानन्दञ्च सेवन्ते ।

धर्मयुक्त कर्म-उपासना और विज्ञान से मोक्ष होता है । उस समय ब्रह्म में रहते

मोक्षंप्राप्य तत्र सदा वसन्त्याहोस्वित् कदाचित्ततो निवृत्य पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति?

मोक्ष पाकर वहाँ सदा रहते हैं अथवा कभी वहाँसे निवृत्त होकर पुनःजन्ममरण पाते हैं?

प्राप्तमोक्षा जीवास् तत्र सर्वदा न वसन्ति किन्तु महाकल्पपर्यन्तमर्थाद् ब्राह्ममायुर्यावत् तत्रोषित्वानन्दं भुक्त्वा पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्त्येव ।

मुक्ति को प्राप्त जीव वहाँ सर्वदा नहीं रहते किन्तु महाकल्प अर्थात् ब्राह्म आयु तक वहाँ वास कर आनन्द भोग कर फिर जन्म और मरण को अवश्य प्राप्त होते हैं ।

इति श्रीमद्दयानन्द सरस्वती स्वामिना निर्मितः संस्कृतवाक्यप्रबोधः समाप्तः ।

५२२३ जिसके निर्देश में सब गौ-अश्व-ग्राम-रथ, मन-इन्द्रियाँ-शरीर-अंग-प्रत्यङ्ग रहते हैं, जिसने सूर्य-उषा उत्पन्न किये, जो आप: (जल-प्राण-आप्तों) का नेता है, हे सज्जनो ! वह (परमेश्वर) इन्द्र है। ७

२४ जिसको क्रन्दन करने वाले (भू-द्यो लोक, स्त्री-पुरुष) संयत होकर अनेक प्रकार से पुकारते हैं,दूर-पास के दोनों प्रकार के अमित्र जिससे मित्रता के लिए विह्वल रहते हैं; एक-जैसे रथ में बैठे नाना योद्धा जिसे बुलाते हैं; वह सेनापति इन्द्र है। ८

२५ जिसके विना जन विजयी नहीं होते, युद्ध करते हुए जिसे रक्षा के लिए लेते हैं, जो विश्व की निर्मात्री हुई, जो न गिरने वाले (दुर्गों) का गिराने वाली है वह (विजली) ... । ९

२६ जो न्याय से महापापी नास्तिकों का नाश करता, बलात्कारी की हिंसक क्रिया का अनुमोदन नहीं करता, दुष्ट का हनन-कर्ता है, वह (सम्राट) ०। १०

२७ जो पर्वतों में स्थित जलमय हिम-राशि (ग्लेशियर), मेघों में जमे-रुके जल (अनावृष्टि), मासों में रहने वाले चन्द्र को ४० वें शरद् (वर्ष) में प्रस्तुत कराता, फिर अपने स्थान पर लाता है। [४० वर्ष के बाद ग्लेशियर पिघलता, सुवर्षा अवश्य होती, चन्द्र अपने स्थान पर आता है; शिष्य पर्वतों में ४० वर्ष रह, विद्या पढ़ कर विप्र आदित्य ब्रह्मचारी बनता है।] जो उमड़े-सोये पड़े जलद मेघ को मार गिराता, हे जनो ! वह सूर्य इन्द्र है। ११

२८ जो उस शम्बर (ग्लेशियर-मेघ-चन्द्र-ब्रह्मचारी) को अचल शासन वाली किरणों से तार देता और सोम पीता-पिलाता, जो पर्वत पर अनेक याज्ञिकों का मूर्छित सा कर देता है, वह सूर्य ०। १२

२९ जो ७ रश्मि वाला, जल-वर्षक, बली, बहने के लिए ७ प्रकार की नदियाँ नीचे गिराता है, जो द्यौ में बढ़े, बिजली-वज्र-धारी मेघ को कँपा कर भूमि पर फेंकता वह सूर्य ०। १३

[७ किरण (बिल्लौर) चित्र कपिश-आसमानी-नीली-हरी-पीली-नारगी-लाल हैं।]

३० इनके लिए द्यौ-पृथिवी भी झुकते हैं; इस की गरमी से ही पहाड़-मेघ डरते हैं, जो सोम-तत्त्व पीता, चयन किया गया, वज्र-समान बाहु वाला हाथ में शस्त्र लिए (राजा) है वह ०। १४

३१ जो रक्षा द्वारा अन्न-उत्पादक-पाचक-उपदेष्टा-श्रोता को बचाता है, ब्रह्म-सोम जिसको बढ़ाते, जिसका यह धन है; हे जनो ! वह [धनी वैश्य] इन्द्र है। १५

३२ माता-पिता की गोद में उत्पन्न वह बच्चा भी जिसे बता देता है जो किसी दूसरे को भूमि का जनक नहीं जानता, हम से स्तुत जो देवों के व्रत जानता है वह (वायु) इन्द्र है। १६

३३ जो सोम की कामना वाला, अश्वों का स्वामी, प्रेरक है, जिससे सब भुवन डरते हैं, जो हिम-गरमी को दूर करता, अकेला ही वीर है, हे जनो ! वह [शूद्र-शिरोमणि] इन्द्र है। १७

३४ जो अन्नोत्पादक-पाचक के लिए धारण करता, अन्न देता, वह [किसान] सच्चा इन्द्र है। हे विश्व-व्यापी इन्द्र ! हम तेरे प्रिय-वीर बने रहें और वेद-ज्ञान का प्रचार करते रहें। १८

सूक्त ३५। इन्द्र। ऋ० १-६१

**५२३५ अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।**
**ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा॥ १**

**३६ अस्मा इदु प्रय इव प्र यंसि भराम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।**
**इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त॥ २**

५२३७. अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्याङ्गूषमास्येन ।
मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३

३८ अस्मा इदु स्तोमं संहिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।
गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४

३९ अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा समञ्जे ।
वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५

४० अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय ।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस् तुजता कियेधाः ॥ ६

४१ अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना ।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७

४२ अस्मा इदु ग्नाश्चिद् देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः ।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८

४३ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस् पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात् ।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ९

४४ अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १०

४५ अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन् तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११

४६ अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः ।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२

४७ अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्य उक्थैः ।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३

४८ अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस् तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद् वीर्याय नोधाः ॥ १४

४९ अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः ।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः ॥ १५

५२५० एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन् ।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ १६

५२३५ इसी बली-शीघ्रकारी-महिमायुक्त-स्तुतियोग्य-अबाधगति इन्द्र के लिए ही मैं प्रशंसा युक्त वचन और विज्ञान-वार्ताएँ प्रयुक्त करता हूं। १

३६ उसी के लिए मैं तृप्ति-कारक अन्न के समान, बाधा दूर करने के लिए उत्तमता से लेजाने वाले, प्रशंसनीय निर्दोष यान और घोष-युक्त साम-गान भेंट करता हूं। तुम उस श्रेष्ठ रक्षक-पति के लिए हृदय से ज्ञान द्वारा अपनी बुद्धियों और कर्मों को शुद्ध करो। २

३७ उसी के लिए मैं उस उपमा-योग्य, सुखद साम-गान अपने मुख से प्रयुक्त करूँ जो स्तोताओं की निर्दोष वचनों और सुन्दर निर्दोष प्रयोगों से सब की वृद्धि के लिए हो। ३

३८ उसी वाणी-वाहक के लिए मैं निर्दोष, स्व-सुखद प्रशंसा-वचन प्रेरित करता हूं जैसे शिल्पी रथ को बनाता है। विद्युद्-यान बनाने के लिए भी शत्रु-नाशक वचन कहता हूं। ४

३९ इस संसार के लिए ही, वेगवान् अश्ववत् उस वाणी से स्तुत्य-वीर-ऐश्वर्य के स्थान-यशस्वी दुर्ग-भञ्जक की प्रशंसा के लिए अन्न-ऐश्वर्य-कामना से सब के सामने वन्दना करता हूं। ५

४० उसी से शिल्पी युद्ध के लिए अधिक शक्तिशाली, अति ताप-जनक वज्र बनाता है जिस से शत्रु-नाश करता हुआ कितने ही अस्त्र-धारक सेनापति अरि-मर्मों तक पहुँच जाता है। ६

४१ उसी निर्माता के ऐश्वर्यों में व्यापक-अधिकार-सम्पन्न मैं पालक राज्य और उत्तम अन्न पाऊँ। वह बली सेनापति उसको गुप्त रूप से पाता हुआ उत्तम आहार-समान अभेद्य अरि को भी बींध देता है जैसे सूर्य मेघ को और अस्त्र-धारी जंगली सुअर को। ७

४२ इसी इन्द्र के लिए वेग से जाने वाली विजयी जनों की सेनाएँ शत्रु-[illegible] [illegible] का आश्रय लेती हैं। वह विशाल द्यौ-पृथिवियों को वश में रखता है; वे उसकी महिमा नहीं पातीं। ८

४३ इसी का सामर्थ्य द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष में अधिक बढ़ा हुआ है। स्वयं दीप्त सूर्य विश्व को वश में करने वाला, रोगों का उत्तम अरि, अपरिमित बली होकर घर में रोगों से रण के लिए आता है। ९

४४ इसी के बल से सूर्य बली मेघ को किरणों से काट देता है, जल से घिरी भूमियों को छुड़ाता है जैसे ग्वाला गौओं को, और सुख-दान में सचेत होकर अन्न आदि देता है। १०

४५ इसी के बल से सिन्धु रमणीय हैं, जिन्हें बिजली ने वज्र से भूमि के चारों ओर बनाया है। दानी को ईश बनाने वाली, दाता, शीघ्र गति के लिए शत्रु शक्ति-नाशक बिजली कार्य को सुगम बना देती है। ११

४६ अनेक गुणों का धारक, शीघ्रकारी सूर्य जल-प्रवाह बढ़ाने के लिए इसी [illegible] किरणों का प्रहार कर तिरछे प्रकाश-वेग से उसे काट देता है जैसे वाणी के वर्ण अलग किये जाते हैं। १२

४७ इसी शीघ्रकारी बिजली के श्रेष्ठ कामों का तू प्रवचन कर जो प्रशंसनीय होकर युद्ध के लिए शस्त्रास्त्र चलाती हुई बिना रुके अरिओं का नाश करती है। १३

४८ इसी बिजली-सूर्य के भय से दृढ़ पर्वत-मेघ-द्यौ-भूमि-मनुष्य काँपते हैं। उस तेज वाली को पाल में रखकर नायक भी संकेत देता हुआ शीघ्र पराक्रम करने के लिए समर्थ होता है। १४

४९ इसी इन्द्र के लिए यह प्रशंसा की जाती है कि वह बड़ी शक्ति वाला अकेला ही शासक है। वह उत्तम व्यापक किरणों वाले सूर्य में स्पर्धा करने वाली अश्वशक्ति देता और रक्षा करता है। १५

५२५० हे इन्द्र! तेरे स्तोता इसी तरह अश्वशक्ति-याजक, निर्दोष स्तुतियाँ किया करते हैं। इनमें बुद्धि-धनी तू विश्व-निरूपक बुद्धि धारण करा और सदा शीघ्र गति किया कर। १६

सूक्त ३६। इन्द्र। [ऋ० ६-२२]

६२५१. य एक इद्धव्यश् चर्षणीनामिन्द्रं तङ्गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्॥ १

५२ तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम्। २

५३ तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान् तमा भर हरिवो मादयध्यै॥ ३

६२५१ इस इन्द्र का मैं इन वाणियों से आदर करता हूं— अकेला ही मनुष्यों से ग्राह्य है, श्रेष्ठ-बली-सत्य-सर्वत्र-बहुरूप है; सब का पराभव करने वाला रक्षक है। १

५२ हमारे श्रेष्ठ रक्षक और नये शिष्य, सातों वेद-छन्दों के ज्ञाता विद्वान् उसी दोष-नाशक, मेघों में विद्यमान बली (बिजली) का वर्णन किया करते हैं। २

५३ हम उस इन्द्र से उसका ऐश्वर्य मांगते हैं जो बहुत वीरों से प्राप्य, उत्तम नेता वाला, बहुत सम्पदा-युक्त है, जो ईश्वरशक्ति-युक्त; बड़ी आयु वाला, निर्बल न होने वाला, प्रकाश-युक्त है। हे अच्छे जनों-सहित वर्तमान विद्वान! तू उसे सब प्रकार प्रयुक्त कर। ३

५४ तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः॥ ४

५५ तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ॥ ५

५६ अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन।
अच्युता चिद्वीलिता स्वोजो रुजो वि दृढा धृषता विरप्शिन्॥ ६

५७ तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि॥ ७

५८ आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा।
तपा वृषन् विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च॥ ८

५९. भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस् त्वेषसंदृक्।
धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः॥ ९

६०. आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम्।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि॥ १०

६२६१ स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक्॥ ११

५२५४ हे इन्द्र ! यदि तेरे ज्ञान-सुख को उपदेष्टा-अध्यापक पहले से प्राप्त रहे हैं तो उसे हमें भी दे। कठिनता से कार्य न हारने वाला, बहुतों से अपनाया गया, बहुत ऐश्वर्यों वाला तेरा कौनसा बल नाशक और कौन सा जीवन-दायक है ? ४

५५ उस शस्त्रास्त्र-युक्त, वाहन-युक्त बिजली को पूछते-बताते जिस (वैज्ञानिक) की वाणी बेरोक चलती, बुद्धिमती, शक्ति-शाली है वह बहुतों को वश में करने वाली, कार्य-साधक, वेग-युक्त बलदा, महान् बिजली और भूमि को अन्नादि के लिए अच्छे प्रकार पाता है। ५

५६ हे स्व-शक्ति-युक्त सुपराक्रमी; महागुणी ! तू स्वबल से मन-समान वेग वाले, पर्वत-समान दृढ़ शस्त्र से बढ़ते अरि और उसके अचल-दृढ़ नगरों का नाश कर देता है। ६

५७ हम उस बलिष्ठ (बिजली) का नवीनतम वाणी-कर्म से उपयोग करें जो बिना परिमाण की उत्तम चालक है वह सब सङ्कटों से हमें पार करती है। ७

५८ हे बलिष्ठ ! तू पृथिवी-आकाश-अन्तरिक्ष-जल प्रकाशित कर, विज्ञान-द्वेषी, द्रोही जन को सन्तप्त करके शोक-युक्त कर। ८

५९ हे अविनाशी-प्रकाशमान ! तू विजिगीषु -पार्थिव जगत् को प्रकाश दिखाने वाला है; दायें हाथ में शस्त्र धारण कर सब क्रियायें कर शत्रु की कपट भरी चालें नष्ट कर। ९

६० हे शस्त्र-धारी ! तू संयम-सहित कल्याण कर, अरि-नाशार्थ अविनश्वर सामान तय्यार कर जिससे दस्युओं को आर्य और मानव-धर्म को उत्तम वृद्धि-युक्त बनाया जा सके। १०

६१ हे बहु-प्रशंसित, सुप्रयोज्य, वैरी-नाशक देव ! सब से स्वीकरणीय, मिश्रण-अमिश्रण की उन गतियों से हमें मिल जिन्हें अविद्वान् नहीं जानता। तू मेरे सम्मुख शीघ्र प्रकट हो। ११

सूक्त ३७। इन्द्र (ऋ० ७-१९)

५२६२ यस् तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश् च्यावयति प्र विश्वाः ।
य: शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ १

६३ त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस् तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥ २

६४ त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥ ३

६५ त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युञ्चुमुरिं धुनिञ् चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥ ४

६६ तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत् पुरो नवतिञ्च सद्यः ।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ् च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥ ५

६७ सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥ ६

५२६८ मा ते अस्यां सहसावन् परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस् तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥ ७

५२६९. प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ८

७० सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणींरदाशन्नस्मान् वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥ ९

७१ एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥ १०

७२ नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस् तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान् मिमीह्युप स्तीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ११

५२६२ जो तीक्ष्ण सींग के बैल, तेज किरण के सूर्य, तेज लहर की बिजली के समान भयंकर एक ही सब जनों को विचलित कर देता है; वह तू सदा अदानी के धन का नियन्ता होकर दूसरे उत्तम-उत्तम के लिए धन दे देता है। १

६३ हे इन्द्र (सम्राट्) ! तू वह शस्त्र-बल पा, प्रजा की सेवा करता हुआ युद्ध में सेना-बल से इस पृथिवी के जनों के उपकारार्थ, इस शुद्र के लिए शिक्षा देता हुआ नाशक-शोषक-अन्न-दूषक को दण्डित कर । २

६४ हे नर्भय ! तू अपने प्रभाव, सब रक्षा-साधनों से अन्नादि-रक्षक उत्तम दानी की रक्षा कर, तू दुष्ट-हत्यार्थ बहु-शस्त्र-धारी, दस्यु-त्रासक की क्षेत्रों के विभाजन में रक्षा कर । ३

६५ हे अश्व-शक्ति-सम्पन्न, नरों द्वारा नर-रक्षार्थ मन वाला तू देवों की रक्षा में बहुत से बाधक दुष्टों का नाश करता है, कँपाने वाले घातक चोर-डाकू को मारकर सुला दे । ४

६६ हे वज्रधारी ! तुझ में शत्रु-च्युत करने वाले वे बल हों कि ९९ (असंख्य) शत्रु-दुर्गों का नाश कर सके और सैनिक-बस्ती में सौवें नगर में घुसकर, न छोड़ने वाले को मारे । ५

६७ हे बहुत शक्ति-युक्त इन्द्र ! तेरे वे भोजन कर-दाता दानी के लिए सदा रहते हैं । तेरे वाहन में बली अश्व और बिजली जोड़ता हूं, वेद-वाणियाँ अन्न-बल से युक्त हों । ६

६८ हे बली-अश्वपति ! तेरी इस स्तुति में हम पापों के वश में न हों; तू अघातक कवचों और सेनाओं द्वारा हमें बचा, हम विद्वानों में तेरे प्रिय हों । ७

६९ हे धनी ! हम तेरे प्रिय सखा नर तेरी शरण में सिद्धि पर हृष्ट हों । तू अतिथि-सत्कार के लिए निकटस्थ प्रशंसनीय पुरुष को नियुक्त कर । ८

७० हे पूज्य ! वेद-व्याख्याता नर तेरी सिद्धि पर सदा शीघ्र ही वेदोपदेश किया करें । जो हम हवियों से तेरी स्तुतियाँ करते हैं उन्हें तू योग्य पदों के लिए स्वीकार कर । ९

७१ हे नरों में श्रेष्ठ नेता ! तेरे लिए हमारे ये प्रशंसा-वचन हमें धन दें । पापियों के विनाश में शूर तू नेताओं का रक्षक सखा हो । १०

७२ हे स्तुत शूर इन्द्र ! सबको उत्साहित करता हुआ तू ज्ञानी होकर अपने शरीर और रक्षा से हमें बढ़ा; हमें अन्न-बल दे, हे वीरो ! तुम सदा कल्याणों से हमारी रक्षा करो । ११

## अनुवाक ५

विषय- इन्द्र- सोम-प्रार्थनादि पदार्थविद्या; इन्द्रेश्वरादि पदार्थविद्या; सूर्येश्वर-स्तुत्यादि पदार्थ-विद्या, इन्द्र-सूर्येश्वर-प्रार्थनादि पदार्थविद्या; इन्द्रेश्वर-धारणादि विद्या, त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः। विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असीत्यादि इन्द्रेश्वर-सख्यादि पदार्थविद्या।
—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

सूक्त ३८ । इन्द्र

५२७३-७५. आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हिः सदो मम ॥ १

[यह ६ बार आया है, साम १६१, ६६६ में भी है, यह और अगले दो मन्त्र आ०, ब्र० पहले २०.३ में, आगे ४७ में, और ऋ० ८.१७.१-३ में भी ३-३ बार आये हैं ।]

७३ हे बिजली ! आ, हमने तेरे लिए यन्त्र तय्यार किया, इसे स्वीकार कर मेरे घर में स्थित हो ।१
७४ ,, तुझे विज्ञान के साथ लगायी २ (ऋण-धन) शक्तियाँ तरंगित हुयीं धारण करती हैं, हमें वेदमन्त्र (रेडियो से) सुना । २
७५ हे बिजली ! हम तेरा उपयोग लेते हैं, उत्तम पुत्र वाले हम तुझे बुलाते हैं । ३

७६ इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः । इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ ४
७७ इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा । इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ ५
७८ इन्द्रो दीर्घाय चक्षसे आ सूर्यं रोहयद्दिवि । वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ६

७६ गायक-विचारक साम-ऋग्वेदी मन्त्र-कर्म-सामगानों से इन्द्र के ही गुण वर्णन करते हैं । ४
७७ शक्तियुक्त-हितकारी इन्द्र ही दो हरियों [ऋण-धन] से मिल कर वाणी प्रकट करता है । ५
७८ इन्द्र [बिजली-चुम्बक] दूर तक देखने-दिखाने के लिए सूर्य को द्यौ लोक में चढ़ाता है जो मेघ को विशेष प्रेरणा देता है । ४

[ये तीन मन्त्र आगे भी ४७.४-६, ७०.७-६; ऋ १.७.१-३ में, सब ४-४ वार आये हैं ।]

सूक्त ३९ । इन्द्र

७९ इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः । अस्माकमस्तु केवलः ॥ १

८०-८३ [के ४ मन्त्र व्यन्त०-उद्०-इन्द्रेण०-अपा० पहले २०.२८.१-४ में पृष्ठ ६१८ पर आये हैं।]

सूक्त ४० । इन्द्र

८४ इन्द्रेण सं हि दृक्षसे संजग्मानो अबिभ्युषा । मन्दू समानवर्चसा ॥ १
८५ अनवद्यैरभिद्युभिर्मखः सहस्वदर्चति । गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥ २ [आगे भी ७०.३-४]
८६ आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे । दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ३ [ ,, ६९-१२]

८४ वायु के साथ संयुक्त सूर्य हमें सम्यक् दिखाई देता है, वे दोनों समान बल से हर्ष-प्रद हैं । १
८५ यज्ञ सूर्य की निर्दोष-प्रकाशमान-काम्य किरणों और वायु के साथ बलवान् होता है । २
५२८६ फिर वे यज्ञ-योग्य देश-पदार्थ-शक्ति पाकर बादल का गर्भ बना कर वर्षा किया करते हैं । ३

[ये अन्तिम दो मन्त्र ऋ के १.६.७-८ भी हैं, तथा पूरा सूक्त यहाँ आगे ७०.३-४ और ६९-१२ है ।]

सूक्त ४१ । इन्द्र

५२८७ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ।। १
८८ इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् । तद् विदच्छर्यणावति ।। २
८९ अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम् । इत्था चन्द्रमसो गृहे ।। ३

८७ अप्रतिष्कुत, न हटा इन्द्र (सूर्य-मण्डल) धारक वायु की अस्थिर शक्तियों से ९९ (असंख्य) वृत्रों (आवरण-कर्ता मेघों) को हनन करता (गति देता) है। १

८८ शीघ्रगामी मेघ का जो सिर (उच्च भाग) पर्वतों पर आश्रित रहता है उसे चाहता हुआ वह सूर्य छिन्न-भिन्न करने के स्रोत आकाश में उसे पाता है । २

८९ यहीं पर वैज्ञानिक जन गौ (पृथिवी) का प्रसिद्ध त्वष्टा (सूर्य) के आधीन गृह होना, और इसी प्रकार चन्द्रमा के घर में (सूर्य-किरणों का जाना) मानते हैं । ३

[ये ३ मन्त्र ऋ० १.८४.१३-१५ में, और अगला सूक्त ४२ भी वहाँ ८-७६-१२, ११, १० में ] है।

सूक्त ४२ । इन्द्र

९० वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ।। १
९१ अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद् दस्युहाभवः ।।
९ उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ।। ३

९० मैं ८ व्याप्त पद वाली वाणी [४ वेद-४ उपवेद, २ प्रकार के नाम (जाति-व्यक्ति वाचक), २ प्रकार के आख्यात (अकर्मक-सकर्मक; आत्मने-परस्मैपद), उपसर्ग, और ३ प्रकार के निपात (उपमार्थ कर्मोपसंग्रहार्थ और पद-पूरणार्थ) ], जो नयी-प्रशंसनीय-सत्य प्राप्त कराने वाली है, उसे इन्द्र (बिजली) से फैलाकर प्राप्त करूँ और जानूँ । १

९१ बिजली जब दुष्ट-नाशक हो जाती है तो द्यावा-पृथिवी (पुरुष-स्त्री) उसके पीछे अनुकूल हो कर समर्थ हो जाते हैं। २

९२ अपनी शक्ति से उच्च स्थिति-प्राप्त बिजली सोम-तत्त्व पाकर बली सेना में प्रयुक्त की जाकर उसका सञ्चालन करती है । ३

सूक्त ४३ । इन्द्र । (ऋ० ८.४५.४०-४२)

९३ भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर ।। १
९४ यद्वीलाविन्द्र यत् स्थिरे यत् पर्शाने पराभृतम् । ,, २
९५ यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । ,, ३

९३ हे इन्द्र! तू सब द्वेषियों को दूर भगा, बाधाओं -शत्रुओं का नाश कर,उस चाहने-योग्य धनको दे। १
९४ हे इन्द्र ! जो धन वीर-सेना-स्थिर जन-मेघ-विकट स्थान में है वह, ,, । २
५२९५ (,,) विश्व के मनुष्य तेरे दिये जिस बहुत दान को जानते-पाते हैं वह, ,, । ३

[ये मन्त्र ऋ० मण्डल ८ के सूक्त पैंतालीस के चालीस-इकतालीस-बयालीस में भी हैं। ]

सूक्त ४४ । इन्द्र । [ऋ० ८-१६]

५२९६. प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १

९७ यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥ २

९८ तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३

सेनाओं में दीप्त, नायक, नरों को वश में करने वाली अत्यन्त श्रेष्ठ विद्युत का वाणियों से वर्णन करो।

जिसमें सब सुनने-कहने-योग्य गुण-प्रवाह, समुद्र में जल-तरङ्ग-समान, विद्यमान हैं।

उस दीप्त, युद्ध में लाभ के लिए काम करने वाली, वेगयुक्त, ज्योतिर्मय बिजली का वर्णन-प्रयोग करूँ।

सूक्त ४५ । इन्द्र ( ऋ१-३० )

९९ अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम् । वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ १

५३०० स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते । विभूतिरस्तु सूनृता ॥ २

१ ऊर्ध्वस् तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन् वाजे शतक्रतो । समन्येषु ब्रवावहै ॥ ३

हे प्रयोक्ता तेरा ही है। बन्दरगाह पर जल के जहाज-समान सङ्गत हो। तू हमारे वचन सुन।

हे धन-पति, वाणी-वाहक, ! तेरी विभूति सच्ची है। तेरी प्रशंसा हो।

हे सैकड़ों कर्म करने वाली बिजली ! तू इस युद्ध में हमारी रक्षा के लिए उच्च होकर रह।

अन्यों में हम दो (तार-दूर-भाष से)बात किया करें।

सूक्त ४६ । इन्द्र ऋ ८-१६-१०-१२

२ प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु । सासह्वांसं युधामित्रान् ॥ १

३ स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः । इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥ २

४ स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च । अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ ३

अच्छे प्रकार उत्तम ऐश्वर्य देने वाली, युद्धों में प्रकाश-दायक, शत्रु-नाशक बिजली का प्रयोग हो।

अनेक रीति से प्रयुक्त पालक बिजली नावों से कल्याण करती है; सब शत्रुओं से पार लगाती है।

हे बिजली ! वह तू हमें अपनी शक्तियों से सुख दे; मार्ग दिखा, अच्छे प्रकार सुख की ओर ले चल।

सूक्त ४७ । इन्द्र

५ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे । स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १

६ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः । द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ २

७ गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः । ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ३

८—१० इन्द्रमिद्० [ बार— पहले क्रमांक ५२७६—७८, आगे २०-७०। ऋ १.७.१-३]

११—१३ आ याहि० [६ बार— ,, ५२२७-२९, ५३७३-७५ ऋ८-१७, सा १९१,... ]

१४—१६ युञ्जन्ति० [६ बार— ,, ५१८३-८५, आगे ५४५७—५९, ऋ१-६। य२३-५-७ सा१४६५

१७-२५ उदु त्यं० से अयुक्त० तक ९ [पहले १३-२-१६—२४ क्रमाङ्क ५२७९-८७ तक]

ऋ १-५०-१—९। य ७-४१।८-४१।३३-३१-३२। साम १—५। ६-१४-१३

५३०५ उस विद्युत को हम बड़ा शत्रु मारने के लिए वेगयुक्त करते हैं, वह बली-सुख-वर्षक हो।१
६ वह बली होकर शत्रु-दमन, हर्ष-प्राप्ति में प्रयुक्त की जाती, द्युति-युक्त-प्रशसंनीय और अन्नदाता है।२
७ वज्र-समान वह वेद-वाणी से पुष्ट, बली, न नाश-योग्य, गतिशील-बेरोक होकर भार ढोती है।
८-१० [अर्थ पहले २०-३८ में पृष्ठ ६२६ पर है।] ४-६
११-१३[ ;; ]७-६
१४-१६ २३ के ३-८ ६१७ पर । १०-१२
१७-२५ १३.२.१६-२४ में पृष्ठ ४४५ पर है। १३-२१

सूक्त ४८। सूर्य-गौ

५३२६ अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः। अभि वत्सं न धेनवः ॥ १
२७ ता अर्षन्ति शुभ्रियः पृञ्चन्तीर्वर्चसा प्रियः। जातम् जात्रीर्यथा हृदा ॥ २
२८ वज्रापवसाध्यः कीर्तिर्म्रियमाणमावहन्। मह्यमायुर्घृतं पयः ॥ ३
२९ आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ४
३० अन्तश्चरति रोचना अस्य प्राणादपानतः। व्यख्यन्महिषः स्वः ॥ ५
३१ त्रिंशद्धामा वि राजति वाक् पतङ्गो अशिश्रियत्। प्रति वस्तोरहर्द्युभिः ॥ ६

जैसे गौएँ बच्चे को दूध से सींचती हैं वैसे ही सब ओर से आती वाणियाँ सूर्य को वर्च से। १
वे शुभ्र-प्रिय वाणियाँ वर्च-सहित तुम्हारे सम्पर्क करती हैं जैसे माताएँ बच्चे को हृदय से। २
शक्ति-पवित्रता-पूर्ण वह मृत-समान मुझे यश-आयु-घी-दूध देता है। ३
नाना रूप-रङ्ग वाली यह पृथिवी अन्तरिक्ष में माता-जल-सहित पूर्व-ओर पिता-सूर्य की परिक्रमा किया करती है। ४
प्राण-अपान-क्रिया करते हुए वह सूर्यज्योति संसार के अन्दर व्याप्त होती है, महान सूर्य द्यौ में गति करता है। ५
सूर्य दिन-रात ३० मुहूर्तों में किरण-सहित प्रति-घर प्रति-दिन विराजता है। ६

सूक्त ४९। इन्द्र

३२ यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः। सं देवा अमदन् वृषा ॥ १
३३ शक्रो वाचमधृष्टायोरुवाचो अधृष्णुहि। मंहिष्ठ आ मदर्दिवि ॥ २
३४ शक्रो वाचमधृष्णुहि धामधर्मन् विराजति। विमदन् बर्हिरासरन् ॥ ३
३५ तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रङ्गीर्भिर्नवामहे ॥
३६. द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतङ्गिरिं न पुरुभोजसम्।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ।।५
५३७ तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥ ६

५३३८ येना समुद्रमसृजो महीरपस् तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥ ७

जब वर्षक बली सूर्य प्रकाश फैलाता है तब समर्थ देव वाणी-आरोहण (साम-गान) को करते और आनन्द पाते हैं । १

शक्ति-शाली होकर अजेय सूर्य के लिए वाणी का प्रयोग कर, शक्ति-हीन न बन, महान् वह द्यौ में प्रकाशमान होता है । २

(हे मनुष्य !) शक्तिमान् तू वाणी अशक्त न कर । वह प्रत्येक धारण-योग्य व्यवहार में विराजता है, प्रकाशमान होकर अन्तरिक्ष में प्रकट होता है । ३

जैसे गौएँ बच्चे के प्रति प्रेमपूर्वक रम्भाती हैं वैसे ही हम दुःख-नाशक, क्लेशहारी, धन से आनन्द-दायक इन्द्र को अपने वचनों से प्रशंसा करते हैं । ४

द्यौ में स्थित, उत्तम दानी, शक्तियों से युक्त, मेघ-समान अन्न-दाता, पर्वत-समान अचल, सैकड़ों हजारों लोकों के स्वामी, उत्तम-किरण-युक्त सूर्य पाकर हम (स्वास्थ्य की) याचना करें ५

मैं तुझ से उस उत्तम वीरता और अन्न की याचना करता हूं जिससे पूर्व-ज्ञान के लिए यत्न-शील तू परिपक्व-मेधावी की हितकारी धन में रक्षा करता है । ६

हे इन्द्र (सूर्य) ! क्योंकि तू समुद्र में जल बढ़ाता है वह तेरा वर्षा-कारी सामर्थ्य है जिसे द्यौ-भूमि निरन्तर चाहते हैं । इस की वह महिमा आजतक किसी ने नहीं पायी । ७

सूक्त ५० । इन्द्र

५३३९ कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥ १

४० कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥ २

सूक्त ५१ । इन्द्र

जीवों में कौन मनुष्य प्रशंसनीय है जो शीघ्र इसके कर्म की प्रशंसा कर सके ? प्रशंसा करते हुए भी हम इसकी ऐश्वर्य-महिमा नहीं जान सकते । १

हे विद्वन् ! कितने स्तोता सत्य-धर्म चाहते हैं ? कौन मन्त्र-द्रष्टा सब प्रकार विचार कर सकता है ? हे इन्द्र ! तत्त्व पाने के इच्छुक स्तोता की पुकार तक तू कब कैसे पहुंचता है २

सूक्त ५१ । इन्द्र (सूर्य-विद्युत्)

४३४१ अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १

४२ शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २

४३ प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ ३

४३४४ शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ ४

५३४१ यथार्थ ज्ञान के लिए उत्तम धन-दाता उस इन्द्र के गुण वर्णन कर जो महाधनी स्तोताओं के लिए हजारों प्रकार से देता है । १

४२ वह सैकड़ों सेनाओं-समान धर्षक तेजसे आगे बढ़ता, दानी के लिए मेघों का नाश करता है। बहुत अन्न-दाता मेघ-समान उसके रस-दान सबको सींचते रहते हैं। २

४३ अभीष्ट पाने के लिए उस विख्यात सुधनी शक्ति-शाली के गुण-वर्णन कर जो तत्वज्ञ स्तोता के लिए हजारों प्रकार से मन-चाहा धन देता है। ३

४४ उस इन्द्र की शक्तियाँ-अस्त्र-शस्त्र सैकड़ों सेनाओं में काम आते, दुर्लंघ्य हैं और महान् अन्न सम्यक् पार लगाने वाले हैं। जब मेघ-समान वह गति-युक्तों में अन्नादि भोज्य पदार्थ देता है तो वे बढ़कर हृष्ट होते हैं। ४

सूक्त ५२ । इन्द्र (सेनापति)

४५ वयङ्घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥ १

४६ स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आगम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥ २

४७ कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद् वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३

हे दुष्ट-नाशक (सेनापति) ! सोम वाले हम वृद्धि पाने वाले प्रशंसक, जल-समान पवित्र धाराओं में बहते हुए तेरी सेवा में छाया करें । १

हे श्रेष्ठ ! प्रशंसक जन सोम बनने पर तुझको पुकारते हैं, तू तृषित होकर घर पर सोम-पानार्थ, सुन्दर तालाब को तृषित बैल-समान, कब आया करेगा ? २

हे निर्भय ! तू मेधावियों द्वारा चाहा, हजारों का उपकारी दृढ़ बल हमें दिला, हे धनी दूरदर्शी! हम तुझ से वाणी-सम्पन्न तेजस्वी रूप शीघ्र पावें । ३

सूक्त ५३ । इन्द्र

४८ क ईं वेद सुते सचा पिबन्तङ्कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥ १

४९ दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महाँश्चरस्योजसा ॥ २

५६५० य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥ ३

४८ इस संसार में उसे कौन जान सकता है जो मेल के साथ तत्त्व-रस पीता है। वह कितना सामर्थ्य रखता है जो तेजस्वी-मुख होकर शत्रु-किले सरलता से तोड़ देता है । १

जैसे जंगली हाथी मद से बहुत तोड़-फोड़ करता स्वच्छन्द घूमता है, वैसे ही हे सेनापति ! तुझे कोई नहीं रोक सकता । इस संसार में तू महान् होकर आता,बल से महान् होकर विचरता है । २

जो उग्र कभी हराया नहीं जाता, दृढ़ होकर रण के लिए उद्यत रहता है। यदि वह महाधनी इन्द्र, स्तोता की पुकार सुन ले तो अलग न रहे , पास अवश्य आ जाये । ३

सूक्त ५४ । इन्द्र

५३५१ विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस् ततक्षुरिन्द्रञ्जजनुश्च राजसे ।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् ।। १

५२ समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये ।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ।। २

५३ नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वराः ।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ।। ३

सब अरि-सेनाओं को जीतने वाले, कर्म-व्यवहार में उत्तम; दुष्ट-नाशक-उग्र-ओजस्वी-महाबली को सब मिलकर राज्य का सेनापति बनाते और प्रसिद्ध करते हैं । १

स्तोता सोम-पान के लिए सुख-रक्षक पति को बुलाते हैं वह वृद्धि के लिए अपनी ओज-रक्षाओं से व्रत धारण करता है । २

बुद्धिमान्-अद्रोही-विद्वान् -श्रवण में तीव्र अपनी दर्शन-अर्चनाओं के साथ उस नेता -राजा-सेनापति के लिए नमते हैं । ३

सूक्त ५५ । इन्द्र

५४ तमिन्द्रञ्जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि ।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद् राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ।। १

५५ या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन् मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ।। २

५६ यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वङ्गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ।। ३

मैं उस इन्द्र को स्वीकार करूँ जो उग्र, सच्चे बल का धारक, बेरोक गति वाला; उदार-यज्ञानुष्ठाता, शस्त्रास्त्र-धारी हो, हमें गौ-सम्पन्न बनाये और धन के लिए सब मार्ग उत्तम बनाये । १

हे मघवन् इन्द्र! इन्द्र तू जो आदर-भागी असुरियों से छीने उससे प्रशंसनीय याज्ञिक जन बढ़ा । २

हे राजन ! जो अश्व-गौ-अक्षय धन तू रखता है उसे पर-उपकारी-याज्ञिक-ज्ञानी, सर्वोन्नति चाहने वाले के लिए दे, कृपण के लिए नहीं । ३

सूक्त ५६ । (इन्द्र)

५७ इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।
तमिन् महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ।। १

५८ असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादादिः ।
असि दभ्रस्य चिद वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ।। २

५३५९ यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युङ्क्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ।। ३

५६३० मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सङ्गृभाय पुरू शतोभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ ४
६१ मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे ।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव ॥ ५
६२ एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ॥ ६

५७ दुष्ट-नाशक सेनापति मनुष्यों द्वारा हर्ष-बल के लिए बढ़ाया जाता है। उसे ही बड़े-छोटे युद्धों में हम बुलायें, वह हमें युद्धों में बचाये। १

हे वीर ! तू ही सेना का हितकारी; बहुत प्रकार से शत्रु-दूरकर्ता, छोटे को भी बढ़ाने वाला है। सोम-सम्पादक याज्ञिक के लिए तू अपना बहुत धन देता है। २

जब युद्ध आरम्भ होते हैं तब विजय के लिए धन मिलता है। हे सम्राट्! तू किसे मारता और किसे धन के बीच में रखता है ? हमें धन के बीच में रख। ३

सत्य-कर्मा तू आनन्द के प्रत्येक अवसर पर हमें गो-समूह देता है। दानों हाथों तू बहुत सैकड़ों धन एकत्र कर और दे, हमें धन से भर दे। ४

हे शूर ! तू इस जगत् में सदा मेल के साथ बल-धन के लिए आनन्द दे । हम तुझे ही अधिक श्रेष्ठ जानें और अपनी कामनाएँ पूरी करें; तू हमारा रक्षक हो। ५

हे राजन् ! ये मनुष्य तेरे लिए सब स्वीकरणीय पदार्थ पुष्ट करें । तू मनुष्यों में स्वामी होकर अदानियों का धन जान और उसे हम दानियों के लिए दे। ६

सूक्त ४७ । इन्द्र (परमात्मा)

५६६३ सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे । जुहूमसि द्यवि द्यवि ॥ १
६४ उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद् रेवतो मदः ॥ २
६५ अथा ते अन्तमानां विद्याम सुमतीनाम् । मा नो अति ख्य आ गहि ३
६६ शुष्मिन्तमं न ऊतये द्युम्निनं पाहि जागृविम् । इन्द्र सोमं शतक्रतो ॥४
६७ इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥ ५
६८ अगन्निन्द्र श्रवो बृहद् द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥ ६
६९ अर्वावतो न आ गह्यथो शक्र परावतः उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥ ७
७० इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभीषदप चुच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥ ८
७१ इन्द्रश्च मृडयाति नो न नः पश्चादघं नशत् । भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ९
७२ इन्द्र आशाभ्यस् परि सर्वाभ्यो अभयङ्करत् । जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥ १०
७३ कई० ११ [देखो ५३४८]
॥ १२
५६७४ दाना० [ ,, ५१४९]

५३७५-७८ [पहले ५०, ४५-४७] ॥ १३-१६

६३ हम रक्षा के लिए दिन-दिन, दुहने के लिए सुगम दुही जाने वाली गो-समान, सुन्दर रूप-देने वाले ईश्वर की उपासना करें। १ [पहले तीन मन्त्र आगे सूक्त ६८ में भी हैं।]

६४-६५ [पिछला और ये दो ऋ. १-४ में भी हैं।] हे सोम (जगत्) के पालक! तू उपासना में हमारे पास रह, हमारी भक्ति स्वीकार कर, धनी तेरा हर्ष हमें ज्ञान-प्रद ही है। २। और तुम्हारी अन्तिम प्रमाण सुमतियों को जानें-पायें, हमें न छोड़, आ जा। ३

६६- ७२ [ये ७ मन्त्र पहले २०-१.७, क्रमांक ५१३१- ३७ पृष्ठ ६१३ पर आ चुके हैं।

७३-७८ [ पहले क्रमाङ्क ५३४८-५० और ४५-४७ पर आये हैं ] ११-१६

सूक्त ५८ । सूर्य । [ऋ ८.९९-१०२, य. अ० तैत्तो.त.४०-४२,साम ]

७९ श्रायन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत ।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रतिभागं न दीधिम ॥ १

८० अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ २

८१ बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि ।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ असि ॥ ३

८२ बट् सूर्य श्रवसा महाँ असि सत्रा देव महाँ असि ।
मह्ना देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम् ॥ ४

हे मनुष्यो! तुम सूर्य का आश्रय लेते हुए इन्द्र की शक्ति से सभी वस्तुओं का उपभोग करो उत्पन्न हुए और होने वाले जगत् में हम प्रत्येक का भाग नियत करें। १

हे मनुष्य! तू अश्लीलता-रहित दान वाले, धन-दाता सूर्य के गुण वर्णन कर, उसके दान कल्याण-कारी हैं। वह कर्मशील का मन दान के लिए उत्साहित कर उसकी कामना नष्ट नहीं करता। २

हे अविनाशी सूर्य! तू सचमुच महान् है, तुझ सच्चे महान् की महिमा गायी जाती है, हे देव! तू निश्चय ही महान् है। ३

हे सूर्य! तू निश्चय ही धन से महान् है, हे देव! तू सचमुच महान् है। अपनी महत्ता से तू देवों का प्राण-दाता, पुरोहित, व्यापक; और न दबने वाली ज्योति है। ४

सूक्त ५९ । इन्द्र

८३ उदु त्ये०, ८४ कण्वा० [ देखो ५०६०-६१, पृष्ठ ६०४ ]।,१-२

८५ उदिन्न्वस्य रिच्यतेंऽशो धनं न जिग्युषः ।
य इन्द्रो हरिवान्न दभन्ति तं रिपो दक्षं दधाति सोमिनि ॥ ३

८६ मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥ ४

५३८५ विजयी-समान उसका धन अंश-अंश करके बढ़ता ही जाता है जो इन्द्र शक्ति वाला है; उसे शत्रु नहीं दबा पाते; वह सोम-युक्त में बल धारण कराता है ५।

८६ तुम यज्ञीय व्यवहारों में दर्प-नाशक, पूर्ण-हितकारी, सुन्दर-कोमल मन्त्र धारण करो। परम्परागत उत्तम प्रबन्ध उसे पार लगा देते हैं जो कर्म से इन्द्र में निमित्त हो जाता है। ४

सूक्त ६०। इन्द्र

८७ एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः। एवा ते राध्यं मनः॥ १

८८ एवा रातिस् तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः। अधा चिदिन्द्र मे सचा॥ २

८९ मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते। मत्स्वा सुतस्य गोमतः॥ ३

९० एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे॥ ४

९१ एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते। सद्यश्चित् सन्ति दाशुष॥ ५

९२ एवाह्यस्य काम्या स्तोम उक्थञ् च शंस्या। इन्द्राय सोमपीतये॥ ६

निश्चय ही तू वीरों को चाहने वाला शूर-स्थिर ही है; तेरा दिया मन बड़ाई-योग्य है। १

,, हे बहुत धनी इन्द्र! तेरा दान सब धारकों द्वारा धारण किया जाता है अतः मेरा साथी हो। २

हे अन्न-पति! ब्रह्मा-समान तू आलसी कभी न बन, वेद-वाणी-युक्त तत्त्व-रस का आनन्द भोग। ३

निश्चय ही इस की प्रिय सच्ची वेद-वाणी विविध-स्पष्ट वर्णन करने वाली सुख-दायिनी-श्रद्धा-योग्य है, वह दानी के लिए पके फल-फूल वाली शाखा-समान हो। ४

हे इन्द्र! ऐसी ही तेरी विभूतियाँ दानी मुझे रक्षार्थ शीघ्र मिल जाती हैं। ५

इसके मनोहर प्रशंसनीय गुण और कथनीय कर्म भक्ति के स्वीकारार्थ इन्द्र के ही हैं। ६

सूक्त ६१। इन्द्र (परमात्मा)

९३ तं ते मदङ्गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्। उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम्॥ १

९४ येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ। मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि॥ २

९५ तदद्या चित्त उक्थिनोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे॥ ३

९६ तम्वभि प्र गायत पुरुहूतम्पुरुष्टुतम्। इन्द्रङ्गीर्भिस्तविषमा विवासत॥ ४

९७ यस्य द्विबर्हसो बृहत् सहो दाधार रोदसी। गिरीं रज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना॥ ५

९८ स राजसि पुरुष्टुत एको वृत्राणि जिघ्नसे। इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे॥ ६

हे चराचर के अत्ता (प्रलय-कर्ता)! तेरे उस सुख-वर्षक हर्ष की हम प्रशंसा करते हैं जो संघर्षों में सहनशीलता देता है, लोक-निर्माता है और मनुष्यों में शोभा-धन देता है। १

जिस हर्ष से तू प्रगतिशील मननशील जन के लिए ज्योतियाँ प्रकट करता और प्रसन्न होकर उसके हृदय में विराजता है। २

अतः आज भी तेरे स्तोता तेरी स्तुति करते और तू प्रतिदिन धर्म-पालित प्रजा की जय करता है। ३

९६ हे मनुष्यो! बहु-प्रशंसित और पुकारे गये महान् इन्द्र का सब तरह से गान करो और वाणियों से उसकी सराहना करो। ४

५३९७-९८ दोनों (अभ्युदय-निःश्रेयस) दृष्टियों से बढ़ाने वाले जिनके महान् बल ने द्यौ-पृथिवी, मेघ-जल धारण किये, वह बहु-स्तुत इन्द्र! तू पाप-नाशक है, और विजयी-कर्म-नियामक है। ५-६

## बालार्क-वेदमन्दिर के ग्रन्थ

लेखक— श्री जगदीश आचार्य, ई १६३८, राजाजीपुरम्, लखनऊ ।

१ अष्टाध्यायी महा परिष्कार । मूल्य ५१)

काशिका महा परिष्कार [प्रथम भाग (१-२ अध्याय)] मूल्य ७०

मिलने का पता— १. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत हरयाणा)
२. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, पो० चौखम्बा, वाराणसी ।

## ❀ समाचार ❀

दिसम्बर ९२ के अन्त में सम्पन्न गुरुकुल आमसेना की रजत-जयन्ती पर २२०० ईसाई शुद्ध हुए। स्वामी श्रद्धानन्द-बलिदान-दिवस २३-२५ दिस० ९२ को सर्वत्र मनाया गया ।

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई में भी, इसके साथ ४६ वाँ वार्षिकोत्सव भी २५-२७ तक सम्पन्न हुआ । अयोध्या के बाबरी ढाँचे के ध्वंस पर पुनः मस्जिद-निर्माण का और भा० ज० पा० की सरकारों के हटाने का घोर विरोध किया गया। १४-१ से २५-१ तक निःशुल्क योग-शिविर लगा ।

शिवरात्रि पर १६-२-९३ को महर्षि दयानन्द-बोधोत्सव सर्वत्र होगा, टंकारा में ऋषि-मेला होगा।

शोक है कि नीचे लिखे महानुभावों का देहान्त हो गया—

श्री क्षितीश वेदालंकार दिल्ली (७६) २३-१२-९२ को, आ० पुरुषोत्तम दिल्ली १८-१२ को, श्री रामलाल मलिक दिल्लीका ३०-१२को, गु. झज्झर के ३ ब्रह्म. सत्यपाल-सत्यवीर-महावीर का बसदुर्घटना में६-१को ,श्री लाड़ली प्रसाद कक्कड़ लखनऊ(९०) ८-१-९३ को, संजीव(पुत्र महा० धर्मपाल) दिल्ली १०-१ को।

## उ. प्र. संस्कृत अकादमी, ९०-९१ के पुरस्कार

१९९० और १९९१ में प्रकाशित ग्रन्थों पर पुरस्कारार्थ आवेदन-तिथि ३१-१-९३ तक है

पृ० २४. वर्ष १७ अङ्क २, तपः (माघ) ※ आ-ज्योति※ फरवरी १९९३, न.६९२१।६२ डाक लख २०६

श्रीमन् ! नमस्ते, आप का वर्ष २-२-९३ को पूर्ण हो चुका, कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजिये ।

# वैदिक दैनन्दिनी फाल्गुन २०४९विक्रम

| तिथि | नक्षत्र | वार | तारीख | शौच | व्यायाम | आसन | प्राणायाम | सन्ध्या | हवन | स्वाध्याय | सतसङ्ग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| फा.कृ १ | आर्द्रा | रवि | ७ फर्वरी ९३ | | | | | | | | |
| २ | मघा | सोम | ८ | | | | | | | | |
| ३ | पूर्वा फल्गुनी | मङ्गल | ९ | | | | | | | | |
| ४ | उत्तरा हस्त | बुध | १० | | | | | | | | |
| ५ | चित्रा | गुरु | ११ | | | | | | | | |
| ६ | स्वाति | शुक्र | १२ | | | | | | | | |
| ७ | विशाखा | शनि | १३ | | | | | | | | |
| ८ | अनुराधा | रवि | १४ | | | | | | | | |
| ९ | ज्येष्ठा | सोम | १५ | | | | | | | | |
| १० | मूल | मंगल | १६ | | | | | | | | |
| ११ | पूर्वाषाढा | बुध | १७ | | | | | | | | |
| १२ | उत्तराषाढा | गुरु | १८ | | | | | | | | |
| १३ | ,, शिवरात्रि | शुक्र | १९ | | | | | | | | |
| १४ | श्रवण | शनि | २० | | | | | | | | |
| ३० अमा | धनिष्ठा | रवि | २१ | | | | | | | | |
| शुक्ल १ | शतभिषज् | सोम | २२ | | | | | | | | |
| २ | पूर्वा भाद्रपदा | मङ्गल | २३ | | | | | | | | |
| ३ | उत्तरा ,, | बुध | २४ | | | | | | | | |
| ४ | रेवती | गुरु | २५ | | | | | | | | |
| ५ | अश्विनी | शुक्र | २६ | | | | | | | | |
| ६ | भरणी | शनि | २७ | | | | | | | | |
| ६ | कृत्तिका | रवि | २८ | | | | | | | | |
| ७ | ,, | सोम | मार्च १ | | | | | | | | |
| ८ | रोहिणी | मङ्गल | २ | | | | | | | | |
| ९ | मृगशिरा | बुध | ३ | | | | | | | | |
| १० | आर्द्रा | गुरु | ४ | | | | | | | | |
| १२ | पुनर्वसु | शुक्र | ५ | | | | | | | | |
| १३ | आश्लेषा | शनि | ६ | | | | | | | | |
| १४ | मघा | रवि | ७ | | | | | | | | |
| होली पू १५ | पूर्वाफल्गुनी | सोम | ८ | | | | | | | | |

प्रेषक- मुद्रक डा० अनिल कुमार, आदर्शप्रेस, सी, सी ८१७, महानगर; लखनऊ ६; दूरभाष ७३८०१

सेवा में संख्या श्री लाइब्रेरियन (पुस्तकालयाध्यक्ष)
स्थान डाक-घर जिला प्रदेश
गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)

ऋग्वेद　　　　ओ३म्　　　　यजुर्वेद

वर्ष १७ अंक ४　　　　चैत्र २०५० अप्रैल १९९३

# वेद-ज्योति

अथर्व वेद　खण्ड ५८　　　　साम वेद

विश्व वेदपरिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९४, दयानन्दाब्द १६९

शुल्क वार्षिक ४०), आजीवन ४००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर, एक अंक का ४)

सम्पादक- वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ० प्र० २२६००६; दूरभाष ७३५०१ । सहायक- विमला शास्त्री ।
सहायक सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक श्री ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व वेदपरिषद्, लखनऊ ३।

विषय-सूची—



## नववर्ष मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९४ शुभ हो

## नयीविक्रमसंवत् २०५०का स्वागत आर्यसमाज अमर है।

जिसके संस्थापक थे ऋषिवर दयानन्द जी संन्यासी ।
वेदोद्धार किया जिसने था वैदिक-पथ का अभ्यासी ॥
उसी दयानन्द स्वामी ने सजा दिया है इसका साज । अमर रहे यह आर्यसमाज ॥
भारत माँ की स्वतन्त्रता-हित त्याग किया बलिदान किया ।
पाखण्डों पर कटु प्रहार कर वेदों को सम्मान दिया ॥
वेदों के पावन प्रचार में जो सलग्न अभी है आज । अमर रहे वह आर्यसमाज ॥
—श्री राधेश्याम आर्य, मुसाफिरखाना (सुल्तानपुर)

आर्यसमाज-स्थापना-दिवस चैत्र शुक्ल ५, १९३२ वि० १०-४-१८७५ ई०
इस वर्ष रवि २८-३-९३ को है, चैत्र शुक्ल 1 मानना भूल है ।

## ऋषि की सृष्टिसवत्में त्रुटि माननेवाले शास्त्रार्थ करनें।

महर्षि-निर्दिष्ट सृष्टि-संवत् ही शुद्ध है, उसमें त्रुटि बताना पाप है; चाहे वे श्रीवैद्यनाथ शास्त्री हों। उदयवीर शास्त्री या श्री यु० मी० या श्री इन्द्रदेव, वे ऋषि से बड़े नहीं। —वीरेन्द्र सरस्वती

# सत्यार्थप्रकाश-मन्त्र-व्याख्या

गरुड़पुराण का कहा हुआ तो अप्रमाण है परन्तु जो वेदोक्त है। कि यमेन वायुना सत्यराजन्। इत्यादि वेदवचनों से निश्चय है कि 'यम' नाम वायु का है। शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं।

**सङ्गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन्।**

**हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सङ्गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः।** (ऋग्वेद १०.१४.८)

हे जीव किरणों के साथ परम आकाश में जा, (यमेन) वायु के साथ संयुक्त हो, अपने किये हुए यज्ञ और पूर्त आदि कर्मों से युक्त हुआ तू अप्रशस्त शरीर को छोड़ कर फिर गृह को प्राप्त हो और तेजस्वी शरीर के साथ युक्त होकर इस संसार में आ।

## पतञ्जलि का योग दर्शन शास्त्र (गतांक से आगे)

जब आसन दृढ़ होता है तब उपासना करने में कुछ परिश्रम नहीं करना पड़ता है तथा न ही सर्दी गरमी अधिक बाधा करती है। ऋ० भा० भू०

### अङ्ग ४, प्राणायाम

**१०० तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोः गति-विच्छेदः प्राणायामः। ४९**

जो वायु बाहर से भीतर आता है उसको श्वास, तथा जो भीतर से बाहर जाता है उसको प्रश्वास कहते हैं। उन दोनों के आने-जाने को विचार से रोके; नासिका हाथ से कभी न पकड़े किन्तु ज्ञान से उनके रोकने को प्राणायाम कहते हैं। ऋ० भा० भू०

**१०१. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिः देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः। ५०**

यह प्राणायाम ४ तरह का होता है; अर्थात् १-बाह्य-विषय; २-आभ्यन्तर-विषय, ३-स्तम्भ-वृत्ति। वे ४ प्राणायाम इस तरह होते हैं कि जब भीतर से बाहर को श्वास निकले तब उसको बाहर ही रोक दे, इसको पहला प्राणायाम कहते हैं। जब बाहर से श्वास भीतर को आवे तब उसको जितना रोक सके उतना भीतर ही रोक दे, इसको दूसरा प्राणायाम कहते हैं। तीसरा स्तम्भ-वृत्ति है कि न प्राण को बाहर निकाले और न भीतर ले जाये किन्तु जितनी देर सुख से रोक सके उसको जहाँ का तहाँ ज्यों का त्यों रोक दे। ऋ० भा० भू०

**१०२ बाह्याभ्यन्तर-विषयाक्षेपी चतुर्थः। ५१**

और चौथा जो बाहर-भीतर रोकने से होता है, अर्थात् जब श्वास भीतर से बाहर को आये तब बाहर ही कुछ-कुछ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर जाये तब उसको भीतर ही थोड़ा-थोड़ा रोकता रहे। इसको बाह्याभ्यन्तराक्षेपी कहते हैं। ऋ० भा० भू०

जब प्राण भीतर से बाहर निकलने लगे तब उससे विरुद्ध उसको न निकलने देने के लिए बाहर से भीतर ले, और जब बाहर से भीतर आने लगे तब भीतर से बाहर प्राण को धक्का देकर रोकता जाये। स० प्र० तृतीय०

**१०३ ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। ५२**

इन चारों का अनुष्ठान इसलिए है कि जिससे चित्त निर्मल होकर उपासना में स्थिर रहे।

५५०४ सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद् धूनोति वातो यथा वनम् ॥ ५
५ यो वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यङ्गृणीमसि पितेव यस् तविषीं वावृधे शवः ॥ ६

५५०० हे शूर इन्द्र (परमात्मा, सम्राट्, विद्युत्) ! तेरे ये ऐश्वर्य हैं, तेरे लिए ये उन्नति-कारक स्तुतियाँ करता हूं; तू सब प्रकार से पुकारे जानने योग्य है । १
१ हे दर्शनीय उग्र ! वे अन्य पुरुष तुझ मान्य की महिमा-पराक्रम-धन तक नहीं पहुँच सकते । २
२ हे मनुष्यो ! तुम बड़े वृद्धि कारी महान् ज्ञानी के लिए सुमति करो, स्वयं को पूर्ण करो। हे मनुष्य-मनोरथ-पूरक ! तू पूर्ण मनुष्यों में विचरण कर । ३
३ जब इस नियन्ता के दो घोड़े सुनहरी वज्र और रथ को विद्वानों के साथ ले जाते हैं तब उस में महा-धनी, दान-प्रसिद्ध; यशस्वी, बड़े पराक्रम का रक्षक स्वामी स्थित होता है। ४
४ वही उसकी अपनी सुख-वर्षा मनुष्यों के साथ है; वह इन्द्र हरा-भरा करने वाली किरणें तथा संसार में पाप-क्षय-कारी मधुर आनन्द बरसाता, पापियों को कँपाता है जैसे वायु वन को । ५
५ जो शूर अपनी वाणी से विरुद्ध-कटुभाषी दुष्ट के हजारों अमङ्गल कर्मों को नष्ट करता और पिता-समान हमारे शक्ति-पराक्रम बढ़ाता, उसीके पुरुषार्थ की हम प्रशंसा करते हैं । ६

सूक्त ७४ । इन्द्र

६ यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशस्ता इव स्मसि ।
आ तू न इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १
७ शिप्रिन् वाजानां पते शचीवस् तव दंसना । आ तू न...० ॥ २
८ निष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने । ,, ॥ ३
९ ससन्तु त्या अरातयो बोधन्तु शूर रातयः । ,, ॥ ४
१० समिन्द्र गर्दभं मृण नुवन्तं पापयामुया । ,, ॥ ५
११ पताति कुण्डृणाच्या दूरं वातो वनादधि । ,, ॥ ६
१२ सर्वं परिक्रोशञ्जहि जम्भया कृकदाश्वम् । ,, ॥ ७

५५०६ हे सच्चे ऐश्वर्य-रक्षक ! हम निराश-निन्दनीय हो जाते हैं। हे महा-धनी इन्द्र (परमेश्वर) ! तू हमें हजारों कल्याणकारी गो-अश्वों, विद्वानों-बलवानों, मनों-इन्द्रियों के सम्बन्ध में सब प्रकार आशा-युक्त तो कर; उपदेश तो दे। १। [ दूसरा वाक्य 'हे महा...' आगे ६ मन्त्रों में भी है। ]
७ हे ज्योतिर्मय, अन्न-बल-पति; शक्ति-दाता, वेदवाणी-प्रज्ञा-युक्त ! पाप-क्षय तेरा (कार्य) है। २
८ तू मिथ्या दृष्टि वालों को सुला दे, वे बिना जगे सदा सोते रहें । हे महा-धनी० । ३
९ हे शूर! हमारी कृपणताएँ सो जावें तथा दान-भावनाएँ जागती रहें। हे महा० ४
१० हे इन्द्र ! उस पापी दृष्टि से गधे-समान व्यर्थ चिल्लाने वाले का गधापन दूर कर। ,, । ५
११ तू पर-दाहक को वन से आती वायु-समान दूर गिरा । हे महा-धनी० । ६
५५१२ सब निन्दा-व्यवहार नष्ट कर । निन्दित कर्म करने वाले को कुचल। हे महा-धनी० । ७

सूक्त ७५ । इन्द्र

**५५१३ वि त्वा ततस्रे मिथुना अवस्यवो० [पहले क्रमाङ्क ५४६८]** ।१

**१४ विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः। शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवसस्पते। महीममुष्णाः पृथिवीमिमा अपो मन्दसान इमा अपः॥२**

**१५ आदित्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ। चकर्थ कारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्तवे। ते अन्यामन्यां नद्यं सनिष्णत श्रवस्यन्तः सनिष्णत ॥ ३**

५५१३ हे इन्द्र सेनापति !० [देखो ५४६८] ।१

१४ मनुष्य तेरे इस सामर्थ्य को जानते हैं जिससे जीतता हुआ तू वर्षभर की पालन-सामग्री सेना में उतार देता है। हे बल-पति! उस अयाज्ञिय पर शासन कर, उसके ये पृथिवी-जल छीन ले। २

१५ हे हर्षों में सुख-वर्षी! इसी से तेरे इस बल की चर्चा करते हैं कि जिससे मित्र-जनों की तू रक्षा करता, सेना में इनके सेवा-कार्य के लिए यत्न करता है। वे यशस्वी होकर अलग-अलग हर्ष-नदियों में स्नान किया करते हैं। ३

सूक्त ७६ । इन्द्र । ऋ १०-२९

**१६ वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः।**
**यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥ १**

**१७ प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।**
**अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥ २**

**१८ कस् ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद् दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव।**
**कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥ ३**

**१९ कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन्।**
**मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥ ४**

**२० प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधा इव ग्मन्।**
**गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥ ५**

**२१ मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन।**
**वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥ ६**

**२२ आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः।**
**स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥ ७**

**५५२३ व्यानडिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः।**
**आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥ ८**

५५१६ हे नर-नारियो! वन में रख दिये पक्षी-समान तुम्हारा पवित्र साम-गान भर्त्ता ईश्वर को प्राप्त होता है जिससे वह उपासक बहुत दिनों में नरों का श्रेष्ठ नेता बनकर क्षमावान् हो जाता है।

१७ इस नरों के नर के नेतृत्व में हम इस और अगली उषाओं में बने रहें। उसका तीनों, (भाप-बिजली-सूर्य) से तीनों लोकों में चलने वाला रथ सैकड़ों नरों को, जो सोया हो उसे भी, बिजली ले जाया-लाया करता है। २

१८ हे इन्द्र! तेरा वह कौनसा रमणीय-उग्र हर्ष है जो वाणियों के घर तुझ में प्रकट होता है? कब तेरा वाहन इच्छानुसार सामने आये और तेरे पास अन्नों-सहित धन दे-ले सकें? ३

१९ हे इन्द्र! तुझे चाहने वाले नरों को तेरी द्युति कब मिलेगी? जिस बुद्धि से तू कार्य करता है वह हमें कब मिलेगी? हे यशस्वी! तू भरण से हमारे मित्र-समान सत्य है, अन्न में सबकी इच्छाएँ हैं। ४

२० हे बहु-प्रसिद्ध सूर्य-समान राजन्, तू उन्हें पार लगाने वाला धन दे जो जन्म-दाता पिता-समान कामना पूरी करें और अन्नों-सहित श्रेष्ठ वाणी समर्पित करें। ५

२१ हे राजन्, तुझ सुविज्ञात निर्माता होने पर बल से द्यौ और वेद-काव्य से पृथिवी श्रेष्ठ बनें। तुझ वरणीय के लिए घी से बनाये भोज्य स्वादिष्ठ और पीने के लिए मधुर पेय हों। ६

२२ ऐसे राजा के लिए मधुर रस-भरा पात्र देते हैं क्योंकि वह सत्य-धन वाले हैं। नर-हितैषी वह कर्म-पुरुषार्थों से पृथिवी के विस्तृत क्षेत्र में बढ़ता-बढ़ाता है। ७

२३ अच्छा ओज वाला वह राजा-सेनापति शत्रु-सेनाएँ नष्ट करता है अतः मनुष्य इस के सख्य के लिए यत्न करते हैं। हे इन्द्र! तू उनकी सहायतार्थ रथ-समान दृढ़ रह जिस को तू कल्याण-कारी मति से प्रेरित करता है। ८

सूक्त ७७। इन्द्र

५५२४ आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वङ्करते गृणानः ॥ १

२५ अव स्य शूराध्वनो नान्ते ऽस्मिन् नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥ २

२६ कविर्न निण्यं विदथानि साधन् वृषा यत् सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत् सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥ ३

२७ स्वर्यद् वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥ ४

२८ ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥ ५

२९ विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद् ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥ ६

३० अपो वृत्रं वव्रिवांसं पराहन् प्रावत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥ ७

५५३१ अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत् सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥ ८

सूक्त ७७ । इन्द्र (सूर्य)

५५२४ सच्चा धनी, सरल-मार्गी सूर्य उदय हो, इसकी किरणें हम तक आयें; उसके लिए ही सुन्दर बलयुक्त सोम हम यज्ञ द्वारा तय्यार करते हैं। मार्ग-दर्शी गुरु-समान वह इसे पाता है। १

२५ हे वीर, तू इस सवन में हर्ष के लिए हमारे मार्ग नष्ट न कर। विधाता-समान अभिलाषी प्रकाशमान, प्राण-रूप तेरे लिए माननीय वर्णन किया करता है। २

२६ कवि-समान, गुप्त-रहस्य-साधक वचक सूर्य जब जल का विशेष पान (संग्रह) करता है तब वह इस प्रकार द्यौ को ७ क्रियाशील रश्मियाँ उत्पन्न करता है कि वे उपदेश देती हुई दिन बनाती हैं। ३

२७ जो मन्त्रों से बड़ा ज्ञान मिलता और दिन प्रकाशित होता तब विदित होता है कि यह सबसे बड़ा नेता (सूर्य) नरों को दृष्टि देने के लिए अन्धकार नष्ट करता है। ४

२८ सरल-मार्ग-गामी सूर्य ने अपरिमित जल पाया है। वह अपनी महिमा से द्यौ-भूमि दोनोंको भर देता है। इसी लिए इसकी महिमा अधिक है क्योंकि यह सब भुवनों में विजय पाये हैं। ५

२६ सब नर-हितकारी कार्य-ज्ञाता शक्तिशाली (सूर्य) जल-वर्षा करता, नियमित कामना वाले सखावत् लोकों के साथ रहता है कान्ति-युक्त जो ध्वनियों से पत्थर भी तोड़दें, किरण-समूह खोल दे। ६

३० हे साहसी शूर! जब तू मेघ नष्ट करता तो सावधान पृथिवी तेरा वज्र समझती है। तू अपनी शक्ति से समुद्र के रूप को वर्षा-रूप में प्रेरित करता है। ७

३१ हे बहु-प्रशंसित! जो तू मेघ विदीर्ण कर जल-वर्षा करता है तो पहले गर्जना होती है। तू हमारा नेता होकर पर्याप्त अन्न देता; और मेघ विदीर्ण करता हुआ वैज्ञानिकों से प्रशंसित होता है। ८

सूक्त ७८ । इन्द्र (विद्युत्)

**५५३२ तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद् गवे न शाकिने ॥ १**

**३३ न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत् सोमुप श्रवद् गिरः ॥ २**

**३४ कुवित्सस्य प्र हि व्रजङ्गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥ ३**

३२ इस उत्पन्न जगत में तम मिलकर अनेकों से गृहीत शक्तिशाली के लिए गाओ जो गौ (भूमि, स्तोता) और शक्तिशाली के लिए कल्याणकारी हो। १

३३ सम्पत्तिशाली, सर्वत्र बसी विद्युत वाणी-युक्त अन्न का दान कभी नहीं रोकती, वह तो सर्वत वाणियाँ सुनती-सुनाती है। २

३४ अन्धकार-नाशक विद्युत बहुत गति वाले मार्गों पर गनियुक्त घेरे में चलती है और हमें अपनी शक्तियों से स्वीकार करती है। ३

सूक्त ७९ । इन्द्र

**३५ इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।**
**शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥ १**

**३६ मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।**
**त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥ २**

३५ हे बहुतों से स्तुत इन्द्र (विद्युत्-सूर्य)! तू हमारे यज्ञ-कर्म को धन से भर जैसे पिता पुत्रों को, इस प्रहर और मार्ग में हमें शिक्षा दे, जीव ज्योति को पायें। १

[यह ५ बार आया है— ऋ ७-३२-२६; साम २५९, १४५६, अथर्व १८-३-६७ और यहाँ।]

५५३६ हे शूर (विद्युत्)! हम पर अज्ञात-पापी-दुष्ट-अमङ्गल-कारी जन आक्रमण न करें। हम तेरे साथ नीचे देशों (खाइयों-सुरङ्गों) और सदा से बहते हुए जल (नदियों आदि) को (विद्युच्चालित मोटरों से) पार करें। २

सूक्त ८० । इन्द्र

५५३७ इन्द्र ज्येष्ठं न आ भर ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ।। १

३८ त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन् देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान् सुषहान् कृधि ।। २

हे विद्युत ! तू हमारे लिए श्रेष्ठ-बलयुक्त-पालक श्रवण-शक्ति और यश सर्वतः धारण करा हे अद्भुत वज्र-धारक सुन्दर शक्ति-युक्त ! तूने दोनों (अन्तरिक्ष-भूमि) को भर रक्खा है । १

३८ हे दीप्त, प्राकृतिक शक्तियों में उग्र, मनुष्यों के वश में रहने वाली वसु ! हम तुझे ग्रहण करें तू हमारे सर्व क्लेशों को खण्डन-योग्य और शत्रुओं को सरलता से हारने योग्य कर । २

सूक्त ८१ । इन्द्र (परमेश्वर-विजली)

३९ यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ।। १

४० आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन् विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन् गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।। २ [आगे ८१.२ -२१ मो]

हे शक्तिधारी ! जो सैकड़ों द्यौ और भूमियाँ भी हों तो वे और हजारों द्यु-भू मिल कर भी तुझ को नहीं पा सकते । १

हे सुख-वर्धक-प्रजा-ऐश्वर्य शाली ! तू अपने बड़े बल से सब सुखदायक पदार्थों में भरपूर है। तू इन्द्रियों वाले शरीर में विचित्र रक्षाओं द्वारा हमारी रक्षा कर । २

सूक्त ८२ । इन्द्र

४१ यदिन्द्र यावतस् त्वमेतावदहमीशीय ।
स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासाय ।। १

४२ शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे ।
न हि त्वदन्यन्मघवन् न आप्यं वस्यो अस्ति पिता च न ।। २

हे सम्पत्ति-दाता इन्द्र तू जितने का स्वामी है यदि उतना ही मैं हो जाऊँ तो तेरे स्तोता को ही दूँ, पाप करने के लिए नहीं । १

हे धनी पुरुषों में श्रेष्ठ, मैं प्रतिदिन कहीं भी विद्यमान प्रतिभा-सम्पन्न को ही धन दूँ । तुझ से अन्य हमारा कुछ प्राप्त योग्य पदार्थ और रक्षक नहीं है । १

सूक्त ८३ । इन्द्र ऋ ३-३५-४

४३ इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ।। १

५५४४ ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभि प्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस् तनूपा अन्तमो भव ।। २

४ : हे इन्द्र ! धनिकों और मेरे लिए तीन धातु (सोना-चाँदी-लोहा) का बना, तीन ऋतुओं (गरमी-वर्षा-शीत) के योग्य कल्याणकारी घर दे और मन से सन्ताप दूर कर, प्रकाश को ला । १

४४ हे धनी–स्तुत्य इन्द्र, जो भूमि चाहने वाले निर्भय मन से शत्रु को घेर लेते हैं ऐसे हमारे शरीर-रक्षक होकर पास रह । २

सूक्त ८४ । इन्द्र

५५४५ इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः । अण्वीभिस्तना पूतासः ।। १

४६ इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः । उप ब्रह्माणि वाघतः ।। २

४७ इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः । सुते दधिष्व नश्चनः ।। ३

४५ हे विचित्र प्रभा वाले इन्द्र, आ, ये त्रिदूध यन्त्र तुझे मिलाने वाले अणु-चालित-विस्तृत-पवित्र हैं । १
४६ हे विद्युत्, आ, तू बुद्धि से बढ़ायी गयी, तय्यार किये यन्त्रों वाली है, मन्त्रानुसार हमें मिल २
४७ हे दुःख-हर्ता ! शीघ्रता करती हुयी तू विज्ञान-नियमानुसार आ । हमारे लिए अन्न दे । ३

सूक्त ८५ । इन्द्र

४८ मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ।। १

४९ अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरङ्गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ।। २

५० यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ।। ३

५१ वि ततूर्यन्ते मघवन् विपश्चितो ऽर्यो विपो जनानम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ।। ४

५५४८-४९ हे सखाओ ! अन्य की विशेष स्तुति मत करो, नष्ट क्षत होओ; सुख-वर्षी इन्द्र की ही स्तुति करो, और संसार में मिलकर बार-बार वेद-मन्त्रों को पढ़ा करो, जो वर्षा-कारी मेघ-समान कष्ट-नाशक, गाड़ी-जुड़े बैल और सूर्य के समान गति-दाता, सत्कर्मियों को तृप्ति-दायक, निग्रह-अनुग्रह दोनों का कर्ता, दानी, दोनों का रक्षक है । १-२

५० हे इन्द्र ! ये नाना जन रक्षार्थ तेरा ही जो कुछ आह्वान करते हैं; किन्तु हमारा यह विज्ञान सदा सब दिन तेरी वृद्धि का प्रशंसक हो । ३

५१ हे ऐश्वर्य-शाली ! विद्वान् तुझे शीघ्र फल-दायी बताते हैं; तू जनों का विशेष पालक मेधावी है, पराक्रम कर्ता; हमें पराक्रमी बना; हमारी रक्षार्थ नाना रूप अन्न--बल हमें दे । ४

सूक्त ८६ । इन्द्र

५२ ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ।। १

५५५२ हे इन्द्र ! ब्रह्म-युक्त विज्ञान से मैं सम स्थान में स्थित (ऋण-धन, जल-अग्नि) शक्तियाँ जोड़ता हूं; तू स्थिर-दृढ़-सुखद वाहन में स्थित होकर विद्वान् जानकर ऐश्वर्य पा। १

सूक्त ८७। १-६ इन्द्र, ७ बृहस्पति। ऋ७-९८

५५५३. अध्वर्यवो ऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद् वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद् याति सुतसोममिच्छन् ॥ १

५४ यद् दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥ २

५५ जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।
एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥ ३

५६ यद् योधया महतो मन्यमानान् साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास् तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥ ४

७ प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत् केवलः सोमो अस्य ॥ ५

५८ तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत् पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥ ६

५९ बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ७

५३ हे अध्वर्युओ! मनुष्यों में वृषा के लिए अरुण गौ-दुग्ध और सोम मिलाकर आहुति दो। इन्द्र श्वेत दूध को पान करता है और सम्पादित सोम को चाहता हुआ सब दिन विचरता है। १

५४ हे इन्द्र ! तू जो ज्ञान अपने मस्तिष्क में रखता है उसका प्रतिदिन प्रयोग कर, हृदय-मन से समर्पित सोम चाहता हुआ रक्षा और पान कर। २

५५ हे इन्द्र ! शासक रूप में प्रकट हुआ तू बल के लिए दूध पी; महिमा तेरी माता ने कही होगी। तू विशाल अन्तरिक्ष में फैलता और युद्ध से देवों के लिए धन देता है। ३

५६ हे सेनापति ! जो तू हमें अपने को महान् मानने वाले वैरियों से भिड़ाए तो हम बाहुओं से विनाशक उन्हें हरा दें। जब नरों से वरण किया तू लड़े तो हम यश के साथ विजयी हों। ४

५७ मैं इन्द्र के पहले के और नये कार्य वर्णन करूं। जब यह माया जीतता है तभी सोम इसका है। ५

५८ हे राजन् ! तेरा यह कार्य सब प्राणियों के लिए हितकर है जिसे सूर्य-समान तू तेजस्वी दृष्टि से देखता है। तू अकेला ही गौओं-विद्वानों का पति है, हम उत्तम-यत्न-प्राप्त धन को भोगें। ६

५५५९ [देखो पहले क्रमांक ५५१७]। ७

सूक्त ८८ । बृहस्पति । ऋ० ४-५०

५५६०. यस् तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान् बृहस्पतिस् त्रिषधस्थो रवेण ।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥ १

६१ धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस् ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥ २

६२ बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्व श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥ ३

६३ बृहस्पतिः प्रथमञ्जायमानो महो ज्योतिषा परमे व्योमन् ।
सप्तास्यस् तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥ ४

६४ स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन बलं रुरोज फलिगं रवेण ।
बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद् वावशतीरुदाजत् ॥ ५

६५ एवा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः ।
बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६

६० तीनों लोकों में स्थित बृहस्पति(वायु) अपने बल-शब्द से पृथिवी की सीमाओं को विशेष प्रकार से दृढ़ करती है। उस सुखद शब्द वाली वायु को ऋषि-मेधावी समक्ष रखते हैं। १

६१ हे बृहस्पति ! हममें जो उत्तम ज्ञानी; प्रसन्न हमें सब ओर प्रसिद्ध करते हैं उनके और मेरे रस-सिंचित, ज्ञानयुक्त, अनष्ट-दोष-नाशक शरीर की रक्षा कर। २

६२ हे बृहस्पति ! तेरी जो परम विभूति दूर तक है इससे सत्य-स्पर्शी विद्वान सब ओर विद्यमान हैं। अतः तेरे लिए खोदे गये, मेघ-प्रवाहित कूप-समान मधुर-जल-पूर्ण भण्डार महान् तेरे समक्ष जल सींचते और बहाते हैं। ३

६३ बड़ी ज्योति के परम आकाश में पहले प्रकट हुआ वायु शब्दके साथ अधिक होकर सप्त-रश्मि (सूर्य) और सप्त-जिह्वा (अग्नि) के समान अन्धकार दूर करता है। ४

६४ पदार्थ शक्ति-कर्ता; गर्जन-युक्त यह वायु से प्रशंसित वाणी वाले गण के साथ शब्द से निस्सार आवरण को छिन्न-भिन्न करता है और चमकती नदियाँ को बढ़ाता है। ५

६५ इस तरह हम पालक, विश्व-गति-दाता; वर्षाकारी वायु के लिए यज्ञ-आदर-हवियों से सम्मान करें। हे बृहस्पति! अच्छी पूजा और वीरों से युक्त हम धनों के पति बन जायें। ६

सूक्त ८९ । इन्द्र । ऋ० १०-४२

६६ अस्तेव सु प्रतरं लायमस्यन् भूषन्निव प्र भरा स्तोममस्मै ,
वाचा विप्रास् तरत वाजमर्यो नि रामय जरितः सोम इन्द्रम् ॥ १

५५६७ दोहेन गामुप शिक्षा सखायं प्र बोधय जरितर्जारमिन्द्रम् ।
कोशं न पूर्णं वसुना न्यृष्टमा च्यावय मघदेयाय शूरम् ॥ २

५५६८ किमङ्ग त्वा मघवन् भोजमाहुः शिशीहि मा शिशयं त्वा शृणोमि ।
अप्नस्वती मम धीरस्तु शक्र वसुविदं भगमिन्द्रा भरा नः ॥ ३

६९ त्वाञ्जना ममसत्येष्विन्द्र संतस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥ ४

७० धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान् प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान् युवति हन्ति वृत्रम् । ५

७१ यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित् सन् भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥ ६

७२ आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद् गोमदिन्द्र कृधी धियञ्जरित्रे वाजरत्नाम् ॥ ७

७३ प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन् तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाह दामानं मघवा नि यंसन् नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥ ८

७४ उप प्रहामतिदीवा जयति कृतमिव श्वघ्नी वि चिनोति काले ।
यो देवकामो न धनं रुणद्धि समित् तं रायः सृजति स्वधाभिः ॥ ९

५५७५-७६ [देखो पहले ५११५-१६ और आगे ५६३०-३१ कुछ पाठ-भेद से]

६६ हे सौम्य उपासक ! तू, अस्त्र-प्रयोक्ता-समान, तीव्र संस्कार बाहर फेंकता हुआ और अपने को भूषित करता हुआ इस इन्द्र के लिए स्तोम पढ़। हे विप्रो ! तुम वाणी से शत्रु-बल को पार करो, तू स्वामी बनकर इन्द्र को प्रसन्न कर। १

६७ हे स्तोता ! तू ज्ञान-रूप से सखा को वाणी की शिक्षा दे; स्तुत्य जीव को बोध करा; धन से भरे कोश-समान शूर को धन-दान के लिए प्रेरित कर। २

६८ हे प्रिय धनी ! तुझे भोजन-दाता क्यों कहते हैं ? मुझे भी दे. मैं तुझको दानी सुनता हूं हे शक्तिमान ! मेरी बुद्धि कर्म वाली हो, हे इन्द्र ! हमें धन-युक्त ऐश्वर्य दे। ३

६९ हे इन्द्र ! जन तुझको अपना पक्ष सत्य सिद्ध करने के लिए स्थिर होकर युद्धों में बुलाते हैं, यहाँ वही तुझको साथी बनाता है जो हवि वाला है, शूर तू असोम्य से सख्य नहीं करता। ४

७० जो प्रयत्न-शील इस इन्द्र के लिए अस्थायी धन-समान तीव्र सोम समर्पित करता है उसके लिए वह दिन के प्रातः जीवन-व्यापी कामादि शत्रुओं और उन के परिणामों को हटा देता है, और अज्ञान-आवरण को नष्ट करता है। ५

७१ जिस परमेश्वर में हम प्रशंसा धारण करते, जो धनी हम में कामना देता है उससे शत्रु दूर-समीप आता हुआ भय मानता है, उसके लिए सब जनों की सम्पत्तियाँ झुकी रहें। ६

७२ बहुत बुलाये गये परमेश्वर ! जो तेरा उग्र शान्तिमय वज्र है उससे दूर-पास के वैरी को हटा हमें जौ आदि अन्न वाला, गो-युक्त धन दे, स्तोता के लिए अन्न-रत्न वाली बुद्धि धर। ७

५५७३ जिसके अन्दर वर्षा-समान अति रस पीने अधिक भक्ति-रस पहुँच चुके हैं वह परमेश्वर कर्मों के फन्दे को नहीं जकड़ता; वह सोमों के लिए बहुत उत्तम धन देता है। ८

७४ तथा अति-व्यवहार-कुशल प्रहारी को जीत लेता है जैसे भविष्य कल का प्रयत्न-शील समय पर निश्चित कर्मक्षेत्र चुनकर जीतता है। जो देवों की कामना वाला धन को व्यर्थ नहीं रोकता उसे आत्म-धारक शक्तियों के साथ ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। ६

५५७५-७६ [ देखो पहले ५११५-१६ ]

सूक्त ९० । बृहस्पति । ऋ० ६-७३

५५७७ यो अद्रिभिद् प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत् पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥ १

७८ जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन् वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूंरमित्रान् पृत्सु साहन् ॥ २

७९ बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्वरप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥ ३

७७ जो बड़ा सेनापति पहाड़-समान किलों को तोड़ने वाला, पहले आगे प्रकट होकर सच्चा, अङ्गों में रस-समान, हवि-युक्त, दोनों (आत्मिक-भौतिक) शक्ति-युक्त, प्रताप स्थानों में रहकर हमारा पालक, बली होकर द्यौ-भूमि में गर्जा करता है। १

७८ जो गति-शील जन के लिए विद्वानों के आह्वान पर स्थान को बनाता है; दुष्टों को मारता है, वह युद्धों में शत्रु जीतता और उनके नगर ध्वस्त करता है। २

७९ यह विजयी सेनापति धन,गौओं-सहित बड़े प्राणी-समूह को सम्यक् जीतता है। वह जल-प्रकार-सुख को व्यवस्था करता, प्रतीत न होकर तेजों से अमित्रों को मारता है। ३

## अनुवाक ८

विषय — इमां धियमित्यादि०, ते सत्येनेत्यादि०, सत्यामाशिषं कृणुतेत्यादि०, अर्चत प्रार्चतेत्यादि०, सुदेवो असि वरुणेत्यादि०, इन्द्रं जातमुपासत इत्यादि०, मघवन्नित्यादि०; इन्द्राय शूषमर्चतेत्यादि०, शतशारदायेत्यादि पदार्थ-विद्या । —महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती।

सूक्त ९१ । बृहस्पति ( ऋ० १० ६७)

५५८० इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद् विश्वजन्यो ऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥ १

८१ ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥ २

८२ हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भि रश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभि कनिक्रदद् गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥ ३

८३ अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस् तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥ ४

५५८४ वि भिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥ ५

५५८५. इन्द्रो बलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानो ऽरोदयत् पणिमा गा अमुष्णात् ॥ ६

८६ स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥ ७

८७ ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥ ८

८८ तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥ ९

८९ यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥ १०

९० सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥ ११

५५९१ इन्द्रो मह्ना महतो अर्णवस्य वि मूर्धानमभिनदर्बुदस्य ।
अहन्नहिमरिणात् सप्त सिन्धून् देवैर्द्यावापृथिवी प्रावतं नः ॥ १२

५५८०. हमारा पिता (रक्षक स्वामी ईश्वर) इन ७ सिरों (छन्दों गायत्री-उष्णिक्-अनुष्टुप्-बृहती-पङ्क्ति-त्रिष्टुप्-जगती) वाली, ऋत से प्रकट, ज्ञानमयी वेद-वाणी को देता है। विश्व-जनक वह जीव के लिए बिना श्रम किये वेद कथन करता हुआ चौथाई ज्ञान ही प्रकट करता है । १

८१ प्रज्ञानी देव के ज्ञानी वीर पुत्र सत्य-सरल वेद के वक्ता ध्यान करते हुए, विप्र पद धारण कर यज्ञ की प्रथम ज्योति का मनन करते हैं । २

८२ हंस-समान बोलते हुए सखाओं के द्वारा, लोहा-समान कठोर अविद्या-बन्धन काटता हुआ बृहस्पति विद्वान् वाणियाँ प्रस्तुत करता, कथन करता और गाता है । ३

८३ परमात्मा असत्य के पुल (पारकर्ता) अपने में छिपी वेद-वाणियों को और एक प्रकार से (पद्य-गीत-गद्य, ऋक्-साम-यजु) को और अन्धकार में ज्योति चाहता हुआ तीन प्रकारों [सूर्य-अग्नि-बिजली] को प्रकट करता है । ४

८४ परमात्मा प्रलय में सोती हुई [प्रकृति] को भेदन कर स्वतः तीन को मानो अपने उदधि काटकर एक साथ निकालता है । गर्जते द्यौ-समान वह उषा-सूर्य-पृथिवी-मन्त्र हमें देता है । ५

८५ इन्द्र [परमेश्वर] दुह जाने वाले जल के आवरक-रखने वाले मेघ को हाथ-समान बिजली-गर्जना से काट कर जल गिराता है मानो जल-कणों से भोजन-निर्माण की इच्छा करता हुआ व्यवहारी बनिया-मेघ को रुलाता और उसका गौ-जल चुरा [छीन] लेता हो । ६

८६ वही ब्रह्मणस्पति सत्य-पवित्र-धनदाता-उत्तम आहार वाले सखाओं (ऋषि-मेघों) द्वारा भू-धारक वेद-जल को खोल देता है और ज्ञान-धन को फैलाता है । ७

८७ वे सच्चे मन से वेद-पति से वाणी को पाते हैं जो बुद्धि-कर्मों से उसे खोजते हैं। परमात्मा और आचार्य अपने योगी, परस्पर अकथनीय आनन्द-रस-पायी मित्रों द्वारा वेद-किरणें फैलाता है।८

८८ सह-स्थान (हृदय) में सिंह-समान अन्तर्नाद करने वाले उसे कल्याणी बुद्धि-कर्मों से बढ़ाते हुए हम प्रत्येक सङ्ग्राम में शूर काम आदि के नाश के लिए अनुकूल रहकर हृष्ट रहें । ९

८९ परमात्मा जब नाना बल देता है तो उपासक उत्तर-उत्तर द्यौ (मूलाधार से मूर्धा- सहस्रार चक्र) तक बढ़ जाता है। नाना योगी सुख-वर्षी को मुख से बढ़ाते हुए ज्योति धारण करते हैं। १०

९० हे मनुष्यगण! वयो-वृद्धजन से सच्चे आशीर्वाद लो, अपने यत्नों से ही कर्ता को पाओ। पीछे सभी शत्रु छुट जाएँगे। विराट् के पाने वाले स्त्री-पुरुष इसे सुनें। ११

९१ इन्द्र महिमा द्वारा बड़े जलद समुद्र अन्तरिक्ष का सिर(मेघ) भेदन करता है, मेघको मार सर्पणशील नदियाँ बहाता है, द्यावा-पृथिवी दिव्य शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा करें। १२

सूक्त ९२। इन्द्र॥ ऋ. ८-६९.४-१८। ८.७ .१-६

५५९२ अभि प्र गोपतिङ्गिरेन्द्रमर्च यथाविदे। सूनुं सत्यस्य सत्पतिम्॥ १

९३ आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि सं नवामहे॥ २

९४ इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत् सीमुपह्वरे विदत्॥ ३

९५ उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपङ्गृहमिन्द्रश्च गन्वहि। मध्वःपीत्वा सचेवहि त्रिःसप्त सख्युःपदे॥४

९६ अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत। अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत॥ ५

९७ अव स्वराति गर्गरो गोधा परिसनिष्वणत्। पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम्।६

९८ आ यत् पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः। अपस्फुरङ्गृभायत सोममिन्द्राय पातवे॥ ७

९९ अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत् तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव॥ ८

५६०० सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः। अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव॥ ९

१ यो व्यतीँरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे। तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत॥१०

२ अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः। भिनत्कनीन ओदनंपच्यमानपरोगिरा॥११

३ अर्भको न कुमारको ऽधितिष्ठन्नवं रथम्। स पक्षन्महिषम्मृगम पित्रे मात्रे विभुक्रतुम्॥ १२

४ आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अधा द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम्॥ १३

५ तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते। अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने१४

६ अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम्। पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आशत॥१५

७ यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः। विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे॥१६

८ इन्द्रन्तं शुम्भ पुरुहन्मन् नवसे यस्य द्विता विधर्तरि।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः॥ १७ [आगे ५६८३]

९ नकिष्टङ्कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम्। इन्द्रन्न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम्१८

१० अषाढमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन् महीरुरुज्रयः।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः॥ १९

५६११-१२ [देखो पहले ५५३९-४०] २०-२१

सूक्त ६२ । इन्द्र

५५९२[हे मनुष्य]तू यथार्थ-ज्ञान के लिए पृथिवी-पति सत्य-प्रेरक सत्य-स्वामी इन्द्र की अर्चना कर । १

९३ आकाश में अरुण किरणें, हृदयाकाश में मनो-हारी ज्ञान-किरणें प्रकट होती हैं जहाँ हम मिल कर उपासना करें । २

९४ शस्त्र-धारी शासक के लिए गौएँ मधुर दूध दुहाती हैं जब वह उन्हें [illegible] [illegible] है । ३

९५ जब शासक और मैं महान सन्ताप-रहित घर पहुँचें तब मधुर रस पीकर मित्रता के ७ पद तीन बार चल [illegible]र सखा हो जायें । इसी प्रकार ईश्वर-योगी दोनों २० पद (१० इन्द्रिय, ५ भूत और ५ तन्मात्रा पार कर २१ वें पद (अन्तःकरण) में सखा हो जाते हैं । ४

९६ हे मेधा के प्यारो ! तुम और छोटे पुत्र भी धर्षक वज्रकी अपने शरीर-समान अर्चना करो । ५

९७ जब इन्द्र के लिए वेद-मन्त्र उद्यत हो तब गर्गर [स्तोता, नारङ्ग] स्वर निकाले, गोधा [स्तोता की धात्री, माता, सितार-वीणा] बार-बार शब्द करे, पिङ्गा [पीले केसरिया वस्त्र वाला उपासिका, तबला-मृदङ्ग-ढोलक आदि] [illegible] र्वत्र घूमे । ६

९८ जब गति-शील, कामना-पूरक, निरचल एन्य [बुद्धियाँ और गौएं] आती हैं तब इन्द्र [जीव] की रक्षा, और पीने के लिए स्थिर सोम [ज्ञान-दूध] प्राप्त किया करो । ७

९९ इन्द्र-अग्नि-सब देव सोम तत्त्व पीकर हृष्ट होते हैं, वरुण [illegible] [illegible] जाये तो उसे आप: [प्राण, ७ इन्द्रिय-मन-बुद्धि-विद्या, आप्त पुरुष-स्त्रियाँ] सब ओर से चाहने लगते हैं जैसे वृद्धि चाहने वाली माताएं बच्चे को चाहती हैं । ८

५६०० हे वरुण [परमात्मा-विद्वान् शब्द] ! तू सुन्दर देव है जिसे तेरे [illegible] सिन्धु [प्रवाह छन्द-स्वर-विभक्तियाँ-लोक-धातुएँ] तालु वाले मुख में प्रवाहित होते हैं जैसे लहरों वाला जल [illegible] की ओर जाता है या अग्नि [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] ने महाभाष्य आह्निक १ में यह अर्थ दिया है]। ९

५६०१ जो परमात्मा विविध चलते रहने वाले उत्तम पदार्थों को आत्म-दानी के लिए उत्पन्न करता और दुःखों से शरीर छुड़ाता है वही व्यापक-नेता-उपमारूप है । १०

२ वह बली इन्द्र सब द्वेष दूरकर बन्धन से छुड़ाता है। कान्तिमय [illegible] कर्म-फल को वेदवाणी द्वारा भेदन करता है । ११

३ नया शरीर-धारी शिशु बड़ा कुमार होकर यदि बुरे कर्म करता है तो अगले जन्म में भूखा-दरिद्र माता-पिता पाकर अनेक पशु-कर्म करता है । १२

[illegible] हे पुत्र-पुत्री [illegible] ! तुम [illegible] [illegible] समर्थ, हजारों पैरों की शक्तिवाले, द्युतिमान्-रोग-रहित-कल्याणी-निष्पाप ईश्वर की उपासना करें । १३

५ उसे नमस्कार करने वाले स्वयं प्रकाशवान ईश्वर की [illegible] करते हैं कि उसका उत्तम धन पाकर दान में लगाते हैं । १४

६ इन उपासकों में मेधाप्रिय द्रव्य-यज्ञ छोड़कर [illegible] में प्रयत्नशील होकर [illegible] के अनुकूल पूर्वागत आध्यात्मिक प्रयत्न (योग) में लगे रहते हैं । १५

७ जो मनुष्यों का राजा रमणीय गतियों से सर्वत्र बेरोक पहुँचा हुआ है और जो सब दुष्टों का पराजय-कर्ता, ज्येष्ठ और पाप-नाशक है उनकी मैं स्तुति करता हूं ॥ १६

५६०२ हे बड़े ज्ञानी ! तू रक्षा के लिए उन इन्द्र का [illegible] [illegible] धारण [illegible] स्थित हैं और जिनने [illegible] के लिए [illegible] में [illegible] धारण किया हुआ है । १७

[आगे भी ५६८२-८३]

५६०९ कोई किसी कर्म से उसकी महिमा नहीं पा सकता जो सदा वृद्धि करता है। विश्व में उद्यमी प्रकाशमान; बुद्धिमानों से ग्राह्य, अजेय-निर्भय ओज वाले इन्द्र तक यज्ञों से कोई नहीं पहुँचता।१८

१० जिसे उत्पन्न संसार में महावेग-युक्त पृथिवियाँ हैं उसीमें वेद-वाणियाँ, बड़े प्रकाशमान सूर्य-नक्षत्र-तारे- सभी उस अजेय-उग्र-ग्रामों में जिताने वाले परमेश्वर की ही स्तुति करते हैं। १९

५६११-१२ [देखो पहले ५५३९-४०] २०-२१

सूक्त । ९३ इन्द्र

१३ उत्त्वा मदन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः। अव ब्रह्मद्विषो जहि ॥ १

१४ पदा पणींरराधसो नि बाधस्व महां असि। नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २

१५ त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्। त्वं राजा जनानाम् ॥ ३

१६ ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रञ्जातमुपासते। भेजानास सुवीर्यम् ॥ ४

१७ त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः। त्वं वृषन् वृषेदसि॥ ५

१८ त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः। उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥ ६

१९ त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः। वज्रम् शिशान ओजसा ॥ ७

५६२० त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा। स विश्वा भुव आभवः ॥ ८

१३ हे अदीर्ण बिजली ! तुझे स्तोम हृष्ट करे, धन उत्पन्न कर, ब्रह्म-द्वेषियों को मार। १
[ मन्त्र १-३ ऋ० ८.६४.१-३ में हैं। ]

१४ तू अपनी व्याप्ति से निर्धन कु-धनियों को रोक, तेरे-समान कोई नहीं है। २

१५ तू उत्पन्न-अनुत्पन्न (परमाणुओं) की स्वामिनी और जनों की राजा (दीप्ति-दायक) है। ३

१६ चाहती, प्रगतिशील प्रजा उत्पन्न इन्द्र बिजली) पास रखती हैं, वे उत्तम पराक्रम का सेवन करती हैं।४

१७ हे इन्द्र (बिजली) ! तू बल-ओज-पराक्रम से अधिक उत्पन्न होती है, बली और सुख-वर्षी है। ५

१८ ,, तू अन्धकार-नाशक; अन्तरिक्ष-व्यापक है, ओज से द्यौ को स्तम्भित करती है। ६

१९ ,, तू ओज से शस्त्रास्त्र तीक्ष्ण करती हुई दो बाहु (ऋण-धन) से सूर्य को धारण करती है। ७

२० ,, तू ओज से सभी उत्पन्न पदार्थों को वश में रखती है, सब भूमियों में व्याप्त है। ८

सूक्त ९४ । इन्द्र । ऋ० ५०-४४

५६२१ आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस् तुविष्मान्।
प्रत्वक्षाणो अतिविश्वा महांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥ १

२२ सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥ २

२३ एन्द्रवाहो नृपतिं वज्रबाहुमुग्रमुग्रासस्तविषास एनम्।
प्रत्वक्षसं वृषभं सत्यशुष्ममेमस्मत्रा सधमादो वहन्तु ॥ ३

२४ एवा पतिं द्रोणसाचं सचेतसमूर्ज स्कम्भं धरुण आ वृषायसे।
ओजः कृष्व सङ्गृभाय त्वे अप्यसो यथा केनिपानामिनो वृधे ॥ ४

५६२५ गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥ ५

५६२६ पृथक् प्रायन् प्रथमा देवहूतयो ऽकृण्वत श्रवस्या नि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥ ६
२७ एवैवापागपरे सन्तु दूढ्यो ऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुजे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥ ७
२८ गिरींरज्रान् रेजमानाँ अधारयत् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥ ८
२९ इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ् छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन् बोध्याभगः ॥ ९
५६३०-३१ [देखो पहले ५११५-१६ और ५५७५-७६]

५६२१ स्वयं स्वामी इन्द्र सम्राट् हमारे आनन्द के लिए आये जो धर्म से पालता अनेक पदार्थों का स्वामी है वह अपार साहस से शत्रुओं का नाशक हो ।

२२ हे नरपति! तेरा रथ उत्तम-स्थिर हो, दोनों घोडे सधे हों, हाथ में वज्र हो, हे राजा, तू सुमार्ग से शीघ्र सामने आ; हम तेरे सामर्थ्य का वर्धन करें । २

२३ राजा के वाहक उग्र-हृष्ट-महान्-आनन्दित हों जो उस उग्र-वज्री-तरुण-सुखवर्धी को हमारे मध्य लाएँ । ३

२४ इस प्रकार पति, शत्रु-नाशक-सचेत;-बल-स्तम्भ राजा को धारण करने में तू समर्थ हो। पराक्रम कर, ओज-संग्रह कर जो तुझ में रहे जिससे तू वृद्धि के लिए बुद्धिमानों का स्वामी हो । ४,

२५ हमें धन मिले ,मैं चाहता हूं कि तू मुझ सोमी के युद्ध में आये । इस आसन पर विराज तेरे रक्षा-साधन धर्म-सहित अजेय हैं । ५

२६ विद्वानों की श्रेष्ठ पुकारें अलग-अलग आती हैं । वे कठिन कार्य करते हैं । जो यज्ञ की नाव पर नहीं चढ़ सकते वे दुराचारी मार्ग में ही पड़े रहते हैं । ६

२७ ऐसे ही दूसरे दुर्बुद्धि पीछे रह जाते हैं जिन के अश्व बँधे ही रह जाते हैं । इनसे भिन्नों के कर्म-भोजन आदि साधन बहुत हैं वे दान में आगे रहते, अधिक ज्ञान-धन पाते हैं । ७

२८ वह सम्राट् कम्पित पर्वत-द्यौ-अन्तरिक्ष को धारण-प्रकाशित-व्यवस्थित करता है, भक्त का सोम पीकर हर्ष में वेद-वाचन करता है । ८

२९ हे धनी ! मैं तेरा सुकर्मी अनुशासन मानता हूं जिससे तू शान्ति-भञ्जक कुकर्मियों को नष्ट करता है । इस सवन में तेरा वास हो । हे धनी, तू इस यज्ञ-सोम में भागी बन, हमें जान । ९

५३३०-३१ [ देखो पहले ५११५-१६ और ५५७५-७६] १०-११

सूक्त ६५ । इन्द्र । ऋ० २.२२.१, १०.१३३.१-३॥

५६३२ त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस् तृपत् सोममपिबद् विष्णुना सुतं यथावशत् । स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ १

५६३३ प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत। अभीके चिदु लोककृत् सङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ २

३४ त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम्। अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ३

५६३५ वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः। अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥ ४

५६३२ महान् बली, तीन (शरीर-आत्मा-समाज) की उन्नतियों के विधानों में तृप्त सम्राट् यज्ञ-सम्पादित अन्न-युक्त सोम यथेच्छ पीता है, जो उस महान को बड़े कार्य करने के लिए हृष्ट करता है। वह दिव्य-सच्चा सोम इस देव सच्चे इन्द्र को मिलता है। १

३३ इस राजा की रथ-युक्त शक्ति देकर अर्चना करो। वह पास में ही स्थान कर संग्रामों में शत्रु-हन्ता, हमारी कामना जान लेता है कि शत्रुओं की धनुष-डोरियाँ टूट जायें। २

३४ हे इन्द्र! तू नहरें नीची कर फैलाता है; विघ्न नष्ट करता, शत्रु-रहित हो जाता; वरणीय अन्नादि पुष्ट करता है। हमारी कामना...[शेष पूर्वसमान]। ३

३५ हे सम्राट्! हमारी सब अरि रूपी कृपणताएँ और बुरे कर्म नष्ट हों। जो हमें मारना चाहता है उस पर तू शस्त्र चलाता है। तेरी दान-शक्ति धन देने वाली है। हमारी कामना.. (शेष पूर्ववत)

सूक्त ९६ (क)। इन्द्र। ऋ० १०-१६०, १-५

३६ तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन् तुभ्यमिमे सुतासः ॥ १

३७ तुभ्यं सुतास् तुभ्यमु सोत्वासस् त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥ २

३८ य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति।
न गा इन्द्रस् तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥ ३

३९ अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान् न सुनोति सोमम्।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥ ४

४० अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ।
आभूषन्तस् ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥ ५

(ख) यक्ष्म-नाशन (पहले ३-११ वें)

४१ मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥ ६

५६४२ यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय ॥ ७

# वैदिक दैनन्दिनी वैशाख २०५०. विक्रम

| तिथि | नक्षत्र | वार | तारीख | शौच | व्यायाम | आसन | प्राणायाम | सन्ध्या | हवन | स्वाध्याय | सत्सङ्ग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ वैशाख कृष्ण | चित्रा | बुध | अप्रैल-७ | | | | | | | | |
| २ | स्वाति | गुरु | ८ | | | | | | | | |
| ३ | विशाखा | शुक्र | ९ | | | | | | | | |
| ४ | अनुराधा | शनि | १० | | | | | | | | |
| ५ | ज्येष्ठा | रवि | ११ | | | | | | | | |
| ६ | मूल | सोम | १२ | | | | | | | | |
| १० | पुष्य | मङ्गल | १३ | | | | | | | | |
| ७ | उत्तराषाढा | बुध | १४ | | | | | | | | |
| ९ | श्रवण | गुरु | १५ | | | | | | | | |
| १ | धनिष्ठा | शुक्र | १६ | | | | | | | | |
| १ | शतभिषज् | शनि | १७ | | | | | | | | |
| १२ | पूर्वा भाद्रपदा | रवि | १८ | | | | | | | | |
| १३ | ,, | सोम | १९ | | | | | | | | |
| १४ | उत्तरा ,, | मङ्गल | २० | | | | | | | | |
| ३० अमा | रेवती | बुध | २१ | | | | | | | | |
| १ शुक्ल | अश्विनी | गुरु | २२ | | | | | | | | |
| १ | भरणी | शुक्र | २३ | | | | | | | | |
| २ | कृत्तिका | शनि | २४ | | | | | | | | |
| | रोहिणी | रवि | २५ | | | | | | | | |
| ४ | मृगशिरा | सोम | २६ | | | | | | | | |
| ५ | आर्द्रा | मङ्गल | २७ | | | | | | | | |
| ६ | पुनर्वसु | बुध | २८ | | | | | | | | |
| ७ | पुष्य | गुरु | २९ | | | | | | | | |
| ८ | आश्लेषा | शुक्र | ३० | | | | | | | | |
| १० | मघा | शनि | मई १ | | | | | | | | |
| ११ | पूर्वाफल्गुनी | रवि | २ | | | | | | | | |
| १२ | उत्तरा फल्गुनी | सोम | ३ | | | | | | | | |
| १३ | हस्त | मङ्गल | ४ | | | | | | | | |
| १४ | चित्रा | बुध | ५ | | | | | | | | |
| १५ पू | स्वाति | गुरु | ६ | | | | | | | | |

## आवश्यक सूचना

ग्राहक सदस्य कृपया अपने पते में स्थान के साथ सूची-संख्या 'पिन' अवश्य लिखें, हमें सूचना दें। सम्भव है वह शुद्ध न लिखे जाने से पोस्ट आफिस पत्रिका यथास्थान न पहुँच पाये। -सम्पादक

पृ० २०. वर्ष १७ अङ्क ४, मधु (चैत्र) वेद-ज्योति अप्रैल १९९३, न.६९२१।६२ डाक लख २०१

श्रीमन्! नमस्ते, आप का वर्ष २-४-९३ को पूर्ण हो चुका, कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजिये।

अथर्व वेद सौ)
साम ब्राह्मण
सामवंश ब्राह्मण, देवताध्याय, संहितोपनिषद्, प्रत्येक १०)
प्रत्येक बीस रुपये—
शतपथ
वेदार्थपारिजात—
खण्डन
अष्टाध्यायी
सम्पादक वीरेन्द्र सरस्वती

## ❀ 'वेद-ज्योति'—सम्बन्धी वक्तव्य, फार्म ४, नियम ८ ❀

१- प्रकाशन का स्थान—लखनऊ। २- अवधि—मासिक; तारीख २,३। ३-४-५ मुद्रक-प्रकाशक-सम्पादक— नाम वीरेन्द्र सरस्वती, पता सी ८१७, महानगर, लखनऊ। ६ स्वामित्व— वेद मन्दिर, सी ८१७ महानगर लखनऊ पिन २२६००६ (रजिस्टर्ड)

मैं, वीरेन्द्र सरस्वती; इस वक्तव्य द्वारा घोषित करता हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरे ज्ञान और विश्वास में सत्य है।

ह० वीरेन्द्र सरस्वती १-३-१९९३

### समाचार

होली, नया वर्ष, आर्य समाज-स्थापना-दिवस, श्री रामनवमी पर्व यथा समय सर्वत्र मनाये गये।

वैशाखी मेष संक्रान्ति सृष्टि-संवत् पर्व १४-४-९३ को मनाया जायेगा।

वाशिंगटन में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दू-सम्मेलन ६-८ अगस्त ९३ को होगा।

वैदिक साधनाश्रम तपोवन देहरादून का उत्सव २१ से २८-४-९३ तक होगा।

१० वाँ घूड़मल-आर्य पुरस्कार २५००) मरणोपरान्त श्री क्षितीश वेदालंकार को दिया उनकी पत्नी पवित्रा देवी और पुत्र विनय आदित्य ने गुरुदत्त-संस्थान को भेंट कर दिया।

सार्व० सभा दिल्ली की सम्प्रकाश पत्राचार-प्रतियोगिता में २०) शुल्क, आयु १८-४० वर्ष, अंडर-ग्रेजुएट, अन्तिम तारीख ३१-७-९३, पुरस्कार प्रथम ११०००) द्वितीय ५०००) तृतीय २०००) है।

शोक है कि पं० श्री हरदत्त शास्त्री देहरादून, पूर्णचन्द्र वेदालंकार गोरखपुर; आचार्य स्वामी विश्वश्रवा वैदिक बरेली (९०) २८-२-९३ को मदनमोहन शास्त्री अजमेर का देहान्त होगया।

प्रेषक—डा० अनिलकुमार, आदर्श प्रेस, लखनऊ ६ सेवा में संख्या ४३ श्री सम्पादक

सी ८१७ महानगर लखनऊ ६ दूरभाष ७३५०१ स्थान डाक-घर पिन जिला

गुरुकुल पत्रिका
गुरुकुल कांगड़ी

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

वर्ष १७ अंक ५ अथर्व वेद खण्ड ५६

वैशाख २०५० मई १९९३ साम वेद

विश्व वेदपरिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९४, दयानन्दाब्द १६९
शुल्क वार्षिक ४०), आजीवन ४००), विदेश में २५ पौंड, ४० डालर, एक अंक का ४)
सम्पादक— वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ० प्र० २२६००६; दूरभाष ७३५०१। सहायक— विमला शास्त्री
सहायक सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक श्री ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व वेदपरिषद्, लखनऊ ३।

विषय-सूची—



३ वेद-मर्मज्ञ— वीरेन्द्र सरस्वती, स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती; म० म० युधिष्ठिर मीमांसक

## नववर्ष मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९४ शुभ हो।

# सत्यार्थ प्रकाश—मन्त्र-व्याख्या

इस गरुड़ पुराण का कहा हुआ तो अप्रमाण परन्तु जो वेदोक्त है कि यमेन वायुना सत्यरा जन् इत्यादि वेद-वचनों से निश्चय है कि 'यम' नाम वायु का है। शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और जो सत्यकर्ता पक्षपातरहित परमात्मा 'धर्मराज' है वही सबका न्यायकर्ता है।

क्रमांक ६१ । ऋ १.१६३.२ ऋषि दीर्घतमाः, देवता अश्व अग्नि, छन्द त्रिष्टुप्, स्वर धैवत।

**यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एनं प्रथमो अध्यतिष्ठत् ।**

**गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ।।**

हे वसुओ ! (यमेन) नियमकर्ता वायु से दिये हुए इस अग्नि को तारने वाला बिजली रूप अग्नि शिल्प में प्रयुक्त करो। प्रथम अधिष्ठाता हो। वायु इसकी स्नेहक्रिया को और सूर्य से अग्नि ग्रहण करे उसको तुम निरन्तर काम में लाओ।(म० द० सरस्वती कृत सत्यार्थ० स० ११, भाष्य)

## पतञ्जलि का योग दर्शन शास्त्र (गतांक से आगे)

इस प्रकार प्राणायाम-पूर्वक उपासना करने से आत्मा के ज्ञान को ढाँकने वाला आवरण जो नित्यप्रति नष्ट होता जाता और ज्ञान का प्रकाश धीरे धीरे बढ़ता जाता है। (भा० भू०)

ऐसे एक-दूसरे के विरुद्ध क्रिया करेँ तो दोनों की गति रुक कर प्राण अपने वश में होने से मन इन्द्रियाँ भी स्व-अधीन होती हैं, बल-पुरुषार्थ बढ़कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है कि जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी ग्रहण करती है। इससे मनुष्य-शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल-पराक्रम-जितेन्द्रियता होगी; सब शास्त्रों को थोड़े ही काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।

जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्ण आदि धातुओं का मल नष्ट होकर शुद्ध होता है, वैसे प्राणायाम करके मन-इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं। [स० प्र० समुल्लास तीन]

**१०४ धारणासु च योग्यता मनसः । ५३**

उस अभ्यास से यह भी फल होता है कि परमेश्वर के बीच में मन तथा आत्मा की धारणा होने मोक्ष-पर्यन्त उपासना-योग और ज्ञान की योग्यता बढ़ती जाती है, तथा उससे व्यवहार एवं परमार्थ का विवेक भी बराबर बढ़ता रहता है। [भा० भू०]

### योग का अङ्ग ५— प्रत्याहार

**१०५ स्व-विषय—असम्प्रयोगे चित्त-स्वरूप-अनुकार इवेन्द्रियाणाँ प्रत्याहारः । ५४**

**१०६ ततः परमा वश्यता इन्द्रियाणाम् । ५५**

प्रत्याहार उसका नाम है कि जब पुरुष अपने मन को जीत लेता है तब इन्द्रियों का जीतना अपने आप हो जाता है क्योंकि मन ही सब इन्द्रियों का चलाने वाला है। (भा० भू०)

तब वह मनुष्य जितेन्द्रिय होकर जहाँ चाहे उसी में मन ठहरा-चला सकता है और उसे ज्ञान हो जाने से सदा सत्य से प्रीति हो जाती एवं असत्य में कमी नहीं। (भा०भू०)। इति।

५६४१-४४ [देखो पहले ३.११.३-४] ८-६

४५ आहार्षमविदं त्वा पुनरागाः पुनर्णवः। सर्वाङ्ग सर्वं ते चक्षुः सर्वमायुश्च तेऽविदम् ॥ १०

९६ ग ऋ १०.१६२.१-६

४६ ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः। अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥ ११

४७ यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये। अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥ १२

४८ यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्। जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥ १३

४९ यस्त ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये। योनिं यो अन्तरारेढि तमितो नाशयामसि ॥ १४

९६ घ

५० यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते। प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि

५१ यस्त्वा स्वप्नेन मनसा मोहयित्वा " ॥ १६

५२-५८ [देखो पहले २.३३.१-७] १७-२३

५९ अपेहि मनस्पते ऽपक्राम परश्चर। परो निर्ऋत्या आचक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥ २४

सूक्त ९६- ५६३६ हे चिकित्सक और सूर्य ! इस तीव्र-वेगी-युवा रोगी की रक्षा कर, सब के लिए रमणीय रोग-हरण-शक्ति (धारणाकर्षण गुण) यहाँ प्रयुक्त कर। तुझे छोड़कर अन्य यज्ञ-कर्ता यह नहीं जानते। ये सोम तेरे प्रयोगार्थ हैं। १

३७ हे चिकित्सक ! ये सिद्ध किये और किये जाने वाले सोम तेरे लिए हैं, उन्हें सेवन कराता तू सबको जानता हुआ सोम की रक्षा कर। २

३८ जो दिव्य गुण चाहने वाला अभिलाषी मन से इस के लिए पूरे हृदय से सोम तय्यार करता है वह इन्द्र उसकी वाणियाँ नहीं टालता, इसके लिए प्रशंसनीय-उत्तम व्यवहार ही करता है। ३

३९ जो धनी इसके लिए सोम नहीं तय्यार करता उसके लिए यह अप्रकट रहता है; उसे कुछ दूर ही रखता है और ब्रह्म-द्वेषियों को बिना कहे मारता है। ४

४० प्राण-गौ-भूमि-बल चाहते हुए हम तुझे पाने के लिए बुलाते हैं। तेरी नयी सुमति में आभूषित रहकर हम हे इन्द्र ! तुझको सुख से बुलायें। ५

४१-४४ ९६ ख। यक्ष्म-नाशन। [देखो पहले ३.११.१-४] । ६-९

४५ हे सर्वाङ्ग! मैं तुझ को मौत से छीनता-बचाता हूं, फिर नया होकर आ, तेरा सब दृष्टि-आयु पाऊँ १०

९६ ग

४६-४७ (हे स्त्री !) जो रोगोत्पादक बुरे परिणाम वाला क्रिमि तेरी गर्भ-योनि में सोया हो उस मांसभक्षी को यहाँ से ब्रह्म (गूलर) के साथ क्रिमि-नाशक अग्नि (चीता नामक औषधि) दूर करे। ११-१२

४८ जो तेरा गिरता-स्थिर-सरकता-उत्पन्न गर्भ नष्ट करे उस क्रिमि को यहाँ से नष्ट करें। १३

४९ जो क्रिमि तेरे ऊरुओं के मध्य हो, दम्पती में सोया हो, योनि में चाटता उसे यहाँ से नष्ट करें। १४

५०-५१ जो व्यभिचारी धोखे का भाई-पति होकर, सोती, अँधेरे बेहोशी में तुझ पर गिरे, तेरी सन्तान को मारना चाहे उसे यहाँ से नष्ट करें। १५-१६

५२-५८ [देखो पहले २.३३ १-७] । १७-२३

५५९ हे मन के पति बने पाप ! अलग हट जा, दूर जा, परे जा। कष्ट से भी कह दे कि तू दूर हो, जीवित का मन बहुत प्रकार का होता है। २४ ऋ० १०-१६४-१

# अन्तिम प्रपाठक ३६ का अनुवाक ९

विषय— भूषतीत्यादि०, त्वं दाता प्रथम इत्यादि०, यो राजेत्यादि०, स्वादोरित्यादि०, प्रातमानादि०, इमा ब्रह्म बृहदित्यादि०, अथर्वाचत्वा तन्वमिन्द्रमेवेत्यादि०; वितन्वते प्रति भद्राय भद्मि-त्यादि०, विश्वस्मादिन्द्र उत्तर इत्यादि०; वृषाकपायीत्यादि०, य एष स्वप्न-नंशन इत्यादि० पदार्थ विद्या, यद्वा वागीत्यादि०; ऋतयेत्यादि०, मधुमानित्यादि पदार्थविद्या । —म० द० सरस्वती ।

सूक्त ९७। इन्द्र । ऋ० ८.६६,७-९ साम २७२; १६६१

६० वयमेनमिदा ह्योऽपीपेमेह वज्रिणम् ।

तस्मा उ अद्य समना सुतं भरा नूनं भूषत श्रुते ।।१

६१ वृकश्चिदस्य वारण उरामथिरा वयुनेषु भूषति ।

सेमं नः स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र प्र चित्रया धिया ।। २

६२ कदू न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम् । केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ।।३

६० हम यहां इस वज्री को ही सोम पिलाते हैं, तू मन से आज (सदा) उसी के लिए साम दे। उसकी विजय सुनने पर निश्चय ही उसे आभूषित करो । १

६१ इसके कर्मों में भेड़िया–हाथी–समान अति व्यथाकारी दुष्ट भी इसे भूषित करता है । हे इन्द्र ! वह तू हमारा यह स्तोम स्वीकार करता हुआ विचित्र बुद्धि–कर्म के साथ आ । २

६२ इस इन्द्र के पौरुष-युक्त कार्य कब नहीं सुने गये ? इस दुष्ट–नाशक ने किस जन की वेद-सम्मत बात नहीं सुनी ? ३

सूक्त ९८ । इन्द्र । ऋ० ६-४६.१-२, यजु २७-३७-३८: साम २ ४,८०९

६३ त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः । त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः

६४ स त्वं न श्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।

गामश्वं रथ्यमिन्द्र सङ्किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ।। २

हे अभियन्ता ! हम कारीगर बल पाने के लिए अज्ञानों में सच्चे पति तुझको ही पुकारते हैं २ दुःखी नर कष्ट की पराकाष्ठा में तुझ को ही बुलाते हैं । १

— हे विचित्र वज्रधारी महान स्तुत ! वह तू हमें, विजय के लिए सच्चे अन्न–बल–समान, गौ और रथ-युक्त अश्व दे । २

सूक्त ९९ । इन्द्र (विद्युत्) (८-३-७;८) साम २५६; १५७३–७४

६५ अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः । समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ।।

६६ अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।

अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ।। २ यजु ३३-९७

हे बिजली ! उत्तम मेधावी मनुष्य और क्षत्रिय तुझे सुख पाने के लिए, स्तुतियों द्वारा स्वर सहित गाते हैं । १

बिजली ही इस उत्पन्न जीव का सुख-वर्षी बल व्यापक आनन्द में बढ़ाती है । उसकी यह महिमा मनुष्य सदा ही अनुकूलता से वर्णन करते हैं । २

सूक्त १०० । इन्द्र । ऋ. ८-९८.७-९ । साम उ १.१.२३

५६६७ अधा हीन्द्र गिर्वण उप त्वा कामान् महः ससृज्महे । उदेव यन्त उदभिः ॥ १

६८ वार्ण त्वा यव्याभिर्वर्धन्ति शूर ब्रह्माणि । वावृध्वांसं चिदद्रिवो दिवे दिवे ॥ २

६९ युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे । इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ३

सूक्त १०० । इन्द्र । ५६६७ हे वाणी-भजनीय बिजली ! इन बड़ी बड़ी कामनाएँ तेरे साथ पूरी करते हैं जैसे जल जल के साथ मिलता है । १

६८ हे शूर-प्रेरक ! विज्ञान तुझ वृद्धिकारी को दिन-दिन बढ़ाता है जैसे नदियों से जल को । २

६९ बिजली-वाहक वेद-युक्त जन बड़े यन्त्र वाले रथ में दो (धारक-प्रेरक) शक्तियाँ जोड़ते हैं ।

सूक्त १०१ । अग्नि । (१.१२.१-३), साम ७९०-७९२

७० अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् । अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ १

७१ अग्निमग्निं हवीमभिः सदा हवन्त विश्पतिम् । हव्यवाहं पुरुप्रियम् ॥ २

७२ अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे । असि होता न ईड्यः ॥ ३

सूक्त १०१- अग्नि । ( १.१२.१-३), साम२ । ७० इस यज्ञ के उत्तम विधाता-ज्ञापक, देने-लेनेवाले सब धन के दाता अग्नि (अग्रणी ईश्वर, प्रकाशमान आग-बिजली-सूर्य) को हम वरण करें । १

७१ मनुष्य प्रजा-पति, हव्य के वाहक सर्व-प्रिय आगे ले जानेवाले अग्नि को मन्त्रों से सदा बुलाते हैं ।२

७२ हे अग्नि ! आकाश में पहुँचाने वाले चालक और याज्ञिक के लिए ज्ञात हुआ तू देवों (दिव्य गुणों-पदार्थों-विद्वानों) को यहाँ पहुँचा । तू हमारा प्रशंसनीय होता (सुख-दाता) है । ३

सूक्त १०२ । अग्नि । (३.२७.१३-१५) साम १५३८-४०

७३ ईळेन्यो नमस्यस् तिरस् तमांसि दर्शतः । समग्निरिध्यते वृषा ॥ १

७४ वृषो अग्निः समिध्यते ऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥ २

७५ वृषणं त्वा वयं वृषन् वृषणः समिधीमहि । अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥ ३

अग्नि (१-२७-१३-१५) ७३ स्तुत्य-नमस्य, तम-नाशक-दर्शनीय, सुख-वर्षी अग्नि दीप्त हो । १

७४ अश्व-समान देव-वाहक, सुख-वर्षक अग्नि दीप्त की जाती है, हवि वाले उसकी स्तुति करते हैं ।

७५ हे सुख-वर्षी अग्नि ! बली हम तुझ बली, बड़े देदीप्यमान को दीप्त करते हैं । ३

सूक्त १०३ । (८.७१.१४-१६) साम पू १-५-६

७६ अग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
अग्निं राये पुरुमीढ श्रुतं नरो ऽग्निं सुदीतये छर्दिः ॥ १

७७ अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे ॥ २

५६७८ अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश् चरन्त्यध्वरे ।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहे ऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ ३

अग्नि। (८.७१.१४) ५६७६ हे ज्ञान-सिंचित! रक्षा के लिए गाथाओं से बड़े प्रकाश-युक्त विद्यु-अग्नि का वर्णन कर। नेता होकर तू क्लेश-क्षय-करणार्थ घर-समान नेता खोज। १

७७ हे विद्वान्! तू अग्नियों के साथ आ, तुझको होता (विद्या-दानी) रूप में वरण करते हैं। संयमी-हवियुक्त जन तुझ याज्ञिक को स्वीकार करें; तू आसन पर बैठ। २

७८ हे बल-प्रेरक, अङ्ग-रस अग्नि! यज्ञ में स्रुवा आदि पात्र तुझको ही लक्ष्य करके चलते हैं। हम बल-रक्षक, यज्ञों में श्रेष्ठ अग्नि (ईश्वर) से जल-प्रकाश माँगा करें। ३

सूक्त १०४। इन्द्र। (८.३.३-४)साम २५०; १६०७ यजु ३३.८१-८३

७९ इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितो ऽभि स्तोमैरनूषत ॥ १

८० अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ २

८१ आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ ३

८२ त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ ४

७९ हे महाबली-पालक (बिजली-सूर्य)! तुझको ये मेरी वाणियाँ विख्यात करें। अग्नि-समान तेजस्वी और पवित्र विद्वान् स्तोमों से तेरी सब ओर से प्रशंसा करते हैं। १

८० यह हजारों मन्त्र-द्रष्टाओं से साहस-धैर्य-पूर्वक साक्षात् किया जाता है और समुद्र-समा फैला हुआ है, इसकी महिमा सत्य है, विप्र-राज्य में उत्तम व्यवहारों में उसके बल को सराहता हूं।

८१ हमारा सब युद्धों में बुलाया गया दुष्ट-नाशक उत्तम-धनुष, पूज्य इन्द्र मन्त्र-यज्ञ भूषित करें।

८२ तू पहला धनों का दानी, सच्चा ऐश्वर्य-युक्त कर्ता है। महाधनी कष्ट-नाशक तेरे महान् बल के योग्य कर्मों को हम वरण करते हैं। ४ [दो मन्त्र ऋ० ८.९०.१-२साम २६९, १४९२]

सूक्त १०५। इन्द्र। (८.९९.५-७), यजु ३३-६७, साम ३११, १६३७

८३ त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ १

८४ अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ २

८५ इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम्।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ३ [साम पू ३-१०-१]

५६८६-८७ [पहले ५६०७-८] ४-५

५६८३ हे सेनापति! तू युद्धों में सब शत्रु-सेनाएं हराता है, अयश-नाशक, सुखोत्पादक, पाप-विनाशक है। हमारे हिंसकों का नाश कर। १

५६८४ हे इन्द्र ! द्यौ-भूमि (की सेनाएँ) तेरे संहारकारी-वेगयुक्त बल के पीछे चलती हैं जैसे माता-पिता शिशु के पीछे रक्षार्थ चलते हैं । तेरे मन्यु से सब शत्रु ढीले पड़ जाते हैं जब तू घेरने वाले दुष्ट का नाश करता है । २

८५ हे मनुष्य ! तुम्हारी रक्षार्थ युवा-प्रेरक, न दबने वाले, स्फूर्ति-युक्त, शीघ्र विजयी, प्रगति-युक्त, महारथी, जल-सेना के बढ़ाने वाले सेनापति का वर्णन करता हूं । ३

८६-८७ [देखो पहले ५६०७-८] ४-५

सूक्त १०६ । इन्द्र (८.१५.७-६), साम ३ ८-१-११

**८८ तव त्यदिन्द्रियं बृहत् तव शुष्ममुत क्रतुम् । वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥ १**

**८९ तव द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः । त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥ २**

**९० त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः । त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥ ३**

८८ हे बिजली ! तेरा बड़ा ऐश्वर्य है, वेद-वाणी उन बल-कर्म-शक्ति का वर्णन करती है । १
८९ ;; द्यौ तेरा बल और पृथिवी यश बढ़ाती है । जल और मेघ तुझे बढ़ाते हैं । २
९० ,, बड़े ऐश्वर्य-शाली सूर्य-जल (हाइड्रोजन-आक्सीजन), वायु-बल तेरे पीछे चलते हैं । ३

सूक्त १०७ । इन्द्र-सूर्य (८-६-४—६) साम ३ ८-१-१३

**९१ समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥ १**

**९२ ओजस् तदस्य तित्विष उभे यत् समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ २**

**९३ वि चिद् वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ३**

**५६९४-५७०४ [देखो पहले ५-२-१-६ और १३-२-३४--३५] ४-१४**

**५७०५ सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।**
**यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ [ऋ१.११५.२] १५**

९१ सब कृषक इस इन्द्र के मन्यु के आगे झुकते हैं जैसे नदियाँ समुद्र के आगे । १
९२ इस इन्द्र(सूर्य)का ओज तब प्रकट होता है जब वह द्यौ-पृथिवी को चम-समान लपेटे रहता है ।२
९३ यह कँपाने वाले मेघ का सिर सैंकड़ों पर्व के वज्र (किरणों) से छिन्न-भिन्न कर देता है । ३
९४-५७०४ [देखो पहले ५.२.१-६ और १३.२.३४-३५] ४-१४

५ सूर्य प्रकाशमान उषा देवी के पीछे प्रकट होता है जैसे पति पत्नी के पीछे । जहाँ ज्योतिषी नर (गणित के) व्यवहार की कामना करते हुए कल्याण के लिए युगों को गिन कर सुख फैलाते हैं । १५

सूक्त १०८ । इन्द्र [परमेश्वर] ऋ० ८-९८-१०-१२

**६ त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे । आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १**

**७ त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ । अधा ते सुम्नमीमहे ॥ २**

**८ त्वां शुष्मिन् पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो । स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ ३**

६ हे सैंकड़ों कर्म वाले विश्व-द्रष्टा इन्द्र! तू हमें ओज-बल-धन और संग्राम-जेता वीर सन्तान दे । १
७ ,, सर्वत्र वसे ! तू ही हमारा पिता-माता है, अतः तेरा सुख माँगते हैं । २
८ ,, , बली, बहुत नाम वाले ! मैं प्रार्थना करता हूं कि वह तू हमें उत्तम वीरता दे । ३

सूक्त १०६ । इन्द्र । ऋ० १-८४,१०-१२ साम १००५-७

५७०६ स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥ १

१० ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकम् " ॥२

११ ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।
व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये " ॥ ३

६ इस प्रकार जो पृथिवियाँ वर्षा-कारी सूर्य के साथ गति शाली हैं वे स्वादु मधुर रस पीती और शोभा के लिए हृष्ट होती हैं। वे स्वदीप्ति के लिए वसु (सम्पत्ति) रूप हैं। १

१० इस सूर्य की स्पर्श चाहतीं-करती, हृष्ट करती प्रिय किरणें औषधि-रस सिद्ध करतीं हैं, ताप-वज्र-बाण को देतीं हैं। वे स्वदीप्ति... (शेष पूर्ववत्)। २

११ चेतना-दायक वे उसकी किरणें अन्न के साथ सहन-शक्ति देती हैं। वे पूर्व-ज्ञान कराने के लिए बहुत नियमों को प्रगति देती हैं। वे स्वदीप्ति ... (शेष पूर्ववत्)। ३

सूक्त ११० । ऋ० (८.९२.१९-२१) साम उ० १-२-४

१२ इन्द्राय मद्वने सुतम्परि ष्टोभन्तु नो गिरः । अर्कमर्चन्तु कारवः ॥ १

१३ यस्मिन् विश्वा अधि श्रियो रणन्ति सप्त संसदः । इन्द्रं सुते हवामहे ॥ २

१४ त्रिकद्रुकेषु चेतनन्देवासो यज्ञमत्नत । तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥ ३

१२ हृष्ट शासक के लिए हमारी वाणियाँ उसके ऐश्वर्य की प्रशंसा करें, कारीगर पूज्य को पूजें।१

१३ जिसमें सब शोभा-सम्पत्तियाँ, ७ की संसदें प्रसन्न रहती हैं उस सम्राट् को अभिषेक पर बुलाएँ।२

१४ तीन स्थानों (विधान-न्याय-कार्यपालिका) में चेतना-दायक जिस यज्ञ (सङ्गठन) को विद्वान् बढ़ाते हैं उसी को हमारी वाणियाँ बढ़ाएँ। ३

सूक्त १११ । इन्द्र । (ऋ० ८-१२; १६-१८) यजु ३३-३५ साम ३८४

१५ यत् सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये । यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥ १

१६ यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे । अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ॥ २

१७ यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते । उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥३

हे सूर्य ! जो सोम यज्ञ-द्यौ-अन्तरिक्ष-हवाओं में है उसके रसों से तू हृष्ट होता है। १

हे शक्ति-शाली ! जो सोम दूर तक फैले समुद्र-अन्तरिक्ष में है उससे तू हृष्ट होता ; हमारे भी उत्पादित सोम के रसों से तू हृष्ट हो। २

हे सच्चे पति ! तू जिस सोमी यजमान को बढ़ाता और जिसके कथन में तेरा महत्त्व प्रतिपादित होता है उसे ऐश्वर्यों से आनन्दित कर। ३

सूक्त ११२ । इन्द्र । ऋ० ८.९३,४-६ साम पू २-४-२ यजु तेतीस-पैंतीस

५७१८ यदद्य कच्च वृत्रहन्नुदगा अभि सूर्य । सर्वं तदिन्द्र ते वशे ॥ १

१९ यद्वा प्रवृद्ध सत्पते न मरा इति मन्यसे । उतो तत् सत्यमित् तव ॥ २

२० ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे । सर्वांस्ताँ इन्द्र गच्छसि ॥ ३

हे अन्धकार-मेघ-नाशक ! सदैव जब तू उदय होता है तब सब कुछ तेरे ही वश में होता है। १
ओ सत्य-पति महान् ! यदि तू मानता है कि मैं न मरूँ तो वह बात सत्य हो। २
जो सोम दूर या पास में (यज्ञ-द्वारा) सम्पन्न किये जाते हैं उन सब को तू पाता है।

सूक्त ११३ । इन्द्र   ऋ ८-६१-१-२   साम ३ ५-१-१४

५७२[१] उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥ १

२२ तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥ २

सम्राट् हमारा दोनों पक्षों का वचन सुने, महाधनी-बली वह अच्छी बुद्धि-सहित सोम-पानार्थ आये।१
उसी बली-सुखवर्षक राजा को बल-पराक्रम के कारण, भूमि-आकाश-समान; शासित-शासक को दो समितियां निर्वाचित करें। क्योंकि तेरा मन सोम-कामी है अतः उनमें प्रथम होकर रह। २

सूक्त ११४ इन्द्र ,(ऋ ८-२१-१३-१४) साम ३ ६-२-५

२३ अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि। युधे दापित्वमिच्छसे । १

२४ नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित् पितेव हूयसे ॥ २

हे परमेश्वर ! सदा स्वभाव से भतीजा-शत्रु-शरीर-बन्धु-रहित तू युद्ध से सम्बन्ध चाहता है।१
तू धन-लालची को मित्र नहीं स्वीकार करता। वे सुरा के भोगी प्रजा को सताते हैं। जब तू गर्जना-संहार करता है तभी उनके द्वारा पिता-समान पुकारा जाता है। २

सूक्त एक सौ पन्द्रह । इन्द्र ऋ ८.६.दस-बारह । साम ३ ७-१-५

२५ अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥ १

२६ अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्मिद् दधे ॥ २

२७ ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद् वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ३

मैं पिता परमेश्वर का सत्य-ज्ञान और बुद्धि पाता हूं, मैं सूर्य-समान हो जाऊं। १
मैं उस पूर्व-ज्ञान से, मेधावी-समान, वाणियाँ शोभित करूँ जिससे जीव बल धारण करता है। २
हे ईश्वर ! जो तेरी स्तुति नहीं करते और जो मन्त्र-दर्शन-कर्ता गुण-वर्णन करते हैं, उनमें मुझसे प्रशंसित तू बढ़ और बढ़ा। ३

सूक्त ११६ । इन्द्र (ऋ ८-एक-तेरह से चौदह)

२८ मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १

२९ अमन्महीदनाशवो ऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ २

५७२८ हे शक्तिमान् ! हम तुझ से बहिष्कृत-समान आनन्द-रहित, छोड़े वन-समान निष्फल न हों, हम रोष-रहित होकर प्रबल माने जाएँ और तेरा मनन करें। १
हे अज्ञान-नाशक शूर ! हम धीर-सौम्य हो तेरा मनन करें और स्तोम से एक बार आनन्द पायें। २

सूक्त एक सौ सत्रह। इन्द्र। ऋ ७-२२-१ से-तीन, साम ८ तीन-१-तेरह

५७३० पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः। सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा॥ १

३१ यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि। स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु॥ २

३२ बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां या ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम्। इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व॥ ३

हे अश्वगन्धा आदि औषधि वाले रोग-नाशक इन्द (वैद्य)! तू वह सोम पी-पिला जिस से जन हृष्ट हो, जिसे मेघ पैदा करता, पत्थर पीसता, अश्व-समान निष्पादक-बाहुओं से सिद्ध होता है। १

हे समर्थ-बसाने वाले, हरणशील अश्व-युक्त वैद्य! जो तेरा हृष्ट बल है जिससे तू रोग नष्ट करता है वह तुझे आनन्दित करे। २

हे प्रशंसनीय! मेरी यह बात अच्छे प्रकार जान जिसे विद्वान् समर्पित करता है। तू मिलकर हर्ष वाले स्थान में ये अन्न-धन सेवन कर-करा। ३

सूक्त ११८। परमेश्वर। ऋ ८-तीन और ८-६१ के ५-६, साम २१५, १५७९

३३ शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि॥ १

३४ पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर॥ २

३५ इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे। इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये। ३

३६ इन्द्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत्।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे स्वानास इन्दवः॥ ४

हे शक्ति-पति शूर! तू सब रक्षाओं से शक्ति दे; हम ऐश्वर्यशाली-यशस्वी-धनी तेरे पीछे चलें। १

ओ देव, तू विश्व-पुर-वासी; अश्व-गो-वर्धक, शक्ति-स्रोत, तेजस्वी-हितकर-रमणीय है, तेरा दिया कोई नष्ट नहीं कर सकता। मैं जो-जो माँगूँ वह-वह दे। २

हम भक्त दिव्य-गुण-विस्तारार्थ यज्ञ-प्रयत्न-युद्ध-धन-प्राप्ति-दान में परमात्मा को ही पुकारें। ३

परमात्मा महिमा से द्यौ-भूमि फैलाता, सूर्य को दीप्त करता है, उसमें सब भुवन-चन्द्रादि स्थित हैं। ४

सूक्त ११९। इन्द्र। ऋ. ८.५२.९। ५१.१० साम उ ८-२-७; ७-६-१९

७ अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत॥ १

३८ तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः॥ २

हे मनुष्यो, सनातन ज्ञान वेद का मनन करो, इसे जीवों के लिए उपदेश करो, सत्य-ज्ञान की उत्तम-बड़ी वेद-वाणियों का वर्णन करो जिससे स्तोता की मेधा बढ़े। १

५७३८ शीघ्रकारी-बुद्धिमान् आनन्दस्वरूप-प्रकाश-वर्षक-पूजनीय परमात्मा की उपासना करते हैं कि जिससे हमें ऐश्वर्य-आनन्द-बल-नव जीवन-दायक-ज्ञान-दीप्तियाँ मिलें॥ २

सूक्त १२० । इन्द्र । ऋ ८.४.१-२ साम ३ ५-१-१३

५७३९ यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग् वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥ १

४० यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस् त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥ २

३९ हे इन्द्र ! तू पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण में नरों से बुलाया जाता है; बहुत बार प्रेरित होता चारों पुरुषार्थ चाहने वाले मनुष्य-संघ में भी प्रथित होता है । १

४० और तू विद्या धनवान्-शान्त विद्वान्-रक्षक-व्यापारी-श्रमिक वर्गों में सबको हृष्ट करता है। हे कर्मयोगी ! तेरे स्तोता-मेधावी-विद्वान् स्तुतियों से तुझे बुलाते हैं, आ । २

सूक्त १२१ । इन्द्र ऋ० ७-बत्तीस-२२-२३ साम २३३, ६८० यजु २७-पैंतीस-छत्तीस

४१ अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥ १

४२ न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस् त्वा हवामहे ॥ २

४१ हे शूर, दूध-बिना गौ-समान हम इस जङ्गम-स्थावर-स्वामी और सुख-दर्शक तुझ को सब ओर से झुकते; प्रशंसा-नमस्कार करते हैं । १

४२ हे धन-स्वामी, कोई दिव्य-पार्थिव पदार्थ तेरे-समान न हुआ न होगा । अश्व-गौ-इच्छुक हम शक्ति-शाली होकर तेरी प्रशंसा कर पुकारते हैं । २

सूक्त एक सौ बाईस । इन्द्र । ऋ० एक-तीस-तेरह-पन्द्रह, साम ३ चार-एक-चौदह

४३ रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः । क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १

४४ आ घ त्वावान् त्मनाप्त स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः । ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ २

४५ आ यद् दुवः शतक्रतवा कामं जरितॄणाम् । ,, शचीभिः ॥ ३

अन्न वाले हम जिस प्रजा के साथ हृष्ट रहें वह सभाओं में सर्वत्र मिल कर सूर्य-बिजली के प्रयोग अति ऐश्वर्य-शक्ति से युक्त हों । १

दो पहियों-बीच लगा धुरा चलता हुआ अपने ही आश्रय रहता है वैसे ही हे बली सूर्य-बिजली, स्वाश्रय तुम स्तोता-प्रयोक्ताओं को मिलते हो । २

हे सैकड़ों कर्म वाली बिजली, क्रियाओं से चलते धुरे-समान; तू स्तोता-प्रयोक्ताओं को कामना अपनी शक्ति-क्रियाओं से पूरी करती है । (तीन)

सूक्त १२३ । सूर्य । ऋ० १-११५-४-५ य ३३-३७

४६ तत् सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार ।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद् रात्री वासस् तनुते सिमस्मै ॥ १

५७४७ तन्मित्रस्य वरुणस्याभि चक्षे सूर्यो रूपङ्कृणुते द्योरुपस्थे ।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ २

५७४६ सूर्य की वह दिव्यता-महिमा है कि अन्तरिक्ष-मध्य फैली किरणों को समेट लेता है। जब यह किरणें एक स्थान से हटाता है तभी रात सबके लिए अँधेरा करता है। १

४७ द्यौ के मध्य सूर्य अपना रूप मित्र-वरुण (हाइड्रोजन-आक्सीजन) के मेल से दिखाता है। इस का चमकता बल अनन्त है,(भूगोल के)एक ओर किरणें दिन, दूसरी ओर काली रात बनाती हैं। २

सूक्त १२४ इन्द्र। ऋ० ४-३१-१-३ २७-३६-४१; ३६-४६ साम ३ १-१-१२

४८ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ १

४९ कस् त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढ़ा चिदारुजे वसु ॥ २

५० अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतं भवास्यूतिभिः ॥ ३

५१-५३ [देखो पहले २०-६३-१-३]

४८ (हे इन्द्र,) विचित्र-सदा बढ़ा-कमनीय तू सदा बढ़ी-सुखद रक्षा-बुद्धि से हमारा सखा होता। १

४९ सत्य-सुखद-आनन्द-अन्न-दाता-महान् वह तुझे हर्ष-युक्त करता; नीरोगितार्थ दृढ़ धन देता है।२

५० सखा-स्तोता-रक्षक तू सर्वतः रक्षाओं से सकड़ों प्रकार सौ वर्ष तक हमारा सुरक्षक हो। ३

४

५१-५३ [देखो पहले २०-६३-१ से तीन]

सूक्त १२५। इन्द्र-अश्वी (ऋ १०-एक सौ इकतीस— एक से तीन)

५४ अपेन्द्र प्राचो मघवन्नमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व।
अपोदीचो अप शूराधराच उरौ यथा तव शर्मन् मदेम ॥ १

५५ कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥ २

५६ नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सङ्गमेषु।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥ ३

५७ युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा। विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥

५८ पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ५

५९-६० [देखो पहले ७-९१, ९२ ६—७

५४ हे धनी, रिपु-नाशक, पराक्रमी बिजली के अग्र! तू हमारे पूर्व पश्चिम उत्तर-दक्षिण के रिपु दूर हटा, जिससे हम तेरे विशाल आश्रय में हृष्ट रहें। १

५५ जैसे किसान क्रमानुसार जौ आदि अन्न काटते हैं वैसे ही तू उनके प्रयोज्य साधन यहाँ-वहाँ सर्वत्र कर जो वृद्धि अन्न-दान नहीं त्यागते। २

५६ बिना बैल या एक बैल से हल नहीं चलता और न हो युद्धों में अन्न-यश मिलता है अतः उन्हें चाहने वाले बुद्धिमान् मित्र रूप में आनन्द-दायक बिजली चाहते हैं। ३

५७ [मन्त्र ३-४ य १०-३३, ३ और २०-७६, ७७ में भी हैं।] मघ से जल न बरसने पर दोनों सूर्य-चन्द्र! रमणीय देश बचाओ, तुम विशेष रक्षक; शुभ-कर्म-पालक हो, कर्मों में बिजली बचाओ।४

५८ हे सूर्य-चन्द्र, तुम बुद्धिमानों की व्यवहार-क्रियाओं से रक्षा करो जैसे माता-पिता सन्तान की। हे बिजली। तूने रम्य देश का जल पिलाया अब वह तेरी सेवा करे। ५

५७५९-६० [देखो पहले ७ ९१ और ९२।] ६-७

सूक्त १२६ । इन्द्राणी (व्योम-कक्षा) इन्द्र, (उत्तरी ध्रुव); वृषाकपि(सूर्य) ऋ१०-८६-१-२३)
[यहाँ आध्यात्मिक-आधिभौतिक अर्थ और आधिदैविक (ज्यौतिषिक) अर्थ प्रस्तुत है । ]

५७६१ वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १
६२ परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये " ॥ २
६३ किमयं त्वा वृषाकपिश् चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद् वसु " ॥ ३
६४ यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभि रक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर् । " ॥ ४
६५ प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं " ॥ ५
६६ न मत् स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत् प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी " ॥ ६
६७ उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति " ॥ ७
६८ किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस् त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं " ॥ ८
६९ अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा " ॥ ९
७० संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति ।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते " ॥ १०
७१ इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम् ।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर् " ॥ ११
७२ नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते ।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति " ॥ १२
७३ वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे ।
घसत् त इन्द्र उक्षणः प्रियङ्काचित्करं हविर् " ॥ १३
७४ उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमस्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ १४

५७७५ वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।। १५

७६ न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ,, ।। १६

७७ न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो वि जृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या कपृत् ,, ।। १७

७८ अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असि सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितम् ,, ।। १८

७९ अयमेमि विचाकशद् विचिन्वन् दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनो ऽभि धीरमचाकशम् ,, ।। १९

८० धन्व च यत् कृन्तत्रञ्च कतिस्वित् ता वियोजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप ,, ।। २०

८१ पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एष स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनः ,, ।। २१

८२ यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्वस्य पुल्वघो मृगः कमगन् जनयोपनो ,, ।। २२

५७८३ पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद् यस्या उदरमामयद् विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।। २३

५७६१ [व्योमकक्षा —] जब प्रकाश छोड़ा गया तब उसने उन इन्द्र (उत्तरी ध्रुव) को अपना स्रोत नहीं माना जहाँ प्रकाशमान किरणों में स्वामी बनकर मेरा सखा वृषाकपि (सूर्य) हृष्ट हुआ । इन्द्र विश्व से उत्तर में है । १ [यह वाक्य इस सूक्त के सब २३ मन्त्रों के अन्त में टेक है । ]

६२ हे उत्तरी ध्रुव ! तू सूर्य से व्यथित हो दूर हट रहा है, अन्यत्र सोम-पानार्थ तू मुझे न पायेगा । २
[ यह ध्रुवीय प्रचलन-अक्ष-विचलन-सम्पात-चलन-अयन-चलन का ज्यौतिषीय वर्णन है । ]

६३ [ध्रुव— ] हे व्योम-कक्षा ! इस सूर्य रूपी सुनहरे मृग ने तेरा या तेरे पोषक उत्तम धन का क्या बिगाड़ा जो तू इससे ईर्ष्या अथवा घृणा करती है ? ३

६४-६५ [व्योम-कक्षा- ] हे इन्द्र ! जिस इस सूर्य की तू रक्षा (समर्थन) करता है इसके कान में भी श्वा नामक लुब्धक तारा (ग्रेट डाग स्टार सिरिअस केनिकूला, जो वर्षा में तीन जुलाई से ११ अगस्त तक सूर्य-समीप निकलता है) ने काट लिया (चमक कम कर दी,) और वराह (सूर्य) का पीछा करने वाले (राहु) तथा वृक (भेड़िया-चन्द्र) ने भी इसके कान काट लिये (सूर्य का खण्ड-ग्रास ग्रहण लगा) ।। कपि (बन्दर-सूर्य) ने मेरी प्रिय चमचमाती नक्षत्र-तारायें दूषित कर दीं अतः मैंने इसका सिर विकृत कर दिया, दुष्कर्म में मैं सुगम नहीं हुई । ४-५

५७६६ (व्योम-कत्ता-) कोई स्त्री मुझसे बढ़कर शोभा वाली, कार्य शीघ्र-अच्छा करने वाली प्रतिद्वन्द्वियों को हराने वाली, और टाँगों से उद्यम करने वाली नहीं है। ६

६७ (उत्तरी ध्रुव-) हे उत्तम लाभकारिणी माता जी ! ऐसा ही होगा। मेरा तो अगं-टाँग-सिर मानो विशेष हृष्ट से हो रहे हैं। ७

६८ हे उत्तम बाहु-अङ्गुलि-कीर्ति-जंघा वाली ! तू हमारे. सूर्य को क्यों बदनाम करती है ? ८

६९ (व्योम०-) यह शरारती मुझे अगीरा-समान मानता है, और मैं वीरिणी-इन्द्रपत्नी-मरुत्सखा हूं। ६

७० नारी सदा संग्राम-यज्ञ-उत्सवों में जाती है, सत्य-विधात्री, वीरिणी, इन्द्र-पत्नी पूजी जाती है।१०

७१ इन्द्राणी को उन नारियों में मैं उत्तम सुनता हूं, और भी, उसका पति बुढ़ापे से कभी नहीं मरता।११

७२ (ध्रुव-) हे इन्द्राणी ! मैं सखा वृषाकपि के बिना हृष्ट नहीं, जिसकी यह प्रिय अप्य हवि (आप: अन्तरिक्ष में फैलने वाला प्रकाश) देवों ग्रहों-उपग्रहों में जाती है। १२

७३ हे वृषाकपि की माता और पत्नी, उत्तम पुत्र-पुत्रवधू वाली रेवती (धनी नक्षत्र) ! तेरा ध्रुव उक्षा (गृह) की स्थायी सुख चयन करने वाली हवि (प्रकाश) खाता है। १३

७४ क्योंकि मेरे लिए ही १५ और बीस मिलकर ३५ गृह-उपग्रह पकते (पक्के-व्यक्त) होते हैं; उन्हें मैं खाता (खगोल में लेता) हूं और मोटा ही हो जाता हूं, मेरी दोनों कोखें (पूर्वी-पश्चिमी गोलार्ध भर जाती हैं। [३५ उक्षा- १५ १, गौः ऋतु ८ गृह- भूमि-चन्द्रमा-बुध-बृहस्पति-शुक्र-शनि-अरुण(अर्यमा)-वरुण। उपग्रह- भूमि का चन्द्रमा १, मङ्गल के २, बृहस्पति-शनि के ९-९, अरुण के ४, वरुण का १ कुल, या उन्हें (ऋ० १.१०५.६ में वर्णित) स्वतन्त्र ग्रह ही माना जाये, तो सब मिलाकर १० और १५ कुल ३५ उक्षा हुए।] १४

७५ तेज सींग वाले बैल के समान तीक्ष्ण किरण वाले बिजली-सूर्य लोकों के अन्दर गरजते हैं। हे इन्द्र ! यह तेरा मन्थन मेरे हृदय के लिए शान्ति-दायक हो जिसे तेरा भावुक मथता है। १५

७६ वह बिजली वर्षा की ईश नहीं जिसका मेघ संसक्त द्यौ-भूमि के बीच गरजता रहता है; किन्तु वह सूर्य कारण है द्यौ में स्थित जिसका रोम-समान किरण-समूह विशेष फैलता है। १६

७७ यह भी ठीक है कि केवल वह सूर्य ही वर्षा-कारण नहीं जिस द्यौ-स्थित का किरण-समूह फैलता है अपितु वह बिजली है जिसका मेघ द्यौ-भूमि के मध्य गरजता है। १७। [दोनों पक्ष ठीक हैं।]

७८ हे इन्द्र ! यह सूर्य दूरस्थ जल को गतिमान कर पहुँचाता, सञ्चित मेघ को बढ़ाकर भूमि पर फेंकता और नया अन्न पैदा करता है। १८

७९ यह मैं(सूर्य)चमचमाता हुआ, दास-आर्य (उत्तर-दक्षिण गोलार्ध) को विभक्त करता हुआ (विषुवद् वृत) पर आता हूं, औषधि-रस-सञ्चारक सोम पीता हूं, धीर चन्द्रमा चमकाता हूं। १९

[यह संकेत सृष्टि के पहले दिन मेष संक्रान्ति, अश्विनी नक्षत्र, रविवार, चैत्र शुक्ल १ का है।]

८० हे सूर्य ! धनुष-बाण (पुनर्वसु नक्षत्र मिथुन राशि पर तीर की नोक, और धनुष की एक नोक रेवती नक्षत्र के अन्त में, तथा दूसरी नोक ठीक उसके सामने चित्रा नक्षत्र पर) कुछ ही उतने ही योजन पर है कि जब तू अपना घर (वसन्त सम्पात) छोड़े और पास के अगले घरों में पहुँचे तभी मेरे पास (उत्तरी ध्रुव तक)पहुँच सकता है। [यही उत्तरायण का चरम बिन्दु, मिथुनान्त उत्तर ध्रुव का स्थान है।] २०

५७८१ हे सूर्य! तू फिर आ, हम दोनों स्वागत करें, जो यह तू स्वप्न नष्ट कर फिर पथ से अपने घर (मेरे पास) आयेगा। २१

५७८२ हे सूर्य और ध्रुव ! जब दोनों उत्तर के घर आएँगे तो वह पापी जन-पीडक पशु रूप कहाँ रहा, कहाँ गया ? २२

८३ पसलियों वाली मानवी एक साथ २० उत्पन्न करे तो क्या हो ? भला हो उस प्रकृति-माता का कि जिसके उदर में २० आ गये। [ वे बीस हैं — ५ महाभूत, ५ तन्मात्रा, १० इन्द्रियां। ] २३

# सूक्त १२६ की आधिभौतिक व्याख्या

इन्द्र सम्राट् सबसे बड़ा है, उसकी पत्नी प्रजा है; वृषाकपि उसका पुत्र-सखा मन्त्री-सेनापति है। वे सम्राट् के अनुकूल-विरुद्ध कार्य करते हैं, प्रजा उनकी शिकायत करती है, राजा उनके बिना नहीं रह सकता। प्रजा सर्वोत्तम है, राजा कभी नहीं मरता, उसके १५ अधिकारी राज्य पालते हैं। वह स्थित रह कर दान और सेना द्वारा शासन करता है। यह दास और आर्य की पहचान करता है। १५-२० अधिकारी परस्पर स्वागत करते हैं। यह सेना में गरजता है प्रजा के दिये गए जल महभूमि समाप्त होती है, सञ्चित धन वाला, नया अन्न उत्पन्न कराता है। राजा-अधिकारी एक-दूसरे के घर जाकर परस्पर स्वागत करते, पापी-जन-पीड़क समाप्त होते हैं, प्रजा २० की निर्वाचित सभा बनाती है।

# आध्यात्मिक अर्थ

इन्द्र परमेश्वर सबसे बढ़कर है, बन्दर-समान वृषाकपि जीवात्मा उसका सखा-पुत्र है, इन्द्राणी उसकी सत्ता है, नास्तिक उसे नहीं मानते। वह भक्त के लिए मोक्ष-धन देता है।

सुअर के पीछे चलने वाले कुत्ता-समान (पापी) जीव के (लालच) ने कान काट लिये हैं। वह उस की रक्षा करता है। उस बन्दर जीव ने प्रकृति को भी दूषित कर दिया जिसने उसका सिर बिगाड़ दिया वह उत्तम स्त्री-समान है जिसे वह शरारती तुच्छ समझता है। फिर भी उसके बिना उसका सखा परमेश्वर रह नहीं सकता। योगी की माता श्रद्धा, पत्नी विवेक-ख्याति है।

परमेश्वर के लिए श्रद्धा (चित्त) और १५(१० इन्द्रियाँ ५ तन्मात्राएँ तथा ५ स्थूल भूत मिल कर २० पकते हैं। परमात्मा-जीवात्मा यथास्थित द्यौ-पृथिवी-मध्य ईश हैं।

परमेश्वर मनुष्यों में दास-आर्य (शील-गतिशील) का विवेचन करता हुआ सहज-आनन्द धीर योगी को पहचानता है। वह योगी-भक्त को अपने घर (मोक्ष) में बुलाता है वहाँ जाने पर पीडा नहीं रहती। शक्तिशाली ईश्वर मानव के २० घटक (इन्द्रियाँ-तन्मात्रा-भूत) नाश हो जाते हैं।

**इसके बाद बीच में छपे दस कुन्ताप-सूक्त परिशिष्ट-प्रक्षिप्त हैं, अन्त में दिये जाएँगे।**

सूक्त १२७। अलक्ष्मीघ्न विश्वेदेवाः दधिक्रा सोम इन्द्र । ऋ० १०.१५५-४

**५ ८४. यद्ध प्राचीरजगन्तनोरो मण्डूरधाणिकीः। हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः॥ १**

**८५ कपृन्नरः कपृथमुद् दधातन चोदयत खुदत वाजसातये।**

**निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये॥ २**

**८६ दधिक्राव्णोअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूंषि तारिषत्॥**

**८७ सुतासो मधुमत्तमाः सोमा इन्द्राय मन्दिनः। पवित्रवन्तो अक्षरन्देवान्गच्छन्तु वो मदा॥**

८८.इन्दुरिन्द्राय पवत इति देवासो अब्रुवन्। वाचस्पतिर्मखस्यते विश्वस्येशान ओजसा ॥ ५
८९.सहस्रधारः पवते समुद्रो वाचमीङ्खयः। सोमः पती रयीणां सखेन्द्रस्य दिवेदिवे ॥ ६
९० अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत् तमिन्द्रः शच्या धमन्तमपस्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ ७
९१ द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ ॥ ८
९२ अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थे अधारयत् तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्या चरन्तीर् बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे ॥ ९
९३ त्वं ह त्यत् सप्तभ्यो जायमानोऽशत्रुभ्यो अभवः शत्रुरिन्द्र।
गूल्हे द्यावापृथिवी अन्वविन्दो विभुमद्भ्यो भुवनेभ्यो रणं धाः ॥ १०
९४ त्वं ह त्यदप्रतिमानमोजो वज्रेण वज्रिन् धृषितो जघन्थ।
त्वं शुष्णस्यावातिरो वधत्रैस् त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ॥११
९५ तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे। स वृषा वृषभो भुवत् ॥ १२
९६ इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ १३
५७९७ गिरा वज्रो न संभृतः सबलो अनपच्युतः। ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ १४

८४ जब खनिज-लोह-निधियाँ पूर्व में हों, व्यूह-धारिणी सेनाएँ आगे बढ़ें तभी इन्द्र के सब शत्रु बुलबुलों-समान मारे जाते हैं। १ ऋ १०-१५५-४ अगला १०-१०१-१२-

८५ हे सुख-पूरक नेताओ! तुम सन्नद्ध सेना के रक्षणीय सुख-पूरक सेनापति को आगे रक्खो, धन पाने, रक्षा के लिए बाधा होने पर प्रेरित-सुखी, यहाँ प्रजा-रक्षा-सोम-पान के लिए उत्साही करो।२

८६ मैं धारक-आक्रामक-विजयी-बली राष्ट्र का कार्य करूं जो हमारे मुख सुगन्धित (उज्ज्वल) करे और हमारी आयुओं को बढ़ाये।३ ऋ ४-३९-६ यजु २३-३२ साम पू ४-७-७

८७ निचोड़े-मधुरतम-हर्षकारी-पवित्र सोम (भक्ति-तत्त्व-रस) इन्द्र के लिए बहे हैं, तुम्हारे हर्ष विद्वानों को पहुँचें।४ [मन्त्र ४-६ ऋ ९.१०१.४-६ साम उ २-२-११-१, पू ६-१-३]

८८ विद्वान् बताते हैं कि सोम इन्द्र के लिए गति करता, विश्व-स्वामी वेद-पति ओज से यज्ञ करता है। ५

८९ हजार धाराओं के समुद्रवत् वाणी-प्रवर्तक, इन्द्र-सखा, धन-पति सोम दिन-दिन शुद्ध करता है। ६

९० अभिमानी-काला शत्रु आता हुआ दसों हजार सेना-सहित सीमा-वर्ती नदी पर रुकता, उस हाँपते हुए को नेता-मन सेना-पति बुद्धि से बचाता, अपनी मारू सेनाएँ हटा लेता है। ७

[मन्त्र ७-११ ऋ० ८.९६.१३-१७, मन्त्र ७ साम पू ४-४-१ ]

९१ अभिमानी-काले कौए और मेघ-समान शत्रु को सीमा वाली नदी के तट पर निकृष्ट आचरण में छिपकर विचरता देखकर हे शक्ति-वर्धक वीरो! मैं चाहता हूं कि युद्ध में लड़ो। ८

५७९२ फिर भड़कीला दर्प वाला शत्रु सीमावर्ती नदी के पास में यदि सेना का शरीर बढ़ाये तो सेनापति-सहित सम्राट् सब ओर घूमती कुव्यवहार वाली शत्रु-प्रजा को जीत ले। ९

५७६३ हे परमेश्वर ! जब तू वेद के ७ छन्दों से प्रत्यक्ष होता है तो काम आदि-परस्पर मित्रों का नाशक हो जाता है। तू गूढ़ द्यौ-पृथिवी को प्रकट करता आकाश-व्यापी भुवनों में रम्यता देता है। १०

९४ हे न्याय-वज्री परमेश्वर ! तू वह धर्षयिता अनुपम ओज है जिस वज्र से तमो-गुण को नष्ट करता है ; सुखाने वाले तमोगुण को अपने योग-शस्त्रों से हटाता और स्व-कर्म से स्तुति पाता है। ११

९५-९७ [देखो पहले २०-४७-१-३]

सूक्त १२८। इन्द्र। ऋ ८-६-१-३ साम ५-२-१०-१ यजु ७-४०

९८ महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥ १

५७९९ प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २

५८०० कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३

९८ महान् राजा जो ओज से वर्षा वाले मेघ-समान है, वह आचार्य के व्याख्यानों से बढ़ता है। १

९९ सत्य-पालक विप्र नेता जब प्रजा को पालते हैं तो वे सत्य को दिलाने वाले होते हैं। २

५८०० मेधावी स्तोमों से राजा को यज्ञ का साधन करते हैं, शस्त्र को उत्तम पोषक बताते हैं। ३

सूक्त १२९। अश्वी। ४ सूक्त १२९-१३२ ऋ. ८.९. -२१

५८०१ आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥ १

२ यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥ २

३ ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३

४ अयं वां घर्मो ऽश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४

५ यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् । तेन माविष्टमश्विना ॥ ५

१ हे प्रजा-सेनापतियो! तुम प्रजा-रक्षार्थ अवश्य आओ; हमें भेड़ियों-रहित बड़ा घर दो, शत्रु दूर करो १

२ ,, जो अन्तरिक्ष-द्यौ-पञ्च जनों में धन है उसे राष्ट्र में रक्खो। २

३ ,, जो विप्र तुम्हें कर्तव्य-परामर्श दें ठीक उसे मेधावी-शासित प्रजा को बताओ। ३

४ ,, अन्न पति ! तुम्हारा राष्ट्र स्तोम से सिंचित है, यह मधुर दूध है; जिस ने दुर्भिक्ष हटाओ। ४

५ ,, विविध-कर्म वाले ! जो कार्य जल-वनस्पति-औषधियों में करते हो, उसे मुझे बताओ। ५

सूक्त १४०। अश्विनौ

६ यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥१

७ आ नूनमश्विनोर्ऋषि स्तोमञ्चिकेत वामया। आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥२

८ आ नूनं रघुवर्तनि रथं तिष्ठाथो अश्विना। आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत॥३

९ यदद्य वां नासत्योक्थैरा चुच्युवीमहि। यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ४

१० यद्वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥ ५

५८०६ हे सच्चे देव प्रजा-सेनापतियो ! तुम शीघ्रकारी चिकित्सा करते हो, यह तुम्हारा प्रजा-वर्ग बुद्धियों से तुम दोनों का कार्य नहीं जान पाता, तुम कर-दाता की ओर जाया करो । १

७ पत्नी-सहित राष्ट्र-पति दोनों के कार्य निश्चय जानता है; और स्थिर देश में मधुरतम यज्ञ को सींचता है । २

८ हे अश्विओ ! तुम निश्चय ही सुगम रथ पर बैठते हो, मेरे ये स्तोम दोनों के लिए मेघ-वत बहें । ३

९ हे सत्य अधिपतियो ! जो हम सदा मन्त्रों से या वाणियों से कर्तव्य बताते हैं वे प्रजा को बताओ । ४

१० हे प्रजा-सेना-पतियो ! तुम्हें मन्त्री-ऋषि कक्षीवान् (विविध-शिल्प-विद्या-ज्ञाता); व्यश्व (विशेष अश्व-ज्ञाता); दीर्घतमा (दीर्घाकाङ्क्षी); पृथी (विशाल-बुद्धि) और वैन्य (शोभा-अध्यक्ष) ये पाँचों मन्त्री अपने विभागों में जो-जो बतायें वह-वह चित्त में धारण करो । ५

## सूक्त १३१ । अश्विनौ

८११यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम्॥१

१२ यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।

यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥ २

१३ यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये । यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥ ३

१४आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता।इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ॥४

१५यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम्।तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम्॥५

११ हे गृह-पर-राष्ट्र-रक्षको ! हमारी ओर आया करो, जगत और हमारे शरीरों के रक्षक होओ, हमारे पुत्र-पौत्रों की वर्ति (जीविका) के प्रबन्धार्थ आया करो । १

१२ हे प्रजा-सेना-पतियो ! तुम दोनों सम्राट् के साथ रथ पर जाते हो, वायु-सेनाध्यक्ष के साथ अन्तरिक्ष-चर में रहते, आदित्य विद्वानों-शिल्पियों-साथ प्रीति करते, यज्ञ-विधानों में बैठते हो । २

१३ हे प्रजा-सेना-पतियो! मैं तुम्हें सह-भोजार्थ बुलाऊँ; युद्धों में तुम्हारा नाशक-रक्षक-बल श्रेष्ठ है। ४

१४ ,, तुम निश्चय आओ, ये खाद्य सुरक्षित हैं, क्षत्रिय-वैश्य-ब्राह्मणों में ये सोम तुम्हारे हैं ।५

१५ ,, दूर-पास की औषधें मद-निवारणार्थ और घर पुत्रसमान प्रजा के लिए दिया करो ।६

## सूक्त १३२ । अश्विनौ

५८१६.अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः । व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१

१७ प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि । प्र यज्ञहोतरानुषक् प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥ २

१८ यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे । आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् । ३

१९.यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः । यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ।४

२०. प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥ ५

२१ यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः । यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥ ६

१६ मैंने दिव्य वाणी से दोनो सेनापतियों को कर्तव्य, सम्मति, मनुष्यों से प्राप्त कर बता दिये । १

१७ हे देवी उषा, प्रिय-सत्य-महा-वेदवाणी और यज्ञ-होता ! तुम दोनों सेना-पतियों को सदा बोध कराओ और हर्ष के लिए वेद का महा-श्रावण कराओ । २

१८ हे उषा ! तू [illegible] सूर्य [illegible] है, [illegible] अश्विनों का रथ प्राप्त, [illegible] व्यवहार [illegible] । ३

५८१९-२१ हे अश्विओ दोनों सेनापतियो ! जब प्रजा गौ के थनों से दूध दुह ले; तत्समान प्रजा उषा-किरणें पी लें, या स्तोता वेद-वाणियां बोलें, तब ज्ञानी तुम यश-अन्न, शत्रु-विनाश के लिए सुख-दत्तार्थं निश्चय बुद्धि-कर्मों और सुखों से पिता परमात्मा की गोद में बैठते हो । ४-६

सूक्त १२३ । अश्विनौ और क्षेत्र-पति

२२ तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति बन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥ १

२३ युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत् ककुहासो रथे वाम् ॥ २

२४ को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वार्कैः ।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥ ३

२५ हिरण्ययेन परिभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय ॥ ४

२६ आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नियमन् देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥ ५

२२ हे प्रजा-सेना-पतियो ! हम तुम्हारे उस महावेगी, किरण-सङ्गवि वाले रथ को सदा बुलायें जो पत्नी को साथ ले जाता, रथ-शिल्पी का प्यारा, सुख-संपन्न, धन-युक्त, निर्देशानुसार चलता है । १

२३ हे पतन-रोकने वाले अश्विओ ! तुम देव-विस्तारित-यज्ञ-राष्ट्र में कर्मों से दिव्य शोभा पाते हो । तुम्हारा शरीर मान-पदक धारण करता है; तुम्हें सञ्चालक रथ में ले जाते हैं । २

२४ हे अश्विओ ! तुम्हें सदा कौन धन की आहुति देता है ? रक्षा वा अम्न-रस-पान के लिए कौन अन्नों से सत्कार करता है ? वा उत्तम सत्य पाने के लिए कौन अन्न-दान करता रहता है । ३

२५ हे असत्य-रहित ! तुम सर्वत्र गमनशील सुनहरी रथ से इस यज्ञ में उपस्थित हुआ करो, सोम पियो, सेवक-जन के लिए रत्न दिया करो । ४

२६ सुनहरी सुचालित रथ से तुम द्यौ-पृथिवी से अच्छी तरह आओ । कामना वाले अन्य जन न रोकें क्यों कि पहले का स्नेह-बन्धन रोक सकता है । ५

२७ नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरा यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥ ६

हे कष्ट-निवारक अश्विओ ! हमारे दोनों विभागों में हमें बहुत वीरता-युक्त धन दो । क्योंकि अजन्मा के उपासक नर मिलते रहते और स्तुति-सहित भेंट देते रहते हैं । ६

५८२८ इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥ ७

५८२८ हे न-असत्य अश्विओ ! यहीं जो दोनों की मन-सहित अन्न-बल-रत्न वाली सुमति है वह हमें दो; प्रशंसक की रक्षा करो । हमारी कामना तुम पर ही आश्रित है । ७

५८२९ मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनञ्चरेम ॥ ८

२९ औषधियाँ-द्यौ (किरणें और तारे)-जल-अन्तरिक्ष हमारे लिए मधुर हों। क्षेत्र का रक्षक स्वामी किसान हमारे लिए मधुर हो। हम हिंसित न होते हुए इन के अनुकूल होकर चलें। ८

५८३० पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वां इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ९

१८३० हे अश्विनौ (नगर और सेना के अधिपतियो! तुम दोनों का किया वह कर्म प्रशंसनीय है जो-अन्तरिक्ष से सुख का वर्षक है। और हे प्रशंसनीयो! गौ(पृथिवी)के शासन रूपी इष्टि-यज्ञ में उन सभी के भक्ति-रस पीने-पिलाने के लिए समीप ही आया करो। ९

अथर्व वेद के इस अन्तिम मन्त्र में अश्विओं से निवेदन किया गया है जिनके महर्षि यास्काचार्य ने निरुक्त में निम्नाङ्कित अर्थ किये हैं—

सूर्य-चन्द्र, दिन-रात, अग्नि-जल, पुण्य करने वाले दो राजा (नगर-शासक और सेनापति)। महर्षि के अनुसार अन्य भी अर्थ हैं जो दो जोड़े रूप में व्यापक-व्याप्त शक्तियाँ हों—

माता-पिता, परमात्मा, सभापति-सेनापति, चिकित्सक-शल्यक, धन-ऋण (पाजिटिव-निगेटिव)

यह आचार्य वीरेन्द्र सरस्वती कृत अथर्ववेद-भाष्य पूर्ण हुआ।

# परिशिष्ट प्रक्षिप्त कुन्ताप सूक्त

सूक्त १ (पुराना १२७) १४ मन्त्र, नाराशंसी १-३, रैभी ४-६, पारिक्षिति ७-१०, कौरव्या ११-१४

१ इदञ्जना उपश्रुत नराशंस स्तविष्यते। षष्टिंसहस्रा नवतिंच कौरम आ रुशमेषु दद्महे॥

२ उष्ट्रायस्य प्रवाहणो वधूमन्तो द्विर्दश। वर्ष्मा रथस्य निजिहीडते दिव ईषमाणा उपस्पृशः॥

३ एष इषाय मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः। त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम्॥

४ वच्यस्व रेभ वच्यस्व वृक्षे न पक्वे शकुनः। नष्टे जिह्वा चर्चरीति क्षुरो न भुरिजोरिव॥

५ प्र रेभासो मनीषा वृषा गाव इवेरते। अमोतपुत्रका एषाममोत गा इवासते॥

६ प्र रेभ धीं भरस्व गोविदं वसुविदम्। देवत्रेमां वाचं श्रीणीहीषुर्नावीरस्तारम्॥

७ राज्ञो विश्वजनीनस्य यो देवोऽमर्त्यां अति। वैश्वानरस्य सुष्टुतिमा सुनोता परिक्षितः॥

८ परिच्छिन्नः क्षेममकरोत् तम आसनमाचरन्। कुलायन्कृण्वन्कौरव्यः पतिर्वदति जायया॥

९ कतरत्त आहराणि दधि मन्थां परि श्रुतम्। जायाः पतिं विपृच्छति राष्ट्रे राज्ञः परिक्षितः॥

१० अभी वस्वः प्रजिहीते यवः पक्वः पथो बिलम्। जनः स भद्रमेधति ॥

११ इन्द्रः कारमबूबुधदुत्तिष्ठ विचरा जनम्। ममेदुग्रस्य चर्कृधि सर्व इत्ते पृणादरिः॥

१२ इह गावः प्रजायध्वमिहाश्वा इह पूरुषाः। इहो सहस्रदक्षिणो अपि पूषा निषीदति॥

१३ नेमा इन्द्र गावो रिषन् मो आसां गोप रीरिषत्। मासाममित्रयुर्जन इन्द्र मा स्तेन ईशत॥

१४ उप नो न रमसि सूक्तेन वचसा वयम् भद्रेण वचसा वयम्।
वनादधिध्वनो गिरो न रिष्येम कदा चन॥

## प्रक्षिप्त कुन्ताप सूक्त १ (१२७)

१ जनो, यह सुनो; नराशंस की स्तुति की जायेगी; भूमि-रमे योगियों में ६० हजार और ९० गुण देते हैं ।
२ जिस राजा के उटनियां-सहित २० उष्ट्र रथ का ढाँचा गतिशील किरण-वत् सक्रिय रखते हैं ।
३ इन्हें प्रकृष्ट-ब्रह्म के लिए सौ अशर्फी; दस माला, तीन सौ घोड़े, दस हजार गौएँ भेंट देते हैं
४ हे भक्त, [illegible] स्तुति गा-गा, नाश आने पर जीभ घोड़े-पैर-समान लड़खड़ाती है
५ [illegible] पुत्र भी गो-समान बोली रहते हैं
६ हे भक्त, तू [illegible] बुद्धि [illegible] यह वाणी बाण-समान तारक को फेंका कर
७ [illegible]
८ [illegible] कल्याण करता है, भूमि-चर [illegible] प्रति पत्नी से कहता है
९ [illegible] मेरे लिए दही-मट्ठा-रस क्या लाऊँ"?
१० '[illegible]' । वह जन [illegible] को बढ़ाता है ।
११ [illegible] तुझे [illegible] का कार्यकर, सब अरि तुझे पालें ।
१२ [illegible] यहाँ हजारों की दक्षिणा-दाता पोषक वैश्य भी रहे ।
१३ हे इन्द्र, ये गाएँ, इनका ग्वाला दुःखी न हो ; इनका अमित्र जन, चोर शासक न बने ।
१४ हमें [illegible] ; [illegible] हमें मिलें, जिससे हम कभी दुःखी न हों ।

सूक्त २ (१२८) [illegible] १२-१६

१५ यः सभेयो विदथ्यः सुत्वा यज्वाथ पूरुषः। सूर्यं चामू रिशादसस्तद्देवाः प्रागकल्पयन् ॥ १
१६ यो जाम्या अप्रथयस्तद् यत्सखायं दुधूर्षति । ज्येष्ठो यदप्रचेतास्तदाहुरधरागिति ॥ २
१७ यद्भद्रस्य पुरुषस्य पुत्रो भवति दाधृषिः । तद्विप्रो अब्रवीदु तद् गन्धर्वः काम्यं वचः ॥ ३
१८ यश्च पणि रघुजिष्ठ्यो यश्च देवाँ अदाशुरिः। धीराणां शश्वतामहं तदपागिति शुश्रुम ॥ ४
१९ ये च देवा अयजन्ताथो ये च पराददिः । सूर्यो दिवमिव गत्वाय मघवा नो विरप्शते ५
२० योऽनाक्ताक्षो अनभ्यक्तो अमणिवो अहिरण्यवः। अब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता। ६
२१ य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः । सुब्रह्मा ब्रह्मणस्पुत्रस „ ७
२२ अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः । अयभ्या कन्या कल्याणी „ ॥ ८
२३ सुप्रपाणाच वेशन्ता रेवान्त्सुप्रतिदिश्ययः । सुयभ्या कन्या कल्याणी „ ॥ ९
२४ परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या चा युधिङ्गमः । अनाशुरश्चायामी „ ॥ १०
२५ वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिङ्गमः । श्वाशुरश्चायामी „ ॥ ११
२६ यदिन्द्रादो दाशराज्य मानुषं विगाहथाः। विरूपः सर्वस्मा आसीत्सह यक्षाय कल्पते ॥ १
२७ त्वं वृषाक्षुं मघवन्नम्रं मर्याकरो रविः । त्वं रौहिणं व्यास्यो वि वृत्रस्याभिनच्छिरः ॥ १३
२८ यः पर्वतान्व्यदधाद्यो अपो व्यगाहथाः। इन्द्रो यो वृत्रहान्महं तस्मादिन्द्र नमोऽस्तु ते ॥ १४
२९ पृष्ठं धावन्तं हर्योरौच्चैःश्रवसमब्रुवन् । स्वस्त्यश्व जैत्रायेन्द्रमा वह सुस्रजम् ॥ १५
५८५६ ये त्वा श्वेता अजैश्रवसो हार्यो युंजन्ति दक्षिणम् ।
पूर्वा नमस्य देवानां बिभ्रदिन्द्र महीयते ॥ १६

# वैदिक दैनन्दिनी ज्येष्ठ २०५०. विक्रम

| तिथि | नक्षत्र | वार | तारीख | शौच | व्यायाम | आसन | प्राणायाम | सन्ध्या | हवन | स्वाध्याय | सत्सङ्ग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ज्येष्ठ कृष्ण १ | अनुराधा | शुक्र | मई ७ | | | | | | | | |
| ३ | ज्येष्ठा | शनि | ८ | | | | | | | | |
| ४ | मूल | रवि | ९ | | | | | | | | |
| ५ | पूर्वाषाडा | सोम | १० | | | | | | | | |
| | उत्तराषाढा | मङ्गल | ११ | | | | | | | | |
| ७ | श्रवण | बुध | १२ | | | | | | | | |
| ८ | ,, | गुरु | १३ | | | | | | | | |
| ८ | धनिष्ठा | शुक्र | १४ | | | | | | | | |
| ९ | शतभिषज | शनि | १५ | | | | | | | | |
| १० | पूर्वा भाद्रपदा | रवि | | | | | | | | | |
| ११ | उत्तरा ,, | सोम | | | | | | | | | |
| १२ | रेवती | मङ्गल | | | | | | | | | |
| १३ | अश्विनी | बुध | १९ | | | | | | | | |
| १४ | भरणी | गुरु | २० | | | | | | | | |
| ३० अमा | कृत्तिका | शुक्र | २१ | | | | | | | | |
| शुक्ल १ | रोहिणी | शनि | २२ | | | | | | | | |
| २ | मृगशिरा | रवि | | | | | | | | | |
| ३ | आर्द्रा | सोम | २४ | | | | | | | | |
| ४ | पुनर्वसु | मङ्गल | २५ | | | | | | | | |
| ५ | पुष्य | बुध | २६ | | | | | | | | |
| ६ | आश्लेषा | गुरु | २७ | | | | | | | | |
| ७ | मघा | शुक्र | २८ | | | | | | | | |
| ८ | पूर्वा फल्गुनी | शनि | २९ | | | | | | | | |
| ९ | उत्तरा फल्गुनी | रवि | ३० | | | | | | | | |
| १० | हस्त | सोम | ३१ | | | | | | | | |
| १२ | चित्रा | मङ्गल | जून १ | | | | | | | | |
| १३ | स्वाति | बुध | | | | | | | | | |
| १४ | विशाखा | गुरु | ३ | | | | | | | | |
| १५ पू० | अनुराधा | शुक्र | ४ | | | | | | | | |

आवश्यक सूचना

ग्राहक सदस्य कृपया अपने पते में स्थान के साथ सूची-संख्या 'पिन' अवश्य लिखें, हमें सूचना दें। सम्भव है वह शुद्ध न लिखे जाने से पोस्ट आफिस पत्रिका यथास्थान न पहुँचा पाये -सम्पादक

श्रीमन्! नमस्ते, आप का वर्ष २-५-९३ को पूर्ण हो चुका, कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजिये।

## समाचार

विश्व वेदपरिषद्, सी ८१७ महानगर लखनऊ पिन २२६००६ (रजिस्टर्ड) की प्रबन्धसमिति का छमाही अधिवेशन १६ मई १९९३, ज्येष्ठ कृष्ण १०, सं २०५० वि० को सायं ३ बजे सी ८१७, महानगर लखनऊ में होगा। कृपया सभी सदस्य अवश्य सम्मिलित हों। आने की सूचना दें।

अल्मोड़ा में आर्य-लेखक-परिषद् का अधिवेशन २६-२७ जून, १९९३ को होगा।

वैशाखी मेष संक्रान्ति सृष्टि-संवत् पर्व १४-४-९[illegible] को मनाया गया। गुरुकुल कांगड़ी का उत्सव हुआ।

वाशिंगटन में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दू-सम्मेलन ८ अगस्त १९९३ को होगा।

वैदिक साधनाश्रम तपोवन देहरादून का [illegible] २-५-९३ तक हुआ।

[illegible] पत्राचार-प्रतियोगिता में २०) शुल्क, आयु १८-४० वर्ष अंदर [illegible] प्रथम १२०००) द्वितीय ५०००) तृतीय २०००) है।

आर्य समाज-स्थापना-दिवस चैत्र शुक्ल ५, १९३२ वि०, १०-४-१८७५ ई० को हुआ था। इस वर्ष रवि २८-३-९३ को हुआ, चैत्र शुक्ल १ मानना भूल है।

महर्षि निर्दिष्ट सृष्टि-संवत् ही शुद्ध है। उसमें त्रुटि बताना पाप है; चाहे वे श्री वैद्यनाथ शास्त्री [illegible] नहीं।

[illegible] २६-४-९३ [illegible] हुआ।

१८-४-९३ को महात्मा हंसराज दिवस मनाया गया।

**ऋषि की सृष्टिसंवत् में त्रुटि माननेवाले शास्त्रार्थ करें।**

प्रेषक- डा० प्रशान्तकुमार, आदर्श प्रेस, लखनऊ-६ सेवा में संख्या श्री पुस्तकालयाध्यक्ष
सी ८१७ महानगर लखनऊ ६ दूरभाष ७१५०१ स्थान गुरुकुल कांगड़ी डाकघर पिन जिला

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद खण्ड १

वर्ष १७ अंक ७

# वेद-ज्योति

आषाढ़ २०५० जूलाई १९९३

अथर्व वेद सामवेद

विश्व वेदपरिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १ ६६ ०८ ५३ ०६४, दयानन्दाब्द १६६
शुल्क वार्षिक ४०), आजीवन ४००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर, एक अंक का ४)

सम्पादक- वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम. ए. काव्यतीर्थ, अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्
सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ० प्र० २२६००६; दूरभाष ७३५०१। सहायक-विमला शास्त्री
सहायक सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक श्री ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व वेदपरिषद्, लखनऊ ६

विषय-सूची—



## प्रतिदिन पठनीय वैदिक संकल्प

**ओ३म् तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलि प्रथम चरणे अमुक...संवत्सर...अयन...ऋतु...मास...पक्ष...दिन...नक्षत्र —लग्न -मुहूर्त अद्य अत्र जम्बूद्वीपे भारत खण्डे आर्यावर्ते —नगरे इदङ्कृतम् क्रियते च।**

**[—रिक्त स्थानों को पूरा करके पढ़िए। ]**

# वैदिक दैनन्दिनी श्रावण २०५०विक्रम

तिथि कृ १ १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ ११ १२ १३ १४ ३० शु १ २ ३ ४ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ पू.
न पूषा उषा श्र ध श पूभा उभा रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु आ म पूफा उफा ह स्वा विश्र ज्ये मू पूषा उषा श्र
वार र सोम बु गु शु श ... गु शु श र सोम बु गु शु श र सो म बु गु शु श र सो
जु ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २. २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ अ १ २

## ऋ० भाष्य भू० मन्त्र–व्याख्या

क्रमांक १। ऋषि नारायण, देवता सविता, छन्द गायत्री, स्वर, षड्ज विनियोग प्रार्थना।

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर् दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव॥**

यजुर्वेद अध्याय ३० मन्त्र ३; ऋ० ५-८२-५।

हे जगत् और विद्या के प्रकाशक, आनन्द-दाता, जगदुत्पादक! हमारे सब दुःख-दुर्गुण दूर कर। जो कल्याण (अभ्युदय-मोक्ष) है वह हमें तू राजा-समान सब ओर से दे। लुप्तोपमा अलंकार।

## पतञ्जलि का योग दर्शन शास्त्र (गतांक से आगे)

### अङ्ग ७ ध्यान

### १०८ तत्र प्रत्यय-एकतानता ध्यानम्। २

धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करने और आश्रय लेने के योग्य जो अन्तर्यामी परमेश्वर है इसके प्रकाश और आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम-भक्ति के साथ इस तरह प्रवेश करना कि जैसे समुद्र के बीच में नदी। तब ईश्वर को छोड़ कर किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना किन्तु उसी अन्तर्यामी के स्वरूप के ज्ञान में मग्न हो जाना इसीका नाम ध्यान है। ये ७ अङ्ग समाधि हैं।

ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका

प्रश्न — मूर्त पदार्थों के विना ध्यान करते कैसे बनेगा?

उत्तर— शब्द का आकार नहीं, तो भी ध्यान में आता है वा नहीं? आकाश का आकार नहीं तो भी आकाश का ज्ञान करने में आता है वा नहीं जीव का आकार नहीं, तो भी जीव का ध्यान होता है वा नहीं? ज्ञान-सुख-दुःख-इच्छा-द्वेष-प्रयत्न के नष्ट होते ही जीव निकल जाता है यह किसान भी समझता है। .. साकार का ध्यान कैसे करोगे? साकार के गुणों का ज्ञानाकार होने तक ध्यान नहीं बनता अर्थात् सम्भव नहीं होता कि ज्ञान के पहले ध्यान हो जाये। देखो एक सूक्ष्म परमाणु के भी अधम-मध्यम-उत्तम ऐसे अनेक विभाग ज्ञान-बल से कल्पना में आते हैं। अब कोई ऐसा कहे कि मुट्ठी में क्या पदार्थ है? तो विदित होने तक मुट्ठी की ओर देखने ही से केवल उस पदार्थ का ध्यान कैसे करें? तो इससे मेरा यही कहना है कि प्रत्यक्ष के सिवाय उस पदार्थ को जानने के लिए और भी दृढ़तर सबल उपाय हैं। (उपदेश० उपदेश ४।

# शतपथ ब्राह्मण

## अध्याय एक, ब्राह्मण एक

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमाँ पुष्टिमाँ असि ।
शिवा कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥
भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।
मा यज्ञं हिंसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ [य १२.५६-६०]

ये ४ मन्त्र अहिंसा के लिए पढ़ता है कि दोनों अग्नियाँ परस्पर हिंसा न करें । ३८
४ ही निवाप करता है । अन्न ही पशु हैं, उन्हीं से यह संज्वा करता है । ३९
उसको खाली न देखे, यदि देखेगा तो वह गम लेगी । ४०
अब इस में रेता डालता है जो वैश्वानर आग का वीर्य है उसको ही इसमें सींचता है। ४१
अब इस उखा को न जलने के कारण छोड़ता है । जब तक यह प्रयोग में थी इस ने आग रूपी वीर्य रक्खा था, उसको गार्हपत्य में स्त्री-समान उत्पन्न कर दिया अब नया धारण करती है । ४२

मातेव पुत्रम् पृथिवी वरेण्यम् अग्निं स्वे योनावभारुखा ।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः सं विदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ य१२.६१

उखा ने अपनी योनि में आग रक्खी जैसे माता पुत्र को गोद में रखती है। ऋतुओं के साथ मिलकर विश्वकर्मा प्रजापति उसको मुक्त करे । ४३
अब इसमें दूध-वीर्य डालता है। उखा स्त्री है अतः जब वीर्य रक्खेगी तो दूध भी रक्खेगी। नीचे रेता उपरि दूध; नीचे वीर्य उपरि दूध । इसे मध्य में डालता है ताकि पुरुष-मिथुन रख सके । ४४

## ब्राह्मण २

प्रजापति ने प्रजा रची । रचकर थका । मध्य से प्राण और वीर्य निकला । उससे अन्न हुआ जिस से आँख काम करती और प्राणी जीवित रहते हैं । १
वे देव बोले — इस के अतिरिक्त प्रतिष्ठा नहीं अतः इसी पिता प्रजापति से संस्कार करायें, वही हमारी प्रतिष्ठा होगी । २
वे अग्नि से बोले — यह प्रजापति अन्न है, हम तेरे मुख से यह अन्न खाते हैं, हमारा यह तेरे मुख से मिले । अतः देव अग्नि-मुख से खाते हैं । सभी देवों की आहुति आग में ही दी जाती है । ३-४
जो प्राण था वह वायु; वीर्य आदित्य, जो अन्न था वही यह वार्षिक अन्न हुआ । ५
उसे देवों ने आग में छोड़ दिया । उसी से प्राण-वीर्य-अन्न का संस्कार कर उपरि भेज दिया इसी से ये लोक हुए । ६
उन्हीं में यही भूलोक है । इससे आग प्राण, अन्तरिक्ष आत्मा, वायु ही आत्मा में प्राण, द्यौ ही इसका सिर, सूर्य-चन्द्र दो नेत्र हैं । जो सूर्य पर आश्रित हुआ उस चन्द्र से अन्न हुआ । ७
यही भू वह प्रतिष्ठा है जिसका देवों ने संस्कार किया वही यह आज भी प्रतिष्ठा है । ८
प्रजापति ने जो विस्रंसन किया वही यह अग्नि है जिसका चयन किया जाता है । उखा का खाली पड़ा रहना वही दशा बताता है जो प्राण-वीर्य-अन्न के निकलने पर प्रजापति की थी । ९

उस उखा को आग में रखता है। इसमें जो आग आती है वह वही पहले निकला प्राण है। रुक्म रखता है जो पहले का वीर्य और समिधाएँ रखता है जो पहले का अन्न है। १० [अर्ध प्रपा. ५४]

उन्हें सायं-प्रातः रखता है, दिन और रात में अन्न निकला था वे ये पूरे वर्षभर होते रहते हैं। संवत्सर प्रजापति है जिससे ये निकले उसी में सब होते रहते हैं। वामकक्षायण का कहना है कि केवल ऋतु में ही नहीं, वर्षभर सब करे. ऐसा न हो कि पिता प्रजापति को विच्छिन्न देखूँ। ११

उसका गार्हपत्य ही यह लोक है। आह्वनीय-गार्हपत्य के मध्य अन्तरिक्ष है, आग्नीध्रीय में आग वायु है। आहवनीय ही द्यौ है, उसकी आग सूर्य-चन्द्र हैं; वह इसकी यह आत्मा ही है। १२

उसका सिर ही आहवनीय, वहाँ की आग शीर्ष-प्राण पक्ष-पुच्छ वाला, चक्ष सिर; दो कान दो चक्षु, मध्य प्राण आत्मा गार्हपुच्छ प्रतिष्ठा है क्योंकि वे प्राणों से अन्न खाकर रहते हैं। १३

जो यह अन्तरात्मा में प्राण है वह इसकी प्रतिष्ठा ही निचला प्रा है। १४

कोई ९ निचले प्राण बताकर ३ चयन करते हैं, किन्तु ऐसा न करे। वे २१ की, अनुष्टुप्-बृहती की सम्पत्ति को खण्डित करते हैं। ए ही के ये भेद हैं जिनसे मल-मूत्र होता है। १५

अब सम्पत्ति ही देखो। २१ इष्टका, ६ यजुः, सादन-सूददोहा मिलकर यह ३२ की अनुष्टुप् है। १६

२१ ही परिधियाँ हैं। व्युदूहन-क्षार-रेता-मिट्टी के यजु, ४ से संनिवाह, ५ वें स विमोचन, तब तीन मिलकर ३२ की अनुष्टुप् हुई। १७

अब ये दो यजुः, ये दैव-मानुष, उच्च-धीमी वाणी के दो रूप हैं। १८

वे ये ३ हुए इन्हीं में सब लोक हैं; एक आहवनीय-द्यौ-सिर, दूसरा यह गार्हपत्य-पृथिवी। १९

अब जो ये दो यजु हैं वे दोनों के मध्य का छोटा अन्तरिक्ष है, २०

वह इस ३ प्रकार विहित वाणी अनुष्टुप् में यह आग प्राण होकर संचरित होती है, आहवनीय में आग-प्राण यह आदित्य, आग्नीध्रीय-आग में व्यान रूप वायु है जो यह चलती है। जो गार्हपत्य में आग है वह उदान है जो इस लोक में है ऐसा जानकर ही सब वाणी-सब प्राण-सब आत्मा का संस्कार करता है। २१

कहते हैं कि गार्हपत्य के पश्चात् ही आहवनीय तथा धिष्ण्य क्यों चुनता है? इसका उत्तर है-पहले ये दोनों एक थे; अलग होने पर बीच में आकाश, पहले का 'ईक्ष' अन्तरिक्ष कहलाया क्योंकि अन्तरा भी हो गया। पृथिवी-द्यौ पहले बने। वापस लौटकर धिष्ण्य [कुण्ड] बनाये कि यज्ञ करने में व्यवधान न हो अन्त के दोनों के बनने के पश्चात् ही मध्य का निर्माण होता है। २३

# हा ! श्री मदन मोहन शास्त्री !

जन्म १५-६-१९२४ । जन्म-स्थान गुलवर्गा । देहान्त ५-३-१९९३; इचलकरंजी । आयु ७० वर्ष ।

अनुकरणीय था उज्ज्वल चरित्र सुन्दर सुमधुर कथा-वाचक ।
जन-जन के प्रिय निरभिमानी थे थे वेद-मार्ग के सम्पादक ।।
वेदादि शास्त्रों के ज्ञाता थे वह हमें बिलखता छोड़ गये ।
वह क्रूर काल के ग्रास बने एक पल में नाता तोड़ गये ।।
इस गाड़ी का न टायम-टेबिल न मास-दिवस कोई डेट नहीं ।
रहे ना टी० टी० दे ना सीटी होती देखी कभी लेट नहीं ।।
दो दिन का रैन-बसेरा जग है, उठकर यात्री चले गये ।
प्रेरणा-दायक स्मृतियों को छोड़ मदन-मोहन शास्त्री चले गये ।।

—स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती, दिल्ली ।

सौम्य सुसज्जन सरस स्नेही औ सुशील साधु से स्वभाव से सभी के मन भा गए ।
वेद के सुपण्डित व्याख्याता मधुर-भाषी थे यज्ञ-कर्मकाण्ड की प्रवीणता को पा गए ।
महर्षि दयानन्द-न्यास-मन्त्री-पद पाय पाकर परम पद आप कैसे छा गए ।।
शास्त्री मदनमोहन मद नहीं मोह नहीं पीयूष को छोड़ प्रभु-गोद में समा गए ।।

—श्री पन्नालाल 'पीयूष' अजमेर

आर्यजगत् में सिद्धिप्राप्त थे एक बड़े विद्वान, कर्मकांड में अति प्रवीण थे बड़ा विशद था ज्ञान
वेदआदि शास्त्रों के ज्ञाता कर्मठ भी निष्णात, अर्थज्ञान या चार वेद का थे अति रत विद्वान।
लेखक थे, उपदेशक भी थे वेदकथा का गान, यत्र तत्र करते प्रचार भी शास्त्री गुणी महान् ।।
अनुकरणीय व्यक्तित्व-धनी वे करते रहे प्रचार. अपना कार्य स्वयं थे करते कर्मठता-संचार।।
दयानन्द-निर्वाण-न्यास के मंत्री-पद का भार किया निर्वहन कर्तव्यों का कार्य रखा संसार।
सस्वर पाठी चतुर्वेद के हृदय-ग्राह्य संचार, वेद-प्रचारी रहे सदा हो कितने थे उपकार ।।
कई कराए यज्ञ उन्होंने क्या संख्या बतलाय, आर्यजगत् में छाप छोड़ दी वेदमार्ग दिखला
८४ से अब तक सेवा न्यास हुआ सम्पन्न, ९३ में देह त्याग दी हम हो उठे विपन्न ।।
दुखद निधन है शून्य दे गया सौंपा हमको भार. सत्य सिद्ध होगी श्रद्धांजलि करके वेदप्रचार

—ऐच, १, रविशंकर शुक्ल मार्केट, शिवाजीनगर भोपाल ।

## शास्त्री जी का प्रिय गीत

शान्ति कीजिए प्रभु त्रिभुवन में ।। शान्ति० ।।
जल में थल में और गगन में अन्तरिक्ष में अग्नि पवन में ।
औषधि वनस्पति वन उपवन में सकल विश्व में जड़-चेतन में ।। शान्ति० ।।

# अथर्ववेदीय प्रश्न उपनिषद् में १६ कलाएँ

पिप्पलाद ऋषि के पास जाकर ६ जिज्ञासुओं ने वर्षभर तप-ब्रह्मचर्य-श्रद्धा-पूर्वक रहकर ६ प्रश्न किये। १. कबन्धी कात्यायन— प्रजाएँ कहाँ से उत्पन्न होती हैं ?

२. भार्गव वैदर्भि — प्राण को कितने देव धारण, कितने प्रकाशित करते कौन वरिष्ठ है ?

३ कौशल्य आश्वलायन—शरीर में प्राण कहाँ से, कैसे, किसके आता; विभक्त होकर रहता; कैसे छूटता; इसका बाह्य-आन्तरिक जगत् से कैसा संबन्ध है ?

४. सौर्यायिणी गार्ग्य — कौन सोता-जागता-स्वप्न देखता, किसे सुख होता, इसका आधार क्या ?

५. शैब्यपुत्र सत्यकाम— प्राणान्त तक ओ३म का ध्यान करे तो किस लोक को जीतता ?

६.सुकेशा भारद्वाज— सोलह कलाओं वाला पुरुष कौन है ?

कौशल्य राजकुमार हिरण्यनाभ उत्तर न दे सका था। पिप्पलाद ने उत्तर दिया कि यहीं पर मनुष्य-शरीर में ही वह पुरुष है जिसमें १६ कलाएँ उत्पन्न होती हैं। वे ये हैं—

१ प्राण २ श्रद्धा ३-७ पृथिवी-जल-अग्नि-वायु-आकाश ८ पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (घ्राण-रसना-नेत्र -त्वचा-श्रोत्र) ६ मन १०-१५ अन्न-वीर्य-तप-कर्म-मन्त्र (वेद)-लोक (उत्तम आवास) स्थान १६ नाम (उत्तम नाम, तदनुसार कर्म और यश)। १६ कला वाला ईश्वर भी षोडशी है—

यस्मान् न जातः परो अन्यो अस्ति य आ विवेश भुवनानि विश्वा।

प्रजापतिः प्रजया संरराणस् त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोडशी ॥ (यजुर्वेद ३२-५)

यह यजु ८-३६, ऋ० भा० भू०, आर्याभिविनय में भी है; वहाँ पहली कला इच्छा [ईक्षण] को माना, क्रमशः कर्म-लोक छोड़ दिये, 'लोक लोकों के नाम' को एक माना, नहीं तो संख्या १७ होगी। केन उपनिषद् में पहले ईक्षण का निर्देश है। जैमिनि उ० ब्रा० १-४६, ४-२४ में भिन्नता है।

# गोपथ में ओ३म्

अथर्ववेद के ब्राह्मण ग्रन्थ गोपथ में पूर्वभाग के प्रपाठक १ की सोलह से तीस कण्डिका तक ओम् के सम्बन्ध में छत्तीस प्रश्नोत्तर दिये हैं—

प्रश्न उत्तर प्रश्न उत्तर प्रश्न उत्तर

१ धातु क्या है ? आप्लृ, अव। २ क्या प्रातिपदिक ? कृदन्त। ३-४ क्या नाम-आख्यात ? नाम। ५-७ लिङ्ग-वचन-विभक्ति ? समान, अव्यय। ८ कौन प्रत्यय ? ६ मनिन्। कौन स्वर है ? उदात्त। १० उपसर्ग क्या है ? कुछ नहीं। ११ क्या निपात है ? हाँ। १२ व्याकरण क्या ? मनिन्, उणादि। १३ विकार क्या ? आप-आव, आ-उ ओं, अव-उठ, अ-उ ओ। अवतेश टिलोपश्च। १-१-१४२ १४ कौन विकारी है ? आप्लृ व्याप्तौ, अव रक्षण-गति-कान्ति-प्रीति-तृप्ति-अवगम-प्रवेश-श्रवण-स्वामी-अर्थ-याचन-क्रिया-इच्छा-दीप्ति-अवाप्ति-आलिङ्गन-हिंसा-आदान-भाव-वृद्धिषु। १५ कितनी मात्राएँ ? ३ प्लुत, १ म् की। १६ कितने वर्ण हैं? दो. आ-म्। १७ कितने अक्षर हैं ? एक। १८ कितने पद ? एक। १६ कौन संयोग है ? कुछ नहीं। २० स्थान क्या है ? कंठ-ओष्ठ। २१ अनुप्रदान-करण क्या ? विवृत, स्पृष्ट। २२ शिक्षक क्या बोलते ? ओम्। २३ छन्द देवी गायत्री। २४ वर्ण ? श्वेत, पहली मात्रा रक्त। २५-३० मन्त्र-कल्प-ब्राह्मण-ऋग्-यजु-साम क्या हैं ? व्याहृति है। ३१ आदि में क्यों बोलते हैं। पूज्य होने से। ३२-३५ देवता-ज्योतिष-निरुक्त-स्थान-प्रकृति क्या हैं ? ब्रह्म- विष्णु-ईशान-सब देवता हैं। ३६ अध्यात्म क्या है ? मोक्ष, यह आत्मा का भेषज है।

इन्द्र के ५ प्रश्न — १- ओं क्या है ? उत्तर- ऋ० में स्वरितोदात्त, यजु में त्रैस्वर्योदात्त। साम में दीर्घ प्लुतोदात्त, अथर्व में ह्रस्वोदात्त। अ-उ दो पद उदात्त हैं, साढ़े४ मात्राएँ हैं। यह ब्रह्मपुत्र है।

ओ३म्

महर्षि वायु पर आविर्भूत

# यजुर्वेद संहिता
# (अ० १-४०)

## पदच्छेद-सहित सरल हिन्दी अनुवाद

अनुवादक, भाष्यकार तथा सम्पादक, प्रकाशक तथा मुद्रक—
वेदर्षि वेदाचार्य, वीरेन्द्र सरस्वती, ऐम० ए०, काव्यतीर्थ,
अध्यक्ष, विश्व वेदपरिषद्, आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर लखनऊ ,२२६००६ दूरभाष ७१५०१
२५० प्रतियाँ आषाढ़ पूर्णिमा २०५० वि०, जुलायी १९९३ ई० मूल्य ५०) पचास रुपये

# यजुर्वेद

## अ० १ के ऋषि-देवता-छन्दः-स्वर

ऋषि— १-३१ परमेष्ठी प्रजापति।

देवता— १-३-१०-२०-२५-२६ सविता; २-७-१४-१५-२१-२७ से ३१ तक यज्ञ, ४ ९ विष्णु; ५-८-११ १०-१६ २३ अग्नि । ६ प्रजापति । १२ आपः-सविता । १३ इन्द्र-अग्नि-यज्ञ । १६ वायु-सविता । २२ अग्नि-सविता । २४ द्यौ-विद्युत् ।

७ छन्दों के क्रमशः ७ ही स्वर होते हैं, उन्हें स्मरण कर -स्वयं जान लें ।

१ गायत्री २ उष्णिक् ३ अनुष्टुप् ४ बृहती ५ पंक्ति ६ त्रिष्टुप ७ जगती ।

१ षडज २ ऋषभ ३ गान्धार ४ मध्यम ५ पंचम ६ धैवत ७ निषाद ।

छन्दों के अक्षरों में एक कम वाले को निचृद्, एक अधिक वाले को भुरिग्, २ कम वाले को विराट् २ अधिक वाले को स्वराट् कहते हैं । यह भेद भी पाठक स्वयं समझ लें ।

पहले अध्याय के छन्द— मन्त्र एक-तेरह-अठारह बृहती, ब्राह्मी उष्णिक् २-५-६-सोलह-अठारह-२०-२२ -२७-२९ त्रिष्टुप् । ३-७-ग्यारह-चौदह-पन्द्रह-३०-एकतीस जगती । ४-एकतीस अनुष्टुप् । ६-पन्द्रह-सत्तरह-अठारह-इक्कीस-२४-२६-२८ पंक्ति । ८ अतिजगती । १० बृहती, बारह [illegible] । सोलह-इक्कीस-२२ गायत्री ।

वेद में आगे-पीछे के व्यञ्जन-सहित केवल एक स्वर को ही एक अक्षर गिना-माना जाता है ।

मन्त्र-संख्या १९७५

| अ० | मन्त्र | अ० | मन्त्र | अ० | मन्त्र | अ० | मन्त्र | अ० | मन्त्र | अ० | मन्त्र | अ० | मन्त्र |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | ३१ | २ | ३४ | ३ | ६३ | ४ | ३७ | ५ | ४३ | ६ | ३७ | ७ | ४८ |
| ८ | ६३ | ९ | ४० | १० | ३४ | ११ | ८३ | १२ | ११७ | १३ | ५८ | १४ | ३१ |
| १५ | ६५ | १६ | ६६ | १७ | ९९ | १८ | ७७ | १९ | ९५ | २० | ९० | २१ | ६१ |
| २२ | ३४ | २३ | ६५ | २४ | ४० | २५ | ४७ | २६ | २६ | २७ | ४५ | २८ | ४६ |
| २९ | ६० | ३० | २२ | ३१ | २२ | ३२ | १६ | ३३ | ९७ | ३४ | ५८ | ३५ | २२ |
| ३६ | २४ | ३७ | २१ | ३८ | २८ | ३९ | १३ | ४० | १७ | | | | |

ओ३म्



# अथ यजुर्वेद प्रतृण्ण पद संहिता

## अध्याय १

ऋषि परमेष्ठीप्रजापति, देवता सविता, छन्द भाग तक बृहती; पश्चात् ब्राह्मी उष्णिक स्वर मध्यम-ऋषभ

१ ओ३म् इषे त्वा ऊर्जे त्वा वायवः स्थ; देवः वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे, आप्यायध्वम्, अघ्न्याः इन्द्राय भागम् प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्माः, मा वः स्तेनः ईशत मा अघशंसः, ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः यजमानस्य पशून् पाहि ॥

२ वसोः पवित्रम् असि द्यौः असि पृथिवी असि मातरिश्वनः घर्मः असि विश्वधा असि । परमेण धाम्ना दृंहस्व मा ह्वाः मा ते यज्ञपतिः ह्वार्षीत् ॥

३ वसोः पवित्रम् असि शतधारम् वसोः पवित्रम् असि सहस्रधारम् ।
देवः त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा काम् अधुक्षः ॥

४ सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागं सोमेन आतनच्मि विष्णो हव्यं रक्ष ॥

५ अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तत् शकेयं तत् मे राध्यताम् ।
इदं अहं अनृतात् सत्यम् उप एमि ॥

६ कः त्वा युनक्ति सः त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति ।
कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥

७ प्रत्युष्टम् रक्षः प्रत्युष्टाः अरातयः निष्टप्तं रक्षः निष्टप्ता अरातयः ।
उरु अन्तरिक्षं अनु एमि ॥

८ धूः असि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं यः अस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।
देवानां असि वह्नितमं सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥

९ अह्रुतम् असि हविर्धानम् दृंहस्व मा ह्वाः मा ते यज्ञपतिः ह्वार्षीत् ।
विष्णुस् त्वा क्रमताम् उरु वाताय अपहतं रक्षः यच्छन्ताम् पञ्च ॥

## यजुर्वेद–विषय-सूची अध्याय १

| मन्त्र | विषय | मन्त्र | विषय | मन्त्र | विषय |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | ईश्वर-प्रार्थनादि । | २ | वसु आद्यनेकनामेश्वरस्य पदार्थविद्या | ४ | धर्म उपदेशप्रार्थनादि पदार्थ० |
| ७ | दुष्ट-निवारणार्थेश्वर० । | ८ | ईश्वरस्योत्तमत्वादि ,, ,, | १२ | निष्पवादि ,, ० |
| १३ | हव्यशोधनाग्न्यादि० | १६ | ईश्वरप्रार्थना-धर्मोपदेशादि० | २० | प्राणाद्यनेकनामेश्वरादि० |
| २५ | ओषधि-शत्रु-वधादि० | २६ | द्वेष-त्यागादि० | ३१ | तेजोऽसीत्याद्यनेक नामेश्वरादि० |

१० देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णामि अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥

११ भूताय त्वा न अरातये स्वःअभि विख्येषं दृंहन्तां दुर्याः पृथिव्यां उरुअन्तरिक्षंअन्वेमि
पृथिव्याः त्वा नाभौ सादयामि अदित्या उपस्थे अग्ने हव्यं रक्ष ॥

१२ पवित्रे स्थः वैष्णव्यौ सवितुः वः प्रसवे उत्पुनामि अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य
रश्मिभिः । देवीः आपः अग्रेगुवः अग्रेपुवः अग्रे इमम् अद्य यज्ञम् नयत
अग्रे यज्ञपति सुधातुं यज्ञपति देवयुवम् ॥

१३ युष्माः इन्द्रः अवृणीत वृत्रतूर्ये यूयम् इन्द्रम् अवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिताः स्थ ।
अग्नये त्वा जुष्टम् प्रोक्षामि अग्नी-षोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । दैव्याय
कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद् वः अशुद्धा पराजघ्नुः इदं वः तत् शुन्धामि ॥

१४. शर्म असि अवधूतं रक्षः अवधूता अरातयःअदित्याः त्वग् असि प्रति त्वा अदितिःवेत्तु ।
अद्रिः असि वानस्पत्यः ग्रावा असि पृथुबुध्नः प्रति त्वा अदित्याः त्वक् वेत्तु ॥

१५ अग्नेः तनूः असि वाचः विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावा असि वानस्पत्यः ।
स इदं देवेभ्यः हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । हविष्कृद् एहि हविष्कृद् एहि ॥

१६ कुक्कुटः असि मधुजिह्व इषं ऊर्जं आ वद त्वया वयं सङ्घातं सङ्घातं जेष्म ।
वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतं रक्षः परापूताः अरातयः अपहतं रक्षः
वायुः वा वि विनक्तु देवः वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णातु अच्छिद्रेण पाणिना ॥

१७. धृष्टिः असि अप अग्ने अग्निम् आमादम् जहि निष्क्रव्यादम् सेधा देवयजं वह ।
ध्रुवम् असि पृथिवीं दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवनि उपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥

१८ अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणम् असि अन्तरिक्षम् दृंह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि
सजातवनि उपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय । धर्त्रम् असि दिवं ,, ,,
,, । विश्वाभ्यः त्वा आशाभ्यः उप दधामि चितः
स्थ ऊर्ध्वचितः भृगूणाम् अङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥

१९ शर्म असि अवधूतं रक्षः अवधूताः अरातयः अदित्याः त्वग् असि प्रति त्वा अदितिः वेत्तु । धिषणा असि पर्वती प्रति त्वा अदित्याः त्वग् वेत्तु । दिवः स्कम्भनीः असि धिषणा असि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ।।

२० धान्यं असि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वा उदानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घां अनु प्रसितिं आयुषे धां देवः वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णातु अच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयः असि ।।

२१ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम् । सं वपामि सम् आपः ओषधीभिः सं ओषधयः रसेन । सं रेवतीः जगतीभिः पृच्यन्तां सम् मधुमतीः मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ।।

२२ जनयत्यै त्वा संयौमि इदम् अग्नेः इदम् अग्नीषोमयोः इषे त्वा घर्मः असि विश्वायुः उरुप्रथाः उरु प्रथस्व उरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् । अग्निः ते त्वचम् मा हिंसीद् देवः त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठे अधि नाके ।।

२३ मा भेः मा सं विक्थाः अतमेरुः यज्ञः अतमेरुः यजमानस्य प्रजा भूयात् । त्रिताय त्वा द्विताय त्वा एकताय त्वा ।।

२४ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम् । आददे अध्वरकृतं देवेभ्यः इन्द्रस्य बाहुः असि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुः असि तिग्मतेजा द्विषतः वधः ।।

२५ पृथिवि देवयजनि ओषध्याः ते मूलम् मा हिंसिषम् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौः बधान देवसवितः परमस्यां पृथिव्यां शतेन पाशैः यः अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः तम् अतः मा मौक् ।।

२६ अप अररुम् पृथिव्यै देवयजनाद् वध्यासम् व्रजम् ..... मौक् । अररो दिवम् मा पप्तः द्रप्सः ते द्यां मा स्कन् व्रजम् ... मौक् ।।

२७ गायत्रेण त्वा छन्दसा परि गृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा ... । जागतेन त्वा ... । सुक्ष्मा च असि शिवा च असि स्योना च असि सुषदा च असि ऊर्जस्वती च असि पयस्वती च।

२८ पुरा क्रूरस्य विसृपः विरप्शिन् उदादाय पृथिवीम् जीवदानुम् याम् ऐरयन् चन्द्रमसि स्वधाभिः तां उ धीरासः अनुदिश्य यजन्ते । प्रोक्षणीः आसादय द्विषतः वधः असि ।।

२९ प्रत्युष्टम् रक्षः प्रत्युष्टाः अरातयः निष्टप्तम् रक्षः निष्टप्ताः अरातयः ।। अनिशितः असि सपत्नक्षिद् वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम । प्रत्युष्ट...अरातयः अनिशिता असि सपत्नक्षिद् वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्जिम ।

३० अदित्यै रास्ना असि विष्णोः वेष्पः असि ऊर्जे त्वा अदब्धेन चक्षुषा अव पश्यामि ।। अग्नेः जिह्वा असि सुहूः देवेभ्यः धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ।।

३१ सवितुः त्वा प्रसवे उत् पुनामि अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः । ,, वः ... रश्मिभिः । तेजः असि शुक्रम् असि अमृतं असि धाम नाम असि प्रियं देवानां अनाधृष्टं देवयजनम् असि ।।

# यजुर्वेद अध्याय १

(ज्ञान-कर्म, अन्नबल) के लिए [मैं परमात्मा जन्म देता हूं] ।
१ (१) [हे जीव ! ] तुझे इष-ऊर्जे (ज्ञान-कर्म, अन्नबल) के लिए
(२) [हे जीवो ] तुम वायु (गति-युक्त) हो ।
(३) तुम्हें देव सविता (मैं तथा सूर्य-पिता-विद्वान्) श्रेष्ठतम कर्म (यज्ञ आदि) के लिए अर्पित करे।
(४) तुम आप्यायित-तृप्त-उन्नत होओ ।
(५) हे अहिंसनीय जीवो ! तुम इन्द्र (ऐश्वर्य-परमेश्वर-वायु-बिजली) के लिए भजनीय को (भजो) ।
(६) हे प्रजा वाली नीरोग, यक्ष्मा-रहित अहिंसनीय गौओ (भूमियो-इन्द्रियो-वाणियो) ! तुम
पर स्तेन (शैतान-दुष्ट-चोर-डाकू) और पापी शासन न करे, तुम्हारा स्वामी चोर-पापी न हो
(७-८) इस गौ-पति के पास तुम बहुत और अटल रहो । हे ईश, यजमान के पशुओं की रक्षा कर।
सविता-गौ के अनेक अर्थ होने से श्लेष अलंकार है ।
मन्त्र में वायु शब्द आने से उस ऋषि का नाम वायु हुआ जिस पर यह यजुर्वेद प्रकट हुआ ।
२ [हे मनुष्य ! ] तू वसु (यज्ञ-निवास-घर-व्रत) का पवित्र-कर्ता, विज्ञान-प्रकाशक, पृथिवी-स्थि
विस्तृत, वायु का शोधक, विश्व का धारक है । तू परम धाम, उत्तम घर, मोक्ष से दृढ़ बत
मत डर मत काँप, कुटिल न बन, तेरा यज्ञ-पति न काँपे; कुटिल न हो; प्रभु तुझे न, त्यागेन
३ हे मनुष्य ! तू वसु का सैकड़ों-हजारों धाराओं वाला पवित्र (ज्ञान-कर्म) है, देव सवित।
वसु के पवित्र शत धार से तुझे सुन्दर-पवित्र कर्म से पवित्र करे । तूने किस वेद-गौ को दुहा ?।
४ वह वेद-वाणी जो सबको पूर्ण ज्ञान-प्रदा, सब कर्म-साधक, सब की धारक है । तुझ इन्द्र को
साम [ज्ञान-आनन्द] से [illegible] हूं । हे विष्णु व्यापक परमात्मा और यज्ञ ! तू हव्य की रक्षा कर।
५ परमात्मा- हे [illegible] मनुष्य ! मैं नियम बताऊँगा, उसमें समर्थ हूं, मेरा वह
सिद्ध हो, वह मैं असत्य से हटाकर सत्य को देता हूं ।
मनुष्य- हे व्रतपति परमात्मा ! मैं व्रत पालन करूँगा, उसे कर सकूँ, मेरा वह पूरा सिद्ध हो।
यह मैं असत्य से हटकर सत्य के पास आता हूं ।
६ कौन तुझे नियुक्त करता है ? वही सुख-रूप प्रजापति । किस के लिए नियुक्त करता है ? उसके
लिए । कर्म और वेष (विद्या-व्याप्ति के लिए तुम दोनों स्त्री-पुरुषों को नियुक्त करता है ।
७ राक्षस [दुष्ट-दुष्टता-रोग-क्रिमि], कृपण-शत्रु हटा दिये, निर्मूल किये, अब बड़े अन्तरिक्ष में पहुँचूँ
८ हे अग्नि [परमात्मा और भौतिक] ! तू धारक-दोष-नाशक है, दोष नष्ट कर. उसे हिंसक का
नाश कर जो हमें नष्ट करे और जिसे हम नष्ट करें । तू देवों का सर्वाधिक वाहक-शुद्ध-पूरक
सेव्य और विद्वानों से स्तूयमान सुख-दाता है ।
९ हे मनुष्य ! तू अकुटिल है, हवि-भण्डार [शरीर-घर] को दृढ़ कर; उस को तू और तेर
यज्ञ-पति न छोड़े । विष्णु [व्यापक परमात्म-सूर्य-यज्ञ] तुझको विशाल वायु के लिए आगे बढ़ाए
राक्षस नष्ट हों, पाँच क्रियाएँ [उत्क्षेपण-अवक्षेपण-आकुञ्चन-प्रसारण-गमन] ५ अंगुलियाँ गति करें,
५ जन ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-निषाद दान दें, पञ्चायत तुझको धन दे ।
१० हे मनुष्य ! देव सविता के उत्पादित संसार में अश्विनों दिन-रात की बाहों; पूषा के
हाथों से अग्नि और अग्नि-जल से सविता यज्ञ-फल तुझे देता है ।
११ हे अग्नि (परमात्मा और भौतिक) ! तू हव्य की रक्षा कर । उत्पन्न संसार के लिए; कृपणता
के लिए नहीं, सुखरूप तुझको सब ओर देखूँ, पृथिवी पर घर दृढ़ हो, मुझको बड़ा अन्तरिक्ष मिले,
पृथिवी के केन्द्र में प्रकृति की गोद में तुझ को स्थापित करता हूं ।

१२ यज्ञ-किरणो प्राण-उदान पवित्र हों, सविता के उत्पन्न संसार में निर्दोष पवित्र वायु से और सूर्य-किरणों से तुझको अधिक पवित्र करता हूं। हे आकाशीय जल! और दिव्य आप्तो! तुम आगे जाने वाले, आने वालों के पवित्र-कर्ता हो, इस यज्ञ को सदा आगे ले जाओ; सुन्दर सुवर्ण-युक्त, देव-सहित यज्ञपति को आगे उन्नति पर ले जाओ।

१३ हे जल और आप्तो! तुम को इन्द्र (सूर्य-वायु-शासक) ने वृत्र (मेघ-दुष्ट) के वध के लिए वरण किया और उसको तुम ने। तुम सींचे हुए हो। हे यज्ञ! परमात्मा मैं अग्नि और अग्नि-सोम के लिए सेवनीय तुझको सींचता हूं। दोनों दैव्य कर्म तथा यज्ञ के लिए शुद्ध होओ, जो अशु-द्धियाँ हैं वे दूर हों। यह मैं इन्हें शुद्ध करता हूं।

१४ हे यज्ञ-घर! तू सुखद है, राक्षस-शत्रु दूर किये, तू पृथिवी की त्वचा-समान है यह परमात्मा जानता है' पत्थर-लकड़ी का बना, बड़े अन्तरिक्ष वाला मेघ-समान, तुझ को वायु मिलती रहे।

१५ हे यज्ञ तथा पूज्य मनुष्य! तू आग के शरीर-समान विस्तारक; वाणी का प्रयोग-स्थान है। तुझे दिव्य गुण पाने के लिए लेता हूं; पत्थर-लकड़ी का बना बड़ा उखल-मूसल देवों के लिए हवि तथा शमनकारी सामग्री शुद्ध कर। आ हे हवि-निर्माता [वाणी-व्यक्ति]! आ।

१६ हे यज्ञ तथा मनुष्य! तू मधुर जीभ (वाणी) का कुक्कुट [दुष्ट-नाशक, बुरे जल का शोषक है इष-ऊर्ज को बता; तेरे साथ हम प्रत्येक सङ्घर्ष जीतें। तुझ वर्षा-वृद्धिकारी को सब जानें, राक्षस रोग-क्रिमि दूर हुए। वायु तुम को विशेष प्रकाशित करे, सुनहरी किरणों का सविता देव सूर्य निर्दोष किरण से ग्रहण करे।

१७ हे यज्ञ-शिल्प-आग तथा नेता! तू समर्थ है, कच्चा खानेवाली, मांस-भक्षी आग दूर रख, दे देवों का यजन कराने वाली बिजली को ला। तू अटल है, भूमि के जनों को बढ़ा, ब्राह्मण-क्षत्रिय और उत्पन्न प्राणियों से सेवनीय तुझ को शत्रु के वध के लिए स्थापित-प्रयुक्त करता हूं।

१८ हे अग्नि तथा अग्रणी! वेद को ले, तू धारक (तेज-वायु) है, अन्तरिक्ष-द्यौ को दृढ़ कर। ब्रह्म-क्षत्र-समान उत्पन्न से सेवनीय तुझ को दुष्ट-नाशार्थ लेता-लिवाता हूं, सब दिशाओं से लाता हूं। तुम चुने-उपरि चुने (विज्ञानी-यन्त्र) हो, भूनने-पकाने वाले अङ्गारों-प्राणों के तप से तपो।

१९ शम-यत्त मन्त्र १४ के समान है। हे अग्नि! तू उत्तम ज्ञान वाली, वेद-वाणी पृथिवी की त्वचा-समान रक्षक जानी जाये, द्यौ की धारक बुद्धि है, मेघ-पुत्री पृथिवी-समान रक्षक है तुझको बुद्धि पाये-जाने।

२० हे हवि! तू देवों को तृप्त कर, तुझ को प्राण-उदान-व्यान के लिए लेता हूं, आयु के लिए सुख-बन्धन-युक्त लड़ी को धारण करूं, सुवर्ण-किरण सविता देव निर्दोष किरण से दृष्टि के लिए ले; तू बड़ी शक्तिशाली गौओं का दूध है।

२१ पूर्वार्ध मन्त्र १० तथा २४ में भी है। मैं यज्ञ का विस्तार करता हूं। जल औषधियों से, वे रस से मिलें, मधुर-जल मधुर औषधियों से मिलें।

२२ हे मनुष्य! उत्पादन के लिए को हवि से मिलाता हूं। यह आग तथा आग-जल के मध्य अन्न के लिए हो। तू यज्ञ है; पूर्णायु और विशाल होकर यज्ञपति के साथ बढ़। आग तेरी त्वचा को नष्ट न करे। सविता (ईश्वर-सूर्य) तुझ को बड़े सुख में पक्का करे।

२३ न डर। न चलायमान हो, यज्ञ और यजमान की प्रजा ग्लानि-रहित हो तीन-दो-एक के लिए (३ अग्नि-कर्म-हवि, शरीर-वाणी-मन, दो आहवनीय-गार्हपत्य, वायु-जल-शुद्धि, एक सुख)।

# यजुर्वेद

२४ तुझ देव सविता के उत्पादित संसार में अश्विमों की बाहों और पूषा के हाथों से मैं यज्ञ-कार्य को देवों के लिए लेता हूं तू हजारों दोषों को मूल डालने वाला, सूर्य का दक्षता-युक्त हाथ है और तेज वाला, शत्रु का वध-कर्त्ता वायु -समान गति-शील है।

२५ हे देवों की यज्ञस्थान पृथिवी ! मैं तेरी ओषधियों को जड़ नष्ट न करूँ। हे यज्ञ ! तू द्यौ में मेघ तक जा, गो (किरणों-पशुओं) के स्थान में बरस। हे देव सविता (सूर्य- शासक) ! इस परम पृथिवी पर उस शत्रु को सैकड़ों बन्धनों से बाँध जो एक मैं अनेक से और हम अनेक जिस से द्वेष करते हैं; उसे इस बन्धन से मत छोड़।

२६ मैं अररु (दुष्ट-रोग-क्रिमि) को पृथिवी पर देव-यज्ञ-शाला से दूर मार भगाऊँ। हे मनुष्य ! व्रज-गो-स्थान सत्सङ्ग-विद्यालय को जा; जहाँ ज्ञान-प्रकाशक सूर्य-समान आचार्य विद्या बरसाये हे देव सविता ! इस पृथिवी पर जो हम से द्वेष करता, जिससे हम द्वेष करते उसे शत पाशों से बाँध; उसे इनसे मत छोड़। हे अररु, द्यौ (प्रकाश) को न पा, तेरा या पृथिवी का हर्षकारक रस आनन्द को न निकलने दे; तेरा अंश द्यौ तक न पहुँचे। व्रज---छोड़ (पूर्ववत्)।

२७ हे परमात्मा और यज्ञ ! तुझ को मैं गायत्री-त्रिष्टुप्-जगती छन्द से लेता हूं। हे सुन्दर भूमि, तू कल्याणी-सुखदा-निवासयोग्य-अन्न-दूध-जल वाली है और हो।

२८ हे महान ईश्वर और मनुष्य ! तू फैलने वाले क्रूर सङ्घर्ष से पहले ही जीवन-दायिनी पृथिवी को उन्नत कर चन्द्र-निकट अन्नों के साथ पाता है उसी को लक्ष्य कर धीर योगी यज्ञ करते हैं। यज्ञ में प्रोक्षणियाँ रख, तू द्वेषियों का नाशक है।

२९ यज्ञ से राक्षस-रोग-क्रिमि और अदाती जलता और नष्ट होता है। हे अन्न-बल-युक्त यज्ञ-संग्राम-सेना के स्त्री-पुरुषो ! आप अविस्तृत, रिपु-जयी हैं। अन्न-बल पाने के लिए आप को शुद्ध-पवित्र करता हूं।

३० हे यज्ञ ! तू पृथिवी-अन्तरिक्ष में रस-दाता, व्यापक परमात्मा की शक्ति है, मैं अन्न-रस-पराक्रम के लिए-आनन्द पूर्ण विज्ञान से देखता हूं। तू अग्नि की जीभ है, देवों को अच्छे प्रकार बुलाने वाला, घर-घर प्रत्येक यजुर्मन्त्र और मेरे कर्म के लिए सिद्धि-प्रद हो।

३१ हे यज्ञ और याज्ञिक ! मैं सविता के उत्पादित आपके संसार में निर्दोष पवित्र कर्म से परमात्मा और सूर्य की किरणों से आप और सब को उत्कृष्ट पवित्र करता हूँ। तू तेज-शुद्ध-अमृत-सर्वाधार-नमन-योग्य-जल का कारण, देवों का प्रिय, न दबने वाला, देवों का सङ्गम है।

ओ३म्

श्री कौशिक आचार्य प्रणीतम्

# अथर्ववेदीय वैतान श्रौत सूत्रम्

भूमिका

प्रत्येक वेद के गृह्य-श्रौत सूत्र हैं, पहले में घर में कर्तव्य संस्कार और दूसरे में श्रुति के मन्त्रों से कर्त्तव्य यज्ञों का विधान है । यजुर्वेद के कात्यायन श्रौत के समान अथर्व का वैतान सूत्र है जिन का अर्थ विशेष ताना हुआ विस्तार और विधान; जिसमें ८ अध्याय, ४३ कंडिका, ६७६ सूत्र हैं।
यह कात्यायन श्रौत से भिन्न है क्योंकि यज्ञों की विधि में अथर्व-मन्त्र विनियुक्त हैं ।
इसका आधार गोपथ ब्राह्मण है जिसका संकेत अनेकत्र मिलता है । निम्नाङ्कित यज्ञ वर्णित हैं —

१-२ दर्श-पूर्णमास-इष्टि ३ अग्न्याधेय ४ अग्निहोत्र ५ आरम्भण
६ चातुर्मास्य, ६ भेद — वैश्वदेव, वरुण-प्रघास, साकमेध, पित्र्यमेध, त्र्यम्बक, शुनासीर्य
७ पशुबन्ध, ८ अग्निष्टोम, ५ भेद — सुत्यमहः, प्रातः-माध्यन्दिन-सायं (तृतीय) सवन, अवभृथ,
९ अत्यग्निष्टोम १० उक्थ्य ११ षोडशी १२ अतिरात्र १३ वाजपेय १४ आप्तोर्याम
१५ अग्नि-चयन १६ सौत्रामणि १७ गवामयन ७ अङ्ग— चतुर्विंशमहः अभिप्लव-षडह, पृष्ठ्य-षडह नवरात्र दशरात्र महाव्रत पृष्ठ्य-शमनीय । १८ राजसूय १९ अश्वमेध २० पुरुषमेध
२१ सर्वमेध ,

—०—

# १–२ दर्श पूर्णमासेष्टि

## अध्याय एक; कण्डिका एक, सूत्र २०

१ अब वितान (यज्ञ-विधान, गार्हपत्य-आहवनीय-दक्षिण अग्नि-विधान) कहते हैं। ब्रह्मा अथर्ववेदज्ञ दक्षिण में विधि-सहित, मौन बैठता है।

२ वह बताये गये होम अनुमन्त्रित करता है।

३ भागलि का मत— मन्त्र के आदेश न होने पर होम-देवता के नाम वाला मन्त्र पढ़े। माठर का मत— देवतानुसार युवा कौशिक का मत— प्रजापते० (अ ७-८०-३) से आरम्भ करे। आचार्यों का मत— ओं भूर्भुवः स्वः जनदोश्म् से करे। मन्त्र बदल दे; जैसे इन्द्र न त्वदेता० आदि। आचार्यों का मत— ओं भूर्भुवः स्वः जनदोश्म् से करे। आवपन करते हैं।

४ कुछ आचार्य प्रधान-होम-मन्त्रों को पुरस्ताद्धोम-संस्थित-होमों में आवपन करते हैं। (यथा दर्श-पूर्णमास में येनेन्द्राय समभरः० [अ १-९-३] से।

५ वह यजमान को अथर्ववेदज्ञ से संस्कृत (मन्त्र) बुलवाता है।

यहाँ 'अग्नि' से आहवनीय का ग्रहण करे।

७ यजमान के स्वर-मौन ब्रह्मा-समान हों।

८ देवता-हवि-दक्षिणा यजुर्वेद-निर्दिष्ट हों।

९ आग्नीध्र का उपाचार विहार से उत्तर में है, वह हाथ में स्फ्य लेकर दक्षिण-मुख रहता है।

१० वह स्वर-सहित अस्तु श्रौश्षट् यह प्रत्याश्रावण करता है।

११ यजमान चतुर्दशी को उपवास रखकर सायं भात खाता है।

१२ आहवनीय-गार्हपत्य-दक्षिण अग्नियों में ममाग्ने वर्चः (अ० ५-३-१ से) क्रमशः ३-४-३ समिधाएँ एक-एक कर एक-एक मन्त्र पढ़कर रखता है।

१३ व्रतेन त्वं व्रतपते०(७-७४-४) से अनशन आदि [कौशिक सूत्र ७३-१० के अनुसार अनशन-ब्रह्मचर्य-भूमि-शयन, पवित्र-सुगन्धित आग के पास बैठना] व्रत का गार्हपत्य के दक्षिण आहवनीय देश में स्थित होकर ग्रहण करता है।

१४ ममाग्ने वर्चः (५-३-१-४) के ४ मन्त्र पढ़कर देवताओं का नाम जपता और सिनीवाली पृथुष्टुके० आदि (७-४६ के तीन मन्त्र) पढ़कर सिनीवाली चतुर्दशी देवता को ग्रहण करता है।

१५ किन्तु पौर्णमासी में अन्वद्य नः (७-२०) पढ़कर।

१६ प्रातः अग्निहोत्र कर के अमावास्या में कुहूं देवीं -४७ और यत्ते देवाः ७-७९ के दो सूक्तों से; पूर्णिमा में राकामहं० ७-४८ तथा पूर्णा पश्चात्० ७-८० के २ सूक्तों से काल को लेता है।

१७ अब यजमान ब्रह्मा का वरण 'भूपते भुवनपते भुवो पते महतो भूतस्य पते ब्रह्माणं त्वा वृणीमहे' (तैत्तिरीय ब्राह्मण ३-७-६-१) जप कर करता है।

१८ वृत ब्रह्मा का जप— अहं भूपतिः अहं भुवनपतिः अहं भुवां पतिः अहं महतो भूतस्य पतिं तदहं मनसे प्रब्रवीमि मनो वाचे वाग्गायत्र्यै गायत्रमुष्णिहे उष्णिगनुष्टुभे अनुष्टुब्बृहत्यै बृहतीं पंक्त्यै पङ्क्तिस्त्रिष्टुभे त्रिष्टुब्जगत्यै जगती प्रजापतये प्रजापतिर्विश्वेभ्यो देवेभ्यः (वही तै०-ब्रा०) और व्यक्त वाणी से ओं भूर्भुवः स्वः जनदोश्म् और अप्रतिरथ(इन्द्रस्य बाहू० १९-१३) पढ़ता है।

१९ जीवाभिराचम्य से प्रपदन तक (१९-६९-१-४) भी पढ़ता है। (कौ० सू० ३-४-५; १३७)

२० आहवनीय के उत्तर, गार्हपत्य-दक्षिण के दक्षिण ओं प्रपद्ये कहकर अहे दैधिषव्य से लेकर द्यावापृथिव्योः तक पाठ करता है। (कौ० सू० ३-४) क० १ समाप्त,

## वैतान सूत्र दर्श-पूर्णमास-इष्टि अध्याय १ कण्डिका २ सूत्र १७

१ अप: प्रणयन— अध्वर्यु द्वारा ब्रह्मन्नप: प्रणेष्यामि कहने पर ब्रह्मा को अनुमति—
पृणय यज्ञं देवता वर्धय त्वं नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानो अस्तु ।
सप्त ऋषीणां सुकृतां यत्र लोकं तत्रेमं यज्ञं यजमानञ्च धेहि । ओं भूर्भुवःस्व जनदोम् प्रणय,
यह कहकर स्वरानुसार अनुमति देता है। इसी प्रकार आदि-अन्त के २ शब्दों से अनुज्ञा होती है।
जैसे हविः प्रोक्षय ।

२ प्रणीताओं के लाये जाने पर हविष्कृत् के उद्वादन तक मौन रखता है।

३ यदि बोल पड़े तो प्रायश्चित्त में वैष्णवी-ऋचा जपे ।

४ आग्नीध्र अन्वाहार्य का अविश्रयण कर वेदि का मार्जन कर उत्कर देश के प्राङ्गण-बर्हि-स्रुचा रखता है । स्तम्बयजु के द्वितीय पुरीष में अध्वर्यु द्वारा उत्कर में प्रहार करने पर अररो दिवं मा पप्त: (मा० १-२६) पढ़कर वहाँ पहुँचता है ।

५ ग्रहण की जाती हुई वेदि पर बृहस्पते परिगृहाण कहकर अनुमन्त्रण करता है । (कौ० सूत्र)

६ योक्त्र से पत्नी के बाँधने पर आशासाना सौमनसम्० मन्त्र (१४-१-४२) पढ़ता है ।

७ घी के निरीक्षण पर अग्नि के लिए घृतं ते अग्ने० (७-८२-६), और वेदि में तृण बिछाते समय अध्वर्यु के लिए परि स्तृणीहि० (७-९९) पढ़ता है ।

८ परिधियाँ रक्खी जाने पर यस्यां वृक्षा: (१२-१-२७) पढ़ता है ।

९ प्रस्तर रखने पर ऋषीणां प्रस्तरोसि० मन्त्र (१६-२-६) बोलता है ।

१० अध्वर्यु-द्वारा हवियाँ लाने पर अग्नावग्नि० [४.३९.९-१०; ५-२९-१;२-३५-५] इन चार उक्त दर्श-पूर्णमास के चार पुरस्ताद्धोमों की, और आभिचारिक संस्थित होम के अग्ने यत्ते तप:० [२०.१९-२३] पुरस्ताद्धोम के तथा निरमुं नुद० [६.७५-७७] तीन संस्थित-होम के मन्त्रों से आहुति देता है ।

११-१२ होता से कही जाती प्र वो वाजा: ० [ऋ० ३-२७-१] पर सामिधेनी अग्नेमन्वे० आदि [४-२३] मन्त्र बोलता है । प्रजापते० [७-८०-३] प्रजापति का आघार-मन्त्र है ।

१२ (क) अध्वर्यु द्वारा 'परिधियों और अग्नि का तीन-तीन बार सम्मार्जन करो'- यह प्रैष देने पर अग्नीत् स्फ्य और आहवनीय के मध्य सम्मार्जन करके मध्यम-दक्षिण-उत्तर परिधियों का 'अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि०' (मा० २.७) से संमार्जन करता है ।

१३ संमार्जन से पश्चिम को आग को 'वाजं त्वाग्ने जेष्यन्त सरिष्यन्तं संमार्ज्मि वाजं जय' कहकर तीन बार जगाता है ।

१४ इन्द्रसम्० (६-५-२) से ऐन्द्र- आघार ।

१५ अध्वर्यु द्वारा प्रवर बताने पर यजमान से देवा: पितर:० [६.१२३.-२५] तीन मन्त्र बुलवाये ।

१६ ग्रीष्मो हेमन्त:० [६-५३-२] पढ़कर प्रयाजा की आहुति दे ।

१७ अहं जजान० (६-६१-२) पढ़कर दो आज्य-भाग आहुतियाँ दे ।

—०—

## अध्याय १ की कण्डिका ३ [२२ सूत्र]

१–२ 'येनेन्द्राय० १–९–१' से आग्नेय, 'मा वनि मा वाचम्० ५.७.६' से ऐन्द्राग्न पुरोडाश चढ़ाता है।

३ सान्नाय्य की ऐन्द्र वा माहेन्द्र आहुति इन्द्रमम् ० ६–५–२ से, त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रः से देता है।

४ (क) पौर्णमासी में आग्नेय और अग्नी–षोमीय पुरोडाश–आहुतियों के मध्य में अग्निषोमीय उपांशुयाज होम असमै क्षत्रम्० ६–५४–२ से करता है।

(ख) यह अमावास्या में विधान न होने से नहीं होता। पौर्ण० में १४, अमा० में १३ आहुति हैं।

५ स्विष्टकृत् आहुति आ देवानाम्० १६–५०–३ से।

६ इसके बाद अनुयाजों के प्रसव तक मौन रहता है।

७ प्राशित्र जौ–मात्र नीचे वा ऊपर से अभिघारित को अध्व० आगे से लेता है।

८ उसे सूर्यस्य त्वा चक्षुषा प्रतीक्षे (गोपथ २–१–२, कौ० ६१–२) पढ़कर देखता है।

९ उसे देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यां प्रसूत प्रशिशा प्रतिगृह्णामि (म० २–११, कौशिक २–२) से लेता है।

१० घास हटाकर प्राशित्र–दंड को पूर्वमुख कर पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामि से भू पर रखता है।

११– अग्नेष्ट्वास्येन० इस ऋचा और आत्माश्यात्मनात्मान मे मा हिंसीः स्वाहा इम यजु से अनामिका–अङ्गुष्ठ से दाँत न छुआते हुए खाता है।

बारह– खाये प्राशित्र का मन्त्र– योऽग्निर्नृमणा नाम ब्राह्मणेषु प्रविष्टः तस्मिन् एतत्सुहुतमस्तु प्राशित्रम तन्मा मा हिंसीत्परमे व्योमन् ॥ (कौ० ६५–१५)

तेरह–चौदह– मातली से जल से मार्जन करके निम्न मन्त्रों से प्राणों का स्पर्श करता है— वाङ् म आसन् नसोः प्राणः चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रकर्णयोः बाह्वोर्बलम् ऊर्वोरोजः जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वाङ्गानि सन्तु। तनूस् तन्वा मे सह। (६६–७०–१–३)

पन्दरह– होता से बुलायी इडा पर इडैवास्मान्० [७–२७–१] बोलता है।

सोलह– आग्नीध्र पृथिव्याः त्वा दात्रा प्राश्नाम्यन्तरिक्षस्य त्वा दिवस्त्वा कहकर खाता है।

सत्रह– उप त्वा देव:[७–११०–३] से इडा–भाग लेकर इन्द्र गीर्भिः [का श्रौ १४.१९–२०] पढ़कर ब्रह्मा–आग्नीध्र–यजमान उसे खाते हैं।

अठारह– अपो दिव्याः (७–८९) के ३ मन्त्र से पवित्रा वाले होत्रा–चमस से मार्जन करते हैं।

उन्नीस– यजमान अन्वाहार्य को अन्तर्वेदि में यह (गोपथ–वचन २–१–७) पढ़कर रखता है। प्रजापतेर्भागोस्यूर्जस्वान पयस्वानक्षितोऽसि अक्षित्यै त्वा मे द्वेष्ठाः अमुत्रामुष्मिल्लोके इह च– प्राणापानौ मे पाहि समानव्यानौ मे पाहि उदानरूपे मे पाहि ऊर्गास्यूर्जं मे धेहि कुर्वतो मे मा क्षेष्ठाः ददतो मे मोपदसः प्रजापतिरहं त्वया समक्षं ऋध्यासम्। यह पढ़कर

२० ऋत्विजों के लिए दक्षिणा देता है। [मा श्रौ १–४–२–बारह, का श्रौ ३–४–२७; –२८]

२१ दक्षिणा लेकर ये मन्त्र पढ़ते हैं— कइदम्, कस्मा अदात ३–२९–७,८ कामस्तदग्रे १९–५२; यदन्नम् ६–७१, पुनर्मैत्विन्द्रियम० ७–६७–१।

२२ अध्वर्यु समिधा रखकर प्रैष देता– अग्निं अग्नीत समृड्ढि। (गो० ब्रा० २–चौदह, वैतान २–तेरह; का श्रौ ३–५–१–४, आप श्रौ ३–४–५–७) (शेष पृष्ठ ५)

कण्डिका ४ (२२ सूत्र)

१ एधोऽसि (७.८६.४) से अनुयाज-समिधा रखकर अग्ने वाजजित्० से परिधि-सम्मार्जन।
२ और पूर्व की आग का वाजं त्वा० [गोपथ २.१.४] पढ़ कर संमार्जन।
३ अनुयाज होम मनोज्योति० काश्री ३.५.५ से करता है।
४ अनुवषटकार होम ये देवा दिविष्ठ एक-तीस-तीन से करता है।
५-६ तुदस्व काम० ६.२.४से दोनों स्रुच विप्रयुक्त कर संवर्हिरक्तं ७.६८से सप्रस्तर आगमें फेंकताहै।
७ संस्राव होम सस्रावं भागाः (कौ सू ६-९) से करता है।
८ पत्नी-संयाज होम न प्रस्वतापः ७-९८-२; संवर्चसा० ६-५३-, देवाना०, सुगार्हपत्य० से।
९ दक्षिणाग्नि-होम-मन्त्र पढ़ता है। तीसरा होम उलूखले-मुसले० १०६.२६ से करे।
१० आग्नीध संमार्ग को यो अग्नौ० ७.८७ पढ़कर आहवनीय में फेंकता है।

ग्यारह-बारह—पत्नी-योक्त्र के अलग करने पर तीन मन्त्र पढता है— वि ते मुञ्चामि,० अहं विष्यामि०, प्र त्वा मुञ्चामि०। वेदः स्वस्ति० पढ़कर वेद (कुश) छोड़ता है।
तेरह- समिष्ट-यजुः के पश्चात् यानावह:० आदि ७-९७ से संस्थित-होम करता है।
चौदह- वेदि में प्रणीता छोड़ते हुए सस्रुषी० ६-२३ पढ़ता है।
पन्द्रह- येषा प्रयाजाः० १-वीस-४ से यजमान को आशीर्वाद देता है।
सोलह- यदन्नम्० ६-७१ बोलकर देव सवितरेतत्त० आदि गोपथ २-१-४ कहकर स्वभाग खाता है।
सत्रह- यजमान अध्वर्यु द्वारा लिये हुए जल-पात्र के जल से संवर्चसा पढ़कर मुख धोता है।
अठारह- गार्हपत्य-दक्षिणाग्नि के बीच में यजमान तीन विष्णु-क्रम आहवनीय दक्षिण कर पढ़ता है।
उन्नीस- यजमान अग्ने गृहपते० से गार्हपत्य का उपस्थान करता है। (कौ ७०.६)
२० यस्योरुषु[७.२६]पढ़कर आहवनीय का, प्राणापानौ-ओजोसि० २०-१६से मन्त्रोक्त कर्म करता है।

इक्कीस-बाइस अयं नो अग्निः आदि कौ सू ८६ के दो मन्त्र पढ़कर; सं यज्ञपतिराशिषा० पढ़कर यजमान अपना भाग खाता तथा व्रतानि व्रतपतये० से बिसर्जनीय समिधा की आहुति दे।
२३ इन यजमान पदार्थों के बिना सिद्धि नहीं; यह प्रवर्ग्यो०-प्रवर्ग्या० आदि दो श्लोक बताते हैं।
२४ दश-पौर्णमास तीस वर्ष और दाक्षायण यज्ञ पन्दरह वर्ष तक चलता है।
२५ दर्श-पौर्णमास अमावस-पूर्णिमा को और अगले दिन भी होता है।
छब्बीस-सत्ताइस क- ये दाक्षायण और साकंप्रस्थाय्य आदि भी एक संवत्सर चलता है।
सत्ताइसख - इन दोनों से अन्य इष्टियाँ व्याख्यात हुयीं, व्याख्यात हुयीं।

९ ह कंडिका और अध्याय १, ८६ सूत्रों में दर्श-पौर्णमास-पद्धति समाप्त हुई।

पं० २० वर्ष १७ अंक ७ नभः (आषाढ़) **वेदज्योति** जुलाई १९९३ न० ६६२१।६२, डाक

श्रीमन्! नमस्ते, आप का वर्ष २-७-९३ को पूर्ण हो चुका, कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजिये।



नया प्रकाशन—
अथर्ववेद सौ)
संस्कृत-प्रबोध १०)
सामवंश ब्राह्मण, देवताध्याय संहितोपनिषद्, प्रत्येक १०)
शतपथ भाग ३ २०)
वेदार्थपारिजात-खण्डन २०)
अष्टाध्यायी २०)
सम्पादक वीरेन्द्र सरस्वती

## समाचार

श्री राजेन्द्रकुमार मन्त्री आर्य समाज लन्दन लिखते हैं कि वहाँ १८-४-९३ को आर्य समाज-स्थापना-दिवस मनाया गया। ९-५-९२ को चुनाव में श्री सुरेन्द्रनाथ भारद्वाज प्रधान चुने गये।

तृतीय आर्य महासम्मेलन शिकागो (अमेरिका) में १०-११ जुलाई १९९३ को होगा।
—संयोजक, १९०६ स्टाडार्ड एवेन्यू, व्हीटन, इलिनोइस, अमेरिका यू० ऐस० ए०

हर्ष है कि आर्यसमाज [illegible] का वेद-वेदाङ्ग-पुरस्कार २१०००) स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती और वेदोपदेशक-पुरस्कार ११०००) श्री नरदेव वेदालंकार (डरबन) को ४ जुलाई को दिया।

अल्मोड़ा में आर्य-लेखक-परिषद् का अधिवेशन २५-२७ जून, १९९३ को हुआ।

वाशिंगटन में अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दू-सम्मेलन ८ अगस्त १९९३ को होगा।

सा०आ० दिल्ली की सत्यार्थप्रकाश पत्राचार-प्रतियोगिता में २०) शुल्क, आयु १८-४० वर्ष, अण्डर-ग्रेजुएट, अन्तिम ता० २१-७-९३, पुरस्कार प्रथम ११०००), द्वितीय ८०००), तृतीय ५०००)।

मुद्रक — डा० आनन्दकुमार, आदर्श प्रेस, लखनऊ ६ सेवा में संख्या

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद खण्ड २

वर्ष १७ अंक ८

श्रावण २०५० अगस्त १९९३

अथर्व वेद सामवेद

विश्व वेदपरिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १ ९६ ०८ ५३ ०९४, दयानन्दाब्द १६९

शुल्क वार्षिक ४०), आजीवन ४००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर, एक अंक का ४)

सम्पादक- वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम ए. काव्यतीर्थ, अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्

सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ० प्र० २२६००६; दूरभाष ७३५०१ । सहायक-विमला शास्त्री

सहायक सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक श्री ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व वेदपरिषद्, लखनऊ ६

विषय-सूची—





लेखक-परिचय पृ.३ पर

श्री रत्न लाल पालड़िया ।

## वेद-श्रावणी-गीतिका

वेद ही जग में हमारा ज्योति जीवन सार है ।
वेद ही सर्वस्व प्यारा पूज्य प्राणाधार है ॥
श्रावणी का श्रेष्ठ उत्सव पुण्य पावन पर्व है ।
वेद-व्रत स्वाध्याय वैभव आज से सुख सर्व है ॥
वेद का पाठन-पठन हो, वेद-वाद-विवाद हो ।
वेद-हित जीवन-मरण हो, वेद-हित आह्लाद हो ॥
आर्य जन का सर्वदा व्रत विश्व-वेद-प्रचार है ॥ वेद०
विश्व भर को आर्य करना वेद का सन्देश है ।
वेद ही स्वामी सखा सब, वेद ही परिवार है ॥ वेद०

—०—

# वैदिक दैनन्दिनी प्रथम भाद्रपद २०५०विक्रम

तिथि कृ १ २ ३ ४ ५ ६ ६ ७ ८ ६ १० ११ १२ १३ ३० शु १ २ ३ ४ ५ ६ ८ ६ १० ११ १२ १३ १४ १४ १५
न. श्र घ श पूभा उभा रे अ भ कृ रो मृ आ पुन पु आ म पू फा उफा ह चि स्वा विश्र ज्ये मू पूषा उषा श्र ध श
सौ वार म बु गु शु श [illegible] गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो मं बु गु शु श र सो म बु
ता. अ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १६ २० २ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २६ ३० ३१ [illegible]

## ऋ० भाष्य भू० मन्त्र-व्याख्या

क्रमाक २.१ ऋषि अथर्वा, देवता आत्मा छन्द अनुष्टुप्, स्वर, गान्धार, विनियोग प्रार्थना

**यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधि तिष्ठति।**
**स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ [अथर्ववेद १०.८.१]**

जो परमेश्वर भूत-भविष्य-वर्तमान कालों और सब जगत् का अधिष्ठाता है, जिसका केवल निर्विकार सुख स्वरूप है और दुख लेशमात्र भी नहीं, जो आनन्द घन ब्रह्म है उस ज्येष्ठ सर्वोत्तम महान् ब्रह्म के लिए हमारा अत्यन्त नमस्कार हो ।

## पतञ्जलि का योग दर्शन शास्त्र (गतांक से आगे)

प्रश्न– परमात्मा निराकार है वह ध्यान में नहीं आ सकता, अतः अवश्य मूर्ति होनी चाहिए।

उत्तर– जब वह निराकार-सर्वव्यापक है तो उसकी मूर्ति ही नहीं बन सकती ... जो तुम कहते हो कि मूर्ति के देखने से परमात्मा का स्मरण होता है यह तुम्हारा कथन सर्वथा मिथ्या है । जब वह सामने न होगी तो परमात्मा के स्मरण न होने से मनुष्य एकान्त पाकर चोरी-जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकता है क्यों कि वह जानता है कि इस समय मुझे कोई नहीं देखता अतः वह अनर्थ किये बिना नहीं चूकता । ...... जो पाषाण आदि मूर्तियों को न मानकर सर्वदा सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता-मानता है वह कुकर्म करना तो कहाँ रहा, मन में भी कुचेष्टा नहीं कर सकता । [स० प्र० समुल्लास ११]

उदयपुर के महाराणा ने स्वामी दयानन्द से प्रश्न किया कि जब किसी मूर्तिमान् वस्तु को, चाहे वह कैसी ही हो; आप नहीं मानते तो ध्यान किस का करें? स्वामी जी ने उत्तर दिया कि कोई चीज ...नकर नहीं करना चाहिए । ईश्वर सर्वशक्तिमान्; सृष्टिकर्ता, सृष्टि का एक क्रम से चलाने वाला ...न्ता-पालनकर्ता और ऐसे ही अनेक ब्रह्माण्डों का स्वामी-नियन्ता है ऐसी ऐसी उसकी महिमा ...मरण करके अपने चित्त में उसकी महत्ता का ध्यान करना चाहिए अर्थात् इसी प्रकार समस्त ...णों से युक्त परमात्मा को स्मरण करके उसका ध्यान करना और-उसकी अपार महिमा का ... करना यह ध्यान है । [प० लेखराम कृत जीवनी पृष्ठ ५५६]

# पाणिनि-कृत धातु-पाठ भू-एध के रूप

## लेखक-परिचय-विवरण


१ नाम- रत्न लाल पालड़िया ।
शिक्षा- एम० ए० (संस्कृत), एल० एल० बी० ।
३ जन्म- १२-६-१९१६, आयु ७४ वर्ष ।
४ जन्म-स्थान- श्रीनगर जिला अजमेर (राज०) ।
५ पूर्व पद- प्रवर अधीक्षक डाक । एडवोकेट हाई कोर्ट
६ पता- धमतरु १८६/३४ पाल वीछला अजमेर(राज) ।
७ अभिरुचि- वेद-दर्शन- व्याकरण-ब्राह्मणग्रन्थ आदि और महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों का अनुशीलन, व्याख्यान; लेख (प्रकाशित-अप्रकाशित) ।
यथावसर प्रकाशन-इच्छा है ।


१. भू धातु सत्ता (होना, उत्पन्न होना) उदात्त उदात्तेत्, सेट्, परस्मैपद शप् (अ) विकरण

| लकार पुरुष | प्रथम | | | मध्यम | | | उत्तम | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| वचन | एक | द्वि | बहु | एक | द्वि | बहु | एक | द्वि | बहु |
| प्रत्यय | तिप् | तस् | झि(अन्ति) | सिप् | थस् | थ | मिप् | वस् | मस् |
| लट् | भवति | भवतः | भवन्ति | भवसि | भवथः | भवथ | भवामि | भवावः | भवामः |
| लिट् | बभूव | बभूवतुः | बभूवुः | बभूविथ | बभूवथुः | बभूव | बभूव | बभूविव | बभूविम |
| लुट् | भविता | भवितारौ | भवितारः | भवितासि | भवितास्थः | भवितास्थ | भवितास्मि | भवितास्वः | भवितास्मः |
| लृट् | भविष्यति | भविष्यतः | भविष्यन्ति | भविष्यसि | भविष्यथः | भविष्यथ | भविष्यामि | भविष्यावः | भविष्यामः |

लेट् भवति आदि (लट्-समान) । भवि में ष, पा को जोड़कर भविषति, भाविषाति आदि । इ हटाकर, तु का दु करके भवात्, भवात्, भवाद्, भवाद्, भविषत्-द् भविषात-द् आदि ।
एवं प्र०पु० एक० में १८, द्वि०में ६, बहु० में १२ म०पु० में १२-६-६ उ०पु० में १२-१२ रूप हुए ।

| लकार | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| लोट् | भवतु-भवतात् | भवताम् | भवन्तु | भव भवतात् | भवतम् | भवत | भवानि | भवाव | भवाम |
| लङ् | अभवत् | अभवताम् | अभवन् | अभवः | अभवतम् | अभवत | अभवम् | अभवाव | अभवाम |
| विधि लिङ् | भवेत् | भवेताम् | भवेयुः | भवेः | भवेतम् | भवेत | भवेयम् | भवेव | भवेम |
| आशीर्लिङ् | भूयात् | भूयास्ताम् | भूयासुः | भूयाः | भूयास्तम् | भूयास्त | भूयासम् | भूयास्व | भूयास्म |
| लुङ् | अभूत् | अभूताम् | अभूवन् | अभूः | अभूतम् | अभूत | अभूवम् | अभूव | अभूम |
| लृङ् | अभविष्यत् | अभविष्यताम् | अभविष्यन् | अभविष्यः | अभविष्यतम् | अभविष्यत | अभविष्यम् | अभविष्याव | अभविष्याम |

(रूप-सिद्धि के लिए आख्यातिक पढ़िए ।)

२. आत्मनेपदी एध (बढ़ना) उदात्त-अनुदात्तेत्, सेट् (इट्-सहित)

| लकार | प्रथम पुरुष | | | मध्यम पुरुष | | | उत्तम पुरुष | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | एक० | द्वि० | बहु० | एक० | द्वि० | बहु० | एक० | द्वि० | बहु० |
| प्रत्यय- | त | आताम् | झ(अन्त) | थास् | आथाम् | ध्वम् | इट् | वहिङ् | महिङ् |
| लट् | एधते | एधेते | एधन्ते | एधसे | एधेथे | एधध्वे | एधे | एधावहे | एधामहे |

लिट् एधाम् में कृ भू अस् के लिट् के रूप जोड़कर बनते हैं बभूव आदि दिये जा चुके हैं ।

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| चक्रे | चक्राते | चक्रिरे | चकृषे | चक्राथे | चकृढ्वे | चक्रे | चकृवहे | चकृमहे |
| आस | आसतुः | आसुः | आसिथ | आसथुः | आस | आस | आसिव | आसिम |

| लकार | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| लुट् | एधिता | एधितारौ | एधितारः | एधितासे | एधितासाथे | एधिताध्वे | एधिताहे | एधितास्वहे | एधितास्महे |

४ लृट् लुट् के रूपों में स्य के साथ 'इष्य' लगाने से लृट् के रूप बन जाएँगे।

५ लेट् ,, एध, एधिष, के साथ ष, त्तं, तै लगकर ८-२-८, ८-२-८, ४-८-८ रूप बनेंगे।

६ लोट् एधताम् एधेताम् एधन्ताम् एधस्व एधेथाम् एधध्वम् एधै एधावहै एधामहै

७ लङ् ऐधत ऐधेताम् ऐधन्त ऐधथाः ऐधेथाम् ऐधध्वम् ऐधे ऐधावहै ऐधामहै

८ विधिलिङ् एधेत एधेयाताम् एधेरन् एधेथाः एधेयाथाम् एधेध्वम् एधेय एधेवहि एधेमहि

९ आशीर्लिङ् एधिषीष्ट एधिषीयास्ताम् एधिषीरन् एधिषीष्ठाः एधिषीयास्थां एधिषीध्वं एधिषीय एधि-षीवहि एधिषीमहि

१० लुङ् ऐधिष्ट ऐधिषाताम् ऐधिषत ऐधिष्ठाः ऐधिषाथां ऐधिढ्वं ऐधिषि ऐधिष्वहि ऐधिष्महि

११ लृङ् ऐधिष्यत ऐधिष्येताम् ऐधिष्यन्त ऐधिष्यथाः ऐधिष्येथां ऐधिष्यध्वम् एधिष्ये ऐधिष्या-वहि एधिष्यामहि

—०—

४ मन्त्रों में वह यह बृहती ही है। जो दो यजु ३२ अक्षर के हैं वे दो ३२ के ही हैं परन्तु अन्तिम दो ३४ के हैं, अग्नि ही ३५ वाँ है। एक-दो अक्षर की कमी से छन्द नहीं बदलता है। यहाँ दो एक के कम होने पर भी यह ३४ वाली बृहती ही है। उसको वह संचित हो जाता है। २२

यह • अध्याय १ (क्रमागत ४४) समाप्त।

# अध्याय २(४५) ब्राह्मण १

नैर्ऋती ईंटों का लाना आदि।

अब नैर्ऋतियों को लाते हैं। देव गार्हपत्य चयन कर इसी लोक का संस्कार कर आगे बढ़े कि तम ही दिखायी दिया। १

वे बोले- इस पापी तम को मार डालें। चेतः चयन की इच्छा करो जिस से तम मार सकें। २

चेतते हुए उन्होंने इनसे उस पापी को मारा। निर्ऋति (पापी) के मारने से यह नाम पड़ा। ३

यह भी देव-समान करता है। ४

अथवा जहाँ देवों ने प्रजापति का संस्कार रचाया, उखा-योनि में रेतः बने हुए को सींचा और इस लोक मे पैदा किया उसके जो पाप, श्लेष्म-उल्व-जरायु को इनसे हटाया अतः यह नाम पड़ा। ५

वैसे ही यह यजमान अपने को सींच कर करता है। ६

ये पैर-बराबर-अलक्षणा-भूनी-पकी-काली होती हैं अतः भूनी-ममात-अलक्षण-काली तम-नैर्ऋति पैर से कुचलता है। ७

इनके साथ इसी नाम की दिशा को जाते हैं; जहाँ गड्ढे-दलदल हों, औषधियाँ-अन्न न पैदा हों, वहीं पर रखते हैं। ८

असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्वेहि तस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ [१२.६२]
नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम्।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयेमम् ॥ [१२-६३]
यस्यास्ते घोर आसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥[१२.६४]
यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः। नमो भूत्यै येदं चकार ॥[१२.६५]
निवेशनः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाऽभि चष्टे शचीभिः।
देव इव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे पथीनाम् ॥ [य १२.६६]

जो सोम नहीं लेता ऐसे अयज्ञ-कर्ता के पास जा; वह स्तेन-तस्कर की दशा को पाये। हे देवी निर्ऋति! तू अन्य को चाह। तेरे लिए नमः हो। ९

हे तीक्ष्ण तेज वाली! तुझे नमः हो। तू सुनहरी बन्धन से बाँधती है, यम-यमी (आग-पृथ्वी) के साथ मिलकर इस यजमान को अच्छे स्वर्ग लोक में चढ़ा। १०

जिस तेरे घोर मुख में मैं इन बन्धनों के छुड़ाने के अर्थ होम करता हूं। जिस तुझे मनुष्य भूमि कहकर हृष्ट होता है ऐसी तुझ को सब प्रकार से जानता हूँ। ११

उसे छूता नहीं कि पाप न लग जाये, बिठाता नहीं क्योंकि यह प्रतिष्ठा करना पाप न लगादे, सुददोहा (प्राण) के साथ नहीं मिलाता कि पापी को प्राण के साथ न मिला दूँ। १२

कुछ इन्हें दूर अर्वाची रखते हैं कि पापी को दूर ही रक्खा जाय किन्तु ऐसा न करे, इसे पराची ही रक्खो ऐसा करके ही उस पापी निर्ऋति को मार सकता है। १३

३ ईंटें रखता है, त्रिवृत् आग है; वह या उसकी मात्रा जितनी है उतनी से ही मारता है। १४

अब आसन्दी, छींका, रुक्म-पाश, २ इण्डव को उसके उत्तरार्ध में रखता है। जिसका पाश है वह उसके पाश से ही छूटता है। यजु १२-६५ का अर्थ—

जिस पाश को देवी निर्ऋति ने तेरी गरदनों में अनजाने बाँधा है, वह मैं आयु (आग) के मध्य से नहीं प्रविष्ट करता हूं। जो चुना गार्हपत्य और न चुना आहवनीय है उस को यदि युवा चुनता है, यदि वृद्ध चुनता है तो मध्य नहीं हुआ यह अन्न तू मुक्त होकर खा।

यह बात २ त्रिष्टुपों द्वारा कहा जो वज्र है, वज्र से ही पापी नि० को नष्ट करता है। १५

३ ईंटें होती हैं, उनमें आसन्दी-शिक्य-रुक्मपाश-२ इण्डव मिलाकर ८ हुए, ८ अक्षर की गायत्री, जो अग्नि है, वह या उसकी जितनी मात्रा है उतनी से ही पापी नि० को मारता है। १६

अब जल-चमस के बीच ले जाता है, जल वज्र है, वज्र से ही पापी नि० को हटाता है। मन्त्रार्थ—भूत [सम्पत्ति] के लिए नमः हो जिसने यह किया। यह कहकर बैठ जाते हैं। पहले देवों ने मति के लिए ही यह कर्म और नमः किया, भूति के लिए ही यह वह कर्म और नमः करता है। अब जल के सामने आता है और वहीं पापी नि० को मारता है। १७

लौटकर अग्नि का उपस्थान करता है। यह अयथार्थ करता है कि अग्नि-चयन आधा ही होने पर इस दिशा को आता और फिर अहिंसा के लिए वापस लौटता है। १८

अथवा ऐसा इसलिए कि वह लोक गार्हपत्य प्रतिष्ठा है। इसी के लिए अपथ सी दिशा में जाकर लौटता है। १९

यजु १२-६५ का अर्थ— यह लोक निवेशन और वसुओं का सङ्गमन है, मनः-कर्मों से सब रूप धारण करता है। देव-समान सत्य-धर्मा यह पथवालों के समर में इन्द्र-समान रहता है। २०

## ब्राह्मण २

प्रायणीयेष्टि। (वहाँ हवि का प्रचार; हल के बनाने की लकड़ी का विशेष वृक्ष)

प्रायण-इष्टि करता है, हविष्कृत् द्वारा वाणी-विसर्जन, स्तम्बयजु-हरण. पूर्व परिग्रह से लेकर लिखकर हर त्रिः कहनेपर आग्नीध् ३ बार हरण करता है। १

लौट कर प्रायणीय करके हल जोत कर देव-समान अन्न को बढ़ाता है। सीर सेर (इरा अन्न-सहित) से बना है। २

हल गूलर का बना होता है ऊर्ज ही रस है; यही रस-युक्त करता है, तिलड़ी मूंज से बँधा होता है। ३

वह अग्नि की दक्षिण ओर बैठकर उत्तर कन्धे पर रक्खे जाते हल को लक्ष्य कर बोलता है—

**सीरा: युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्। धीराः देवेषु सुम्नयौ। [१२-६७]**

धीर विद्वान् देवों में यज्ञ-विस्तार करते हुए हल जोतते, जुए तानते हैं। ४

## यजुर्वेद अध्याय २ के ऋषि-देवता-छन्दः-स्वर

ऋषि— १-१६, १८-२० परमेष्ठी प्रजापति । १७ देवल । २१-३४ वामदेव ।

देवता— १; २, ५ यज्ञ । ३-४-७-६-१४-१७, २७-३० अग्नि । ६-८-२५ विष्णु । १०-२२ इन्द्र ११ द्यावापृथिवी । १२ सविता । १३ बृहस्पति । १५ अग्नीषोमौ-इन्द्राग्नी । १६ द्यावापृथिवी-मित्रावरुण और अग्नि । १८ विश्वेदेवाः । १९ अग्नि-वायू । २० अग्नि-सरस्वती । २१, २३ प्रजापति । २४ त्वष्टा २६ ईश्वर । ३१-३३ पितरः । ३४ आपः ।

छन्द — १ पंक्ति; २ जगती, ३ आर्ची त्रिष्टुप्-पंक्ति । ४, ३३ गायत्री; ५ ब्राह्मी बृहती । ६ ब्राह्मी त्रिष्टुप् । ७ बृहती, ८, १० ब्राह्मी पंक्ति, ९, १३ जगती, ११ ब्राह्मी बृहती, १२ बृहती, १४ अनुष्टुप्, आर्ची गायत्री । १५ ब्राह्मी बृहती, अतिजगती । १६ आर्ची पंक्ति, त्रिष्टुप् । १७ जगती । १८ त्रिष्टुप्, १९, ३० पंक्ति । २०-२१ ब्राह्मी त्रिष्टुप्-बृहती, २२ २४ त्रिष्टुप्; २३ बृहती, २५ आर्ची पंक्ति जगती, २६ २८ ३४ उष्णिक्, २७ पंक्ति-गायत्री, २९ अनुष्टुप्, ३१ बृहती, ३२ ब्राह्मी बृहती, बृहती ।

स्वर— ७ छन्दों के क्रमशः ७ स्वर (देखो पृष्ठ २)

३२ कृष्णः असि आखरेष्ठः अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिः असि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिः असि स्रुग्भ्यः त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ।। १

३३ अदित्यै व्युन्दनम् असि विष्णोः स्तुपः असि ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यः भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ।। २

३४ गन्धर्वः त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्य अरिष्ट्यै यजमानस्य परिधिः असि अग्निः इड ईडितः । इन्द्रस्य बाहुः असि दक्षिणः ,,

,, मित्रावरुणौ त्वा उत्तरतः परि धत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्य अरिष्ट्यै यजमानस्य परिधिः असि अग्निः इड ईडितः ।। ३

३५ वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तम् अध्वरे ।। ४

३६ समिद् असि सूर्यस् त्वा पुरस्तात् पातु कस्याः चिद् अभि शस्त्यै । सवितुः बाहू स्थः ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यः आ त्वा वसवः रुद्राः आदित्याः सदन्तु ।। ५

३७ घृताची असि जुहूर् नाम्ना सा इदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सदः आसीद
,, उपभृत् ,,
,, ध्रुवा ,,
प्रियेण धाम्ना प्रियं सदः आसीद ध्रुवा असदन् ऋतस्य योनौ ताः विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ।। ६

३८ अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितं सम्मार्ज्मि । नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम् ॥ ७

३९ अस्कन्नम् अद्य देवेभ्यः आज्यं सं भ्रियासम् अङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वा अव क्रमिषम् वसुमतीम् अग्ने ते छायाम् उप स्थेषम् विष्णोः स्थानम् असि इतः इन्द्रः वीर्यं अकृणोद् ऊर्ध्वः अध्वर आ अस्थात् ॥ ८

४० अग्ने वेः होत्रं वेः दूत्यम् अवतां त्वां द्यावापृथिवी अव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद् देवेभ्यः इन्द्रः आज्येन हविषा भूत् स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ॥ ९

४१ यदि इदम् इन्द्रः इन्द्रियं दधातु अस्मान् रायः मघवानः सचन्ताम् । अस्माकं सन्तु आशिषः सत्याः नः सन्तु आशिषः उप हूता पृथिवी माता उप मां पृथिवी माता ह्वयतां अग्निः आग्नीध्रात् स्वाहा ॥ १०

४२ उप हूतः द्यौः पिता उप मां द्यौः पिता अग्निः आग्नीध्रात् स्वाहा । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम् । प्रति गृह्णामि अग्नेः त्वा आस्येन प्र अश्नामि ॥ ११

४३ एतं ते देवसवितः यज्ञं प्राहुः बृहस्पतये ब्रह्मणे तेन यज्ञं अव तेन यज्ञपतिं तेन मां अव ॥ १२

४४ मनः जूतिः जुषतां आज्यस्य बृहस्पतिः यज्ञम् इमं तनोतु अरिष्टं यज्ञम् सम् इमम् दधातु । विश्वे देवासः इह मादयन्ताम् ओ३म् प्रतिष्ठ ॥ १३

४५ एषा ते अग्ने समित् तया वर्धस्व च आ च प्यायस्व । वर्धिषीमहि च वयम् आ च प्यासिषीमहि । अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा ससृवांसं वाजजितं सम् मार्ज्मि ॥ १४

४६ अग्नीषोमयोः उज्जितिम् अनु उत् जेषम् वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि अग्नीषोमौ तं अप नुदताम् यः अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः वाजस्य एनं प्रसवेन अप ऊहामि । इन्द्राग्न्योः उज्जितिं० [पूर्ववत ] । इन्द्राग्नी तं० [पूर्ववत् ] ॥ १५

४७ वसुभ्यः त्वा रुद्रेभ्यः त्वा आदित्येभ्यः त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्या अवताम् । व्यन्तु वयः अक्तं रिहाणाः मरुतां पृषतीः गच्छ वशा पृश्निः भूत्वा दिवं गच्छ ततः नः वृष्टिं आ वह । चक्षुष्पा अग्ने असि चक्षुः मे पाहि ॥ १६

४८ यम् परिधिं परि अधत्थाः अग्ने देवपणिभिः गुह्यमानः । तं त एतम् अनु जोषं भरामि एष मा इत् त्वत् अप चेतयाता अग्नेः प्रियं पाथः अपि इतम् ॥ १७

४९ संस्रवभागाः स्थ इषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परि धेयाः च देवाः । इमां वाचम् अभि विश्वे गृणन्तः आसद्य अस्मिन्, बर्हिषि मादयध्वम् स्वाहा वाट् ॥ १८

५० घृताची स्थः धुर्यौ पातं सुम्ने स्थः सुम्नेमा धत्तम् ।
यज्ञ नमः च ते उप च यज्ञस्य शिवे सं तिष्ठस्व स्विष्टे मे सं तिष्ठस्व ।। १९

५१ अग्ने अदब्धायो अशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्यै अविषं नः पितुङ्कृणु । सुषदा योनौ स्वाहा वाट् अग्नये संवेश-पतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ।। २०

५२ वेदः असि येन त्वं देव वेद देवेभ्यः वेदः अभवः तेन मह्यं वेदः भूयाः ।
देवाः गातुविदः गातुं वित्वा गातुम् इत । मनसः पते इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः २१

५३ सम् बर्हिः अंक्तां हविषा घृतेन सम् आदित्यैः वसुभिः सम् मरुद्भिः ।
सम् इन्द्रः विश्वदेवेभिः अंक्तां दिव्यम् नभः गच्छतु यत् स्वाहा ।। २२

५४ कः त्वा विमुञ्चति सः त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुंचति पोषाय रक्षसां भागः असि ।। २३

५५ सम् वर्चसा पयसा सम् तनूभिः अगन्महि मनसा सम् शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रः वि दधातु रायः अनु मार्ष्टु तन्वः यद् विलिष्टम् ।। २४

५६ दिवि विष्णुः वि अक्रँस्त जागतेन छन्दसा ततः निर्भक्तः यः अस्मान् द्वेष्टि यंच वयं द्विष्मः
अन्तरिक्षे ,, त्रैष्टुभेन ;;
पृथिव्यां ,, गायत्रेण ;;
अस्मात् अन्नात् अस्यै प्रतिष्ठायै अगन्म स्वः सं ज्योतिषा अभूम ।। २५

५७ स्वयम्भूः असि श्रेष्ठः रश्मिः वर्चोदाः असि वर्चः मे देहि । सूर्यस्य आवृतं अन्वावर्ते ।।२६

५८ अग्ने गृहपते सुगृहपतिः त्वया अग्ने अहं गृहपतिना भूयासम् सुगृहपतिः त्वं मया अग्ने गृहपतिना भूयाः । अस्थूरि नौ गार्हपत्यानि सन्तु शतं हिमाः सूर्यस्य आवृतम् अनु आवर्ते ।। २७

५९ अग्ने व्रतपते व्रतम् अचारिषम् तत् मे अराधि इदम् अहं य एव अस्मि सः अस्मि ।। २८

६० अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा । अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः ।।२९

६१ ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरः निपुरः ये भरन्ति अग्निः तान् लोकात् प्र णुदाति अस्मात् ।। ३०

६२ अत्र पितरः मादयध्वं यथाभागं आवृषायध्वम् । अमीमदन्त पितरः यथाभागं आवृषायिषत ३१

६३ नमः वः पितरः रसाय नमः वः पितरः शोषाय नमः वः पितरः जीवाय नमः वः पितरः स्वधायै नमः वः पितरः घोराय नमः वः पितरः मन्यवे नमः वः पितरः पितरः नमः वः गृहान नः पितरः दत्त सतः वः पितरः देष्म एतद् वः पितरः वासः ।। ३२

६४ आधत्त पितरः गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथा इह पुरुषः असत् ।। ३३

६५ ऊर्ज वहन्तीः अमृतं घृतं पयः कीलालम् परिस्रुतम् । स्वधाः स्थ तर्पयत मे पितॄन् ।। ३४

# अध्याय २

## अध्याय १ से सङ्गति तथा अध्याय २ की विषय-सूची

ईश्वर ने अध्याय १ में मनुष्यों को शुद्ध कर्मों के आचरण [१], दोष और शत्रुओं के निवारण [२८]; यज्ञ-क्रिया-फल जानने [१०], सम्यक् पुरुषार्थ करने [६], विद्या-विस्तार करने [८], धर्म से प्रजा पालने [७], धर्मानुष्ठान में निर्भयता से रहने [२१]; सब के साथ मित्रता करने [८], वेद के पठन-पाठन से सब विद्याएँ ग्रहण करने-कराने [२७], शुद्धि-परोपकार के लिए प्रयत्न करने [३१] की आज्ञा दी है जिसे सब मनुष्य पालन करें।

अब अध्याय २ में प्राणियों के सुख के लिए उक्त अर्थों की सिद्ध्यर्थ विद्याएँ प्रकाशित हैं—

अध्याय २ की विषय-सूची— ४ पदार्थविद्यादि० ६ यज्ञ-रक्षादि-विष्णु-प्रार्थना १० इन्द्रिय-रक्षणार्थ-इन्द्र-प्रार्थना मत्या नः सन्त्वाशिष आदि० १४ यज्ञ-प्रतिष्ठादि० १६ वृष्ट्यादि-पदा० १७ परिधि-रेखागणितादि-विद्या २० अग्नीश्वर-प्रार्थनादि-पदार्थविद्या २१ वेदोऽसीत्यादीश्वरादि-पदार्थ-विद्या २७ गृहपत्यादि-विद्या ३१ पित्रादि-पदार्थविद्या ३४ स्वधा स्थ तर्पयत मे पितृनित्यादि।

३२ (यज्ञ) आकर्षक, सर्वथा सुखद, खादी वेदि में स्थित, आग के लिए सेवनीय को जल से प्रोक्षित शुद्ध करता, बर्हि (अन्तरिक्ष) के लिए प्रिय सम्पादित वेदि को, स्रुचों (चमचों आदि) के लिए सम्पादित सेवनीय बर्हि को प्रोक्षित करता (सींचता) हूं। १

३३ यज्ञ पृथिवी के लिए विविधतया सिंचक है, उसमें शिखा (उलूखल-मूसल) हैं जिनसे उस मृदु को विस्तृत करता हूँ जो देवों के लिए सुन्दर स्थिति-दायक है। भुव-पति, भुवन-पति, भूत-पति परमेश्वर और भू-अन्तरिक्ष-द्यौ-पति आग-बिजली-सूर्य के लिए आहुति-सुवचन हो। २

३४ हे यज्ञ, तुझे भू-प्राणी-धारक, विश्व बलान वाला सूर्य, उसका दाहिना बाहु हवा-बिजली और प्राण-अपान (हाइडरोजन-आक्सीजन) तुझ को उत्तर से ध्रुव धन से धारण करते हैं। तू विश्व की नीरोगिता के अर्थ यजमान की पाराध स्तुत्य-स्तुत आग्न है। ३

३५ हे कवि अग्नि (कान्त-दर्शन ईश्वर और भौतिक आग)! हम अहिंसनीय यज्ञ में बड़े कार्य-साधक, पदार्थ-प्रापक, अग्निहोत्र आदि के ज्ञापक तुझ प्रकाशमान को प्रदीप्त करें। ४

३६ [हे यज्ञ], तू वसन्त-समान संदीप्त है; सूर्य समान, पहले से किसी भी (सभी) पदार्थों की प्रकटता के लिए तेरी सवतः रक्षा करे। सविता के बल-वीर्य दो बाहें हैं जिनसे सुख-विघ्नों के अन्तरिक्ष-स्थित तुझको देवों और दिव्य गुणों के पाने के लिए ढंकता हूं। ८ वसु-११ रुद्र-१२ आदित्य और ३ प्रकार के ब्रह्मचारी विद्वान् तुझको प्राप्त करें-करायें। ५

३७ यज्ञ की घी की ३ चम्मचें जुहू-उपभृत्-ध्रुवा हैं जिनसे क्रमशः आहुति देते, जो भरकर रखते, स्थिर भरी रखते हैं। ३ क्रियाएँ हैं— दान-आदान-शिल्प-विद्या। ३ लोक हैं — द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी ये प्रिय धाम-द्वारा प्रिय-सुख-दायक यज्ञ को प्राप्त-दिलायें। हे विष्णु (ईश्वर; यज्ञ)! तू सत्य की योनि में स्थिर रहे, तू उन की, यज्ञ-यज्ञपति, मुझ यज्ञ-नेता की रक्षा कर। ६

३८ हे अग्नि! मैं वेग-युक्त, पदार्थ पहुँचाने वाले, युद्ध में जीत कराने वाले तुझे शुद्ध करता हूं। देवों को नमः, पितरों को अन्न मेरे अच्छे वश में हो। ७

३९ मैं सदा देवों के अर्थ आग से घी आदि धारण करूँ। हे यज्ञ! मैं तेरा उल्लङ्घन न करूं। हे अग्नि! तेरा धन-युक्त आश्रय लूँ, तू यज्ञ का स्थान है। पराक्रमी इन्द्र यज्ञ में ऊपर रहता है। ८

४० हे अग्नि ! तू होत्र और दूत-कर्म की रक्षा कर, द्यौ-पृथिवी तेरी रक्षा करें; तू उनकी रक्षा कर। जीवात्मा और सूर्य आज्य-हवि से देवों के लिए स्विष्ट करता है, यह सत्य-सुवचन है। ज्योति (विज्ञान) से ज्योति (ज्ञान) मिले। ९

४१ ईश्वर मुझमें बल धारण कराये, धन-धान्य हमें धनी करें, हमारी क्रियाएँ शुभ, आशीर्वाद सत्य हों: विस्तृत माता-विद्या-भूमि मिली है वह उपदेश करती रहे। अग्नि-धारक से आग मिले यह सत्य-सुवचन है। १०

४२ द्यौ-पिता को स्वीकार किया, वह मुझे स्वीकार करे, जाठर आग अग्न्याशय से अन्न पचाये, देव सविता के उत्पादित संसार में तुझ भोज्य को अश्विओं की बाहों, पूषा के हाथों (प्राण-अपान के गुणों, समान के कर्मों) से लेता हूं, आग के मुख से (पका-चबा कर) खाता हूं। ११

४३ हे देव सवितः परमेश्वर ! तेरे इन यज्ञ को ऋषि वेद-पति ब्रह्मा के लिए उपदेश किया करें। उससे यज्ञ-यज्ञपति और मेरी (परमेश्वर और वायु ऋषि के वचन-महत्त्व की) रक्षा कर। १२

४४ वेग-युक्त मन यज्ञ-सामग्री का सेवन करे, बृहस्पति परमात्मा सृष्टि-यज्ञ को फैलाए, नीरोग हिंसा-रहित कर धारण करे, सब देव यहाँ हृष्ट हों, ओ३म् संसार वा हृदय में प्रतिष्ठित हो। १३

४५ हे अग्नि ! य तेरी प्रकाशक वेद-विद्या-समिधा है उससे बढ़ और बढ़ा, हम भी बढ़ें-बढ़ायें। हे वेग-जयी अग्नि ! ज्ञानी-गुणी-वेगजयी-वेगयुक्त तुझसे मैं अपने को सम्यक शुद्ध करूँ। १४

४६ मैं अग्नि-चन्द्र और वायु-बिजली की उत्तम विजय का क्रमशः जीतूँ, युद्ध-सेना को उत्पत्ति अपने को प्रोन्नत करूँ। वे उस शत्रु-रोग को दूर हटायें जो एक अन्यायी हम अनेक न्याय-पक्षियों से द्वेष करता और जिससे हम द्वेष करते हैं; उसे सेना-औषधि के बल से दूर करूँ। १५

४७ हे यज्ञ ! वसु-रुद्र-आदित्यों से तुझ को जानें, मित्र-वरुण (प्राणोदान) तुझको वर्षा से बचाएँ, पक्षी-समान छन्द घर-समान यज्ञ को पाकर हम अनेक अनुष्ठान करें। कामना की गयी आहुति ! तू वायु की सिञ्चक नाड़ी-नदी बन। अन्तरिक्षस्थ होकर द्यौ को जा; वहा से हमारी वर्षा को ला। हे अग्नि ! तू चक्षु-रक्षक है मेरे चक्षु और विज्ञान की रक्षा कर। १६

४८ हे अग्नि ! विद्वानों और सूर्यादि-के व्यवहारों से वरण किया जाता तू जिस परिधि (प्रभुता) को धारण करता है तत्पश्चात् प्रीतिपूर्वक ही मैं धारण करूँ; यह तुझ से दूर न ले जाये। अग्नि का प्यारा अन्न-भोग मैंने पा लिया। १७

४९ हे देवो ! तुम संस्रव (घी आदि) के भागी हो, ज्ञान से बढ़े, आसनस्थ, सब ओर से धारण करने योग्य हो। तुम सभी उस वाणी को स्वीकार करते हुए इस आसन पर बैठकर हृष्ट होओ। यह क्रिया के साथ सत्य सुवचन है। १८

५० हे जल-वर्षक अग्नि-वायु ! यज्ञ के धुरे तुम दोनों रक्षा करो, तुम सुखद हो मुझे सुख में रक्खो। हे पूज्य परमेश्वर और यज्ञ ! तुझको नम्रता के साथ ये दोनों कल्याण-कारी हैं वैसे ही ये और तू मेरे कल्याण के लिए स्थिर हों। १९

५१ हे अहिंसित आयु-दाता, व्यापकतम अग्नि ! मेरी अति दुःख-बन्धन-दुष्कर्म-दुष्ट भोजन से रक्षा कर, हमारा अन्न पवित्र कर, सुखद योनि-जन्म में प्रशंसनीय सत्य कर, हम यशो-भागिनी वेदवाणी को अच्छा कहें। भूमि-पति अग्नि के लिए सत्य सुवचन आहुति हो। २०

५२ हे देव ! क्योंकि तू ज्ञाता है, सब जानता है, देवों को ज्ञान-दाता है अतः मुझको ज्ञान दो, हे स्तुत्य देवो ! ज्ञान पाकर ; यज्ञ को पाओ हे मनस्पति ! तू यह यज्ञ धारण कर, स्वाहा। २१

५३ हे मनुष्य ! तू हवि के साथ घी मिला कर आदित्य-वसु-मरुतों के साथ अन्तरिक्ष को संयुक्त कर। सूर्य संयुक्त हवि को प्रकट संयुक्त करे जो सब किरणों से द्यौ का जल मिलाता है। २१

(हे यज्ञ !) कौन सुखकारी यजमान तुझको छोड़ता है? (कोई नहीं । जो छोड़े) उसे वह पूज्य ईश्वर छोड़ता है। किस के लिए तुझ यज्ञ-सामग्री को डालता है? इस पोषण के लिए आग में डालता है। (नहीं तो तू] राक्षसों का भाग है। २३

५५ हम जिस वर्च-दूध-ज्ञान-३ शरीरों-कल्याणी मन से जिस धनैश्वय को पाते हैं उसे सुदानी ईश्वर विशेष धारण कराये; शरीर को परिपूर्णता की शुद्ध रखे। २४

५६ विष्णु (यज्ञ) जगती छन्द (जगत्सुखकारी आह्लाद) से किया गया द्यौ में, त्रिष्टुप् छन्द (३ प्रकार की सुखदा स्वच्छन्दता)से सम्पादित अन्तरिक्ष में, गायत्री छन्द(भू-रक्षक आनन्द) से किय वहाँ से हट कर पृथिवी पर विक्रम दिखाता है;[वहाँ से फिर अन्तरिक्ष-द्यौ-पृथिवी पर जाता रहता सर्वत्र द्वेषियों-रोगों को नष्ट करता है। इस शोधित अन्न और प्रतिष्ठा से हम सुख पायें तथा ज्योति से संयुक्त हों। २५

५७ हे परमेश्वर और विद्वान् ! तू स्वयं होने वाला, श्रेष्ठ प्रकाशक, वर्चः (विद्या-दीप्ति)-दाता है, मुझको वर्चः दे। मैं सूर्य (तेरा और विद्वान्) के उपदेश-पालन में लगा रहूं। २६

५८ हे अग्नि ! मैं तुझ गृह-पति से और तू मुझ गृह-पति से सुगृहपति हो, हम दोनों स्त्री-पुरुषों के गृह-कार्य आलस्य-रहित अनिन्दित हों, मैं सौ वर्ष परमेश्वर-विद्वान् के उपदेश पर चलूं भू की सूर्य के चारों ओर सौ परिक्रमाओं तक वर्तमान रहूं। २७

५९ हे व्रतपति अग्नि ! मैं व्रत कर समर्थ हुआ यह मैं जो ही हूं वह हूं(जैसा कर्ता वैसा भोक्ता हूं)। २८

६० कवि-हितकारी-कार्य-प्रापक अग्नि और ऋतु वाले संसार के लिए आहुति-सत्यक्रिया हो। वेदि (पृथिवी) पर स्थित असुर-राक्षस (रोग-दुष्ट) नष्ट हों। २९

६१ जो सच्चे रूप छोड़ते, अनेक रूप धारण करते हुए अमर बनकर पृथिवी के साथ अन्न को खाते-चलते हैं और जो अधर्म पूरा करने वाले निकृष्ट अन्याय से धन भरते हैं उन्हें परमेश्वर-अग्रणी नेता-शासक, यज्ञ की आग इस लोक, हमारी दृष्टि से दूर करे। ३०

६२ हे पितरो(माता-पिता-विद्वानो) ! यहाँ हृष्ट होओ-करो; प्रत्येक भाग में हृष्ट होओ-करो। ३१

६३ हे पितरो ! तुम्हें रस (विद्या-आनन्द)-शोष (दुःख-दुष्ट-निवारण)-जीवन-अन्न-स्वराज्य-घोर-कुकर्म-निवारण-मन्यु के लिए नमः हो। हे पितरो ! तुम्हारे लिए अन्न-सत्कार हो, हमें घर दो, हम आपको विद्यमान-उत्तम पदार्थ दें; हे पितरो ! यह आपके लिए निवास-वस्त्र है। ३२

वेद में जीवित पितरों के ७ कार्य बताये, महर्षि ने नमः के ७ अर्थ किये — नम्रता-आर्द्रीभाव(हृदय का [illegible]। पौराणिक मृतक-श्राद्ध अवैदिक-असत्य-अमान्य अतः त्याज्य है। जीवित-श्राद्ध सबको बताकर करना चाहिए।

६४ हे पितरो(माताओ), गर्भ धारण करो, हे आचार्यो, कमल-माला-धारी, पुष्टिकर-बल वाले कुमार को अपने गर्भ (नियन्त्रण) में रक्खो जिससे वह यहाँ पुरुष (पुरुषार्थी) हो सके। ३३

६५ हे पुत्र आदि जनो, मेरे पितरों को रस बनाने वाला जल, अमृत रोगहारी मिष्ट आदि, घी-दूध-अच्छा पकाया अन्न-शाक आदि, ताजे पके रसीले फल आदि से तृप्त करो, आप स्वयं को धारण करने वाले हो और बनो। ३४

यह अध्याय २ समाप्त हुआ।

# यजुर्वेद अध्याय ३

## ऋषि-देवता-छन्दः-स्वर-विषय-सङ्गति

ऋषि- विरूप आङ्गिरस १, १२ । वसुश्रुत २ । भरद्वाज ३, १३ । प्रजापति ४-५ ९-१० ४४-४५ । सर्पराज्ञी कद्रू ६-८ । गोतम ११ ५१-५२ । देववात-भरतौ १४ । वामदेव १५ ३६-३७ । अवत्सार १६-१९ । याज्ञवल्क्य २०-२१ । वैश्वामित्रो मधुच्छन्दाः २२-२४, ३४ । सुबन्धु २२-२६ । श्रुतबन्धु २७ विप्रबन्धु २८ । मेधातिथि २९ । सत्यधृतिर्वारुणिः ३०-३३ । विश्वामित्र ३५ । आसुरि ३८-४१ । शंयु ४२-४ । आगस्त्य ४ -४७। और्णवाभ ४८-५० । बन्धु ५३-५६ ।वसिष्ठ ६०-६१ नारायण ६२-६३ ।

देवता— अग्नि १-४ ६-८ ११-१२ १४ १६ २२ २७ ३६ ३८ ४० ४७ । अग्नि-वायु-सूर्य ५ । अग्नि-सूर्य ९-१० । इन्द्राग्नी१३ । आपः २० । विश्वे देवाः २१ ।बृहस्पति२८-२९ । ब्रह्मणस्पति ३० । आदित्य ३१-३३ । इन्द्र ३४ ५०-५२ । सविता ३५ । प्रजापति ८७ । वास्तुपति अग्नि ४१-४३ । मरुत ४४-४५ । इन्द्र-मारुत ४६ । यज्ञ४८-४९ । म. ३-५५ । सोम ५६ । रुद्र ५७-६३ ।

छन्द — गायत्री १-४ ६-८ १०-१२ १६ २३-२४ २७-३० ३१ ३३ ३५-३६ ४४ ५४- ६ । दैवी बृहती ५ । पंक्ति याजुषी पंक्ति ९ ३१। त्रिष्टुप् १३ १५ १७ । अनुष्टुप् १४ ३८ ४० ४२ ४७ ४९-५० ब्राह्मी पंक्ति १८ । जगती १९ ३ ६३ । बृहती २० २५-२६ ३४ ३९ । उष्णिक २१ ६२ । ५७ । आसुरी गायत्री २२ । ब्राह्मी अनुष्टुप३३ । पंक्ति ५१-५२ ५८ ६१ । गायत्री ५१ ५९,ब्राह्मी त्रि०६० ।

स्वर— ७ छन्दों के क्रमशः ७ स्वर हैं (देखो पृष्ठ २) ,

६६ समिधा अग्निं दुवस्यत घृतैः बोधयत अतिथिम् । आ अस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ १

६७ सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥ २

६८ तं त्वा समिद्भिः अङ्गिरः घृतेन वर्द्धयामसि । बृहत् शोचा यविष्ठ्य ॥ ३

६९ उप त्वा अग्ने हविष्मतीः घृताचीः यन्तु हर्यत । जुषस्व समिधः मम ॥ ४

७० भूः भुवः स्वः द्यौः इव भूम्ना पृथिवी इव वरिम्णा ।
तस्याः ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठे अग्निं अन्नादं अन्नाद्याय आ दधे ॥ ५

७१ आ अयं गौः पृश्निः अक्रमीत् असदन् मातरम् पुरः । पितरं च प्रयन् स्वः ॥ ६

७२ अन्तः चरति रोचना अस्य प्राणात् अपानती । व्यख्यन् महिषः दिवम् ॥ ७

७३ त्रिंशद् धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते । प्रति वस्तोः अह द्युभिः ॥ ८

७४ अग्निः ज्योतिः ज्योतिः अग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिः ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ।
अग्निः वर्चः ज्योतिः वर्चः स्वाहा सूर्यः वर्चः ज्योतिः वर्चः स्वाहा ।
ज्योतिः सूर्यः सूर्यः ज्योतिः स्वाहा ॥ ९

७५ सजूः देवेन सवित्रा सजूः रात्र्या इन्द्रवत्या । जुषाणः अग्निः वेतु स्वाहा ॥
,, उषसा ,, सूर्यः वेतु स्वाहा ॥१०

७६ उप प्रयन्तः अध्वरं मन्त्रं वोचेम अग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥ ११

७७ अग्निः मूर्द्धा दिवः ककुत् पतिः पृथिव्याः अयम् । अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १२

विषय-सूची— १ अग्न्यतिथ्यादि पदार्थविद्या; ६ पृथिवी-भ्रमणादि-पदार्थ०, ७-१६ अग्नीश्वर-अग्निहोत्र-यज्ञाद्यनेक विद्या; १७-२७ अग्नीश्वर-प्रार्थनादिपदार्थ विद्या, २८ पितेव सूनवे इत्यादीश्वराद्यनेक-पदार्थ०, २५-३४ अग्नीश्वर-स्तुति-प्रार्थनादि-पदार्थ०, ३५-३६ अग्नीश्वरादि - पदार्थ०, ५० दानादानादि विद्या, ६० त्र्यम्बकम् इत्यादीश्वर-प्रार्थनादि-पदार्थ विद्या ।

अध्याय २ से सङ्गति— वेदि आदि की रचना १; यज्ञ-फल-प्राप्ति-साधन २, सामग्री-धारण ३; अग्नि-दूत-कर्म ६, आत्मेन्द्रिय-शुद्धि १०, सुख-भोग ११, वेद-प्रकाश १२, पुरुषार्थ-सिद्धि १ युद्ध-विजय १४; रिपु-निवारण द्वेष-त्याग १५, आग आदि का यान-प्रयोग १७; पृथिवी से उपकार, ईश्वर-प्रीति, दिव्य-गुण-विस्तार १९, सब की रक्षा २०, वेद का अर्थ २१, वायु-अग्नि आदि-मिलाना २२. पुरुषार्थ-गृहण, उत्तम पदार्थ-स्वीकार २४, यज्ञद्रव्य का तीनो लोकोंमें जाना २५, स्वयंभू का अर्थ २५ गृहस्थ-कर्तव्य १७; सत्य-आचरण २८, आग में होम, दुष्ट-निवारण ३०, पितर-सेवा ३१

अब तीसरे अध्याय में अग्नि आदि का उपयोग आदि बताया है ।

७८ उभा वाम् इन्द्राग्नी आहुवध्यै उभा राधसः सह मादयध्यै ।
उभा दातारौ इषां रयीणाम् उभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ।। १३

७९ अयं ते योनिः ऋत्वियः यतः जातः अरोचथाः ।
तं जानन् अग्ने आरोह अथा नः वर्धया रयिम् ।। १४

८० अयम् इह प्रथमः धायि धातृभिः होता यजिष्ठः अध्वरेषु ईड्यः ।
यम् अप्नवानः भृगवः विरुरुचुः वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ।। १५

८१ अस्य प्रत्नाम् अनु द्युतं शुक्रं दुदुह्रे अह्नयः पयः सहस्रसां ऋषिम् ।। १६

८२ तनूपा अग्ने असि तन्वं मे पाहि आयुर्दा अग्ने असि आयुः मे देहि वर्चोदा अग्ने असि वर्चः मे देहि । अग्ने यत् मे तन्वाः ऊनं तत् मे आ पृण ।। १७

८३ इन्धानाः त्वा शतं हिमाः द्युमन्तं समिधीमहि । वयस्वन्तः वयस्कृतं सहस्वन्तः सहस्कृतम्।अग्ने सपत्नदम्भनम् अदब्धासः अदाभ्यम्।चित्रावसो स्वस्ति ते पारं अशीय।।१८

८४ सं त्वं अग्ने सूर्यस्य वर्चसा अगथाः सम् ऋषीणां स्तुतेन ।
सं प्रियेण धाम्ना सं अहं आयुषा सं वर्चसा सं प्रजया सं रायस्पोषेण ग्मिषीय ।। १९

८५ अन्धः स्थ अन्धः वः भक्षीय महः स्थ महः वः भक्षीय ऊर्जः स्थ ऊर्जं वः भक्षीय रायस्पोषः स्थ रायस्पोषं वः भक्षीय ।। २०

८६ रेवती रमध्वं अस्मिन् योनौ अस्मिन् गोष्ठे अस्मिन् क्षये । इह एव इत मा अप गात ।। २१

८७ संहिता असि विश्वरूपी ऊर्जा मा आ विश गौपत्येन ।
उप त्वा अग्ने दिवे दिवे दोषावस्तः धिया वयम् । नमः भरन्तः एमसि ।। २२

८८ राजन्तम् अध्वराणां गोपां ऋतस्य दीदिविम् । वर्द्धमानं स्वे दमे ।। २३

८९ सः नः पितेव सूनवे अग्ने सूपायनः भव । सचस्वा नः स्वस्तये ।। २४

९० अग्ने त्वं नः अन्तमः उत त्राता शिवः भवा वरूथ्यः

६७ अच्छे दीप्त, शुद्ध, उत्तमों में विद्यमान आग के लिए तीक्ष्ण घी (पेट्रोल आदि) पहुँचाओ। २

६८ हे अङ्गिरा (अङ्गों में रमे) युवा (पदार्थ जोड़ने-तोड़ने वाला) आग हम तुझे घी-समिधाओं से बढ़ाते हैं तू बड़े रूप में प्रदीप्त हो। (तीन)

६९ हे कमनीय आग, तेरे पास हवि-घी-युक्त मेरी समिधाएँ पहुँचें, तू उन्हें सेवन कर। ४

७० भू-अन्तरिक्ष-द्यौ (में व्यापक), महत्ता से द्यौ-समान, श्रेष्ठता से पृथिवी-समान आग को मैं (ईश्वर और यजमान) हे देवों की यज्ञ-स्थली पृथिवी! तेरी पीठ पर आधान करता हूं। ५

७१ यह पृथिवी अन्तरिक्ष में घूमती है, अपनी माता जल के साथ, पिता सूर्य के सामने घूमती है। ६

७२ इस आग की दीप्ति बिजली अन्दर-बाहर जाती, अन्दर चलती, महान् सूर्य को प्रादुर्भूत करती है। ७

विहस्तर- आग तीसों धाम (बिजली-सूर्य-प्राण के [illegible] देश) में प्रकाश आदि से विराजती, उस पतङ्ग (बिजली-आग) आग के लिए वह-वह नियम से वाणी बोली जाती है। ८

७४ अग्नि (ईश्वर और प्राण) ज्योति है, ज्योति अग्नि है, इस सुखकर-आहुति हो, सूर्य ज्योति, ज्योति सूर्य (ईश्वर-सूरज) है, यह वाणी सत्य; आहुति हो। परमेश्वर वर्च (वेद-प्रकाशक) है, बिजली वर्च-कारण है। सूर्य और परमेश्वर ज्योति है। ज्योति सूर्य वर्च है; वर्च सूर्य है स्वाहा, ज्योति सूर्य है और सूर्य (प्राण आदि) ज्योति है यह सत्य है, इसके लिए आहुति हो। ९

७५ दिन में देव सविता के और बिजली वाली रात के साथ समानता से सेवन की जाती हुई आग और सूर्य-प्रकाश-युक्त उषा के साथ सेवमान सूर्य व्याप्त-प्रकाशमान हों। १०

[उक्त २ मन्त्रों के ८ मन्त्र चलाकर दैनिक हवन में प्रयोग और व्याख्या महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपनी पंच महायज्ञ विधि ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका और संस्कार विधि में की है।]

७६ अहिंसक यज्ञ करते हुए हम दूर-पास श्रवण करते हुए परमात्मा को लक्ष्य कर मन्त्र बोलें। ११

७७ यह परमात्मा और आग नर के मूर्धा-समान, महान्, द्यौ-पृथ्वी का रक्षक स्वामी है। वह आपः (प्राणों-जलों के वीर्यों को जानता-बनाता और हृष्ट करता है। १२

[यह मन्त्र वेदों में ६ बार आया है— ऋ० में ८.४४.१६, यजुर्वेद में यहाँ, तेरह.१४, १५.२० और सामवेद में संख्या २७ तथा पन्दरह सौ बत्तीस पर और शतपथ में २.तीन-२-११ में भी है।]

७८ हे इन्द्र (वायु) और बिजली! तुम दोनों दाताओं को शब्द करने, श्रवण करने हेतु; धन के साथ हर्ष करने-कराने और इष्ट ऐश्वर्य-अन्न के लिए ग्रहण करता हूं। (तेरह)

७९ हे आग! यह ऋतुओं में प्राप्त वायु तेरा कारण है जिससे उत्पन्न हुई तू चमकती, दीप्त होती है। उसे जानते हुए तू ऊपर चढ़ और हमारा ऐश्वर्य बढ़ा। १४

८० यह (परमात्मा और आग) यहाँ पहला, धारक जनों से धारित, दान-आदान-कर्ता, सबसे बड़ा सङ्गति-कारी, यज्ञों में स्तुत है जिस जन जन में व्यापक अद्भुत को सन्तान वाले तपस्वी यज्ञ-कर्ता जनों और सेवनीय यज्वों में विशेष दीप्त-प्रदीप्त करते हैं। १५

८१ [illegible] इस आग को हजारों का [illegible] पुरानी-नयी दीप्ति को जानकर शुद्ध साधन और जल को दुहा (पाया) करते हैं। १६

८२ हे अग्नि! तू शरीर-पालक है मेरे शरीर की रक्षा कर, आयु-दात्री है मुझे आयु दे; वर्च [वर्च] देने वाला है मुझको वर्च दे, जो मेरे शरीर की कमी हो वह पूरी कर। १७

तिरासी— हे अद्भुत धन परमात्मा और आग, तुझको सौ वर्षों तक दीप्त करते हुए अहिंसित आयु-बल वाले हम तुझ आयु-बल-कारी दुष्ट-नाशक अहिंसनीय की कृपा से दीप्त रहें, मैं दुख से पार होकर कल्याण को प्राप्त करूँ। १८

प. २० वर्ष १७ अंक ८ नभः (श्रावण) वेदज्योति अगस्त१९९३ नं०६६२१।६२, डाक

श्रीमन्! नमस्ते, आपका वर्ष २-८-९३ को पूर्ण हो चुका, कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजिये।

नया प्रकाशन-
अथर्व वेद सौ)
सस्कृत-प्रबोध १०)
सामवंश ब्राह्मण, देवताध्याय सं०हितोपनिषद्, प्रत्येक १०)
शतपथभाग३ २०)
वेदार्थपारिजात-
खण्डन २०)
अष्टाध्यायी २०)
सम्पादक वीरेन्द्र सरस्वती

## समाचार

विश्व वेदपरिषद् द्वारा श्रावणी-गोष्ठी वेद-सदन लखनउ में सोम २-८-९३ को सायं ४ बजे होगी। सर्वत्र श्रावणी उपाकर्म, वेद-प्रचार-सप्ताह और श्री कृष्ण-जन्माष्टमी १० अगस्त को होगी। २० जून को आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई के निर्वाचन में प्रधान श्री रामचन्द्र आर्य और महामन्त्री श्री विश्व भूषण आर्य, तथा कोषाध्यक्ष श्री पुरुषोत्तम आर्य चुने गये।

शोक है कि बरेली के आर्य पुस्तक-विक्रेता श्री प्रेमशंकर आर्य (८४वर्ष) का ३ जून को देहान्त होगया। श्री शेरसिंह जी प्रधान आ०प्र० स० हरि० की माता श्रीमती पातो देवी का रोहतक में २ मई को, श्री वीरेन्द्र जी ,, पंजाब की पत्नी श्रीमती राजलक्ष्मी का जालन्धर में, श्री चिमन लाल गांगिया रोहतक का आषाढ़ी पूर्णिमा को देहान्त पर शोक व्यक्त किया जाता है।

सार्वदेशिक सभा की सत्यार्थप्रकाश पत्राचार प्रतियोगिता की अन्तिम तिथि ३१ अगस्त है। वैद्य रामगोपाल शास्त्री-स्मारक की ओर से १३ अगस्त को सायं तीन बजे दिल्ली विश्वविद्यालय मिरांडा हाउस में वेदगोष्ठी में श्री स्वा. विद्यानन्द सरस्वती निबन्ध (भारत-मूल-निवासी) पढ़ेंगे।

आर्यसमाज श्रृंगारनगर लखनउ में युवा-दिवस; योग-सप्ताह २० से २७ जून तक हुआ। इस अवसर पर श्री गुदरी लाल आर्य (पवनपुरी) प्रधान आर्यसमाज केसरबाग का सम्मान किया गया।

प्रेषक - डा० अनिल कुमार, आदर्श प्रेस, लखनऊ ६ सेवा में संख्या श्री

लाइब्रेरियन
गुरुकुल कांगड़ी
(हरिद्वार)

ऋग्वेद — ओ३म् — यजुर्वेद खण्ड ४

# वेद-ज्योति

वर्ष १७ अंक १०

द्वितीय भाद्रपद २०५० अक्टूबर १९९३

अथर्व वेद — सामवेद

विश्व वेदपरिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६०८५३०९४, दयानन्दाब्द १७०

शुल्क वार्षिक ४०), आजीवन ४००), विदेश में २५ पौंड, ५० डालर, एक अंक का ४)

सम्पादक- वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम ए. काव्यतीर्थ, अध्यक्ष विश्व वेदपरिषद्;

सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ० प्र० २२६००६; दूरभाष ७२५०१ । सहायक-विमला शास्त्री

सहायक सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक श्री ओजोमित्र शास्त्री, मन्त्री विश्व वेदपरिषद्, लखनऊ ६

विषय-सूची—



महात्मा गान्धी जयन्ती २-१०-९३

जन्म २-१०-१८६९

बलिदान तीस जनवरी ४७

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

जन्म फाल्गुन १९८ वि०

बलिदान दीपावली २०४० वि०

# वैदिक दैनन्दिनी आश्विन २०५० विक्रम

| तिथि | नक्षत्र | वार | अक्तूबर | व्यायाम | भ्रमण | स्नान | सन्ध्या | प्राणायाम | स्वाध्याय | हवन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृष्ण १ | उ० भाद्रपदा | शुक्रवार | १ | | | | | | | |
| २ | रेवती | शनिवार | २ | | | | | | | |
| ३ | अश्विनी | रविवार | ३ | | | | | | | |
| ३ | भरणी | सोमवार | ४ | | | | | | | |
| ४ | कृत्तिका | मङ्गल | ५ | | | | | | | |
| ५ | रोहिणी | बुध | ६ | | | | | | | |
| ६ | मृगशिरा | गुरु | ७ | | | | | | | |
| ७ | आर्द्रा | शुक्र | ८ | | | | | | | |
| ८ | पुनर्वसु | शनि | ९ | | | | | | | |
| ९ | पुष्य | रवि | १० | | | | | | | |
| १० | आश्लेषा | सोम | ११ | | | | | | | |
| ११ | मघा | मङ्गल | १२ | | | | | | | |
| १२ | पूर्वा फल्गुनी | ध | १३ | | | | | | | |
| १४ | उ० ,, | गुरु | १४ | | | | | | | |
| ३० अमा | हस्त | शुक्र | १५ | | | | | | | |
| शुक्ल १ | चित्रा | शनि | १६ | | | | | | | |
| २ | विशाखा | रवि | १७ | | | | | | | |
| ३ | अनुराधा | सोम | १८ | | | | | | | |
| ५ | ज्येष्ठा | मगल | १९ | | | | | | | |
| ६ | मूल | बुध | २० | | | | | | | |
| ७ | पूर्वाषाढा | गुरु | २१ | | | | | | | |
| ८ | उत्त० | शुक्र | २२ | | | | | | | |
| ९ | श्रवण | शनि | २३ | | | | | | | |
| १० | धनिष्ठा | रवि | २४ | | | | | | | |
| ११ | शतभिषज | सोम | | | | | | | | |
| ११ | ,, | मङ्गल | २५ | | | | | | | |
| १२ | पू० भाद्रपदा | बुध | २६ २७ | | | | | | | |
| १३ | उ० ,, | गुरु | २८ | | | | | | | |
| १४ | रेवती | शुक्र | २९ | | | | | | | |
| १५ पू० | अ० | शनि | ३० | | | | | | | |

इस में प्रतिदिन हाँ–नहीं भरिये ।

# प्रश्न उपनिषद् का प्रश्न ३

दूसरे प्रश्न प्राण-महत्त्व के बाद कौशल्य आश्लायन ने पूछा— प्राण कहाँ-किससे पैदा होता, इस शरीर में कैसे आता; कैसे विभक्त होकर रहता; कैसे शरीर छोड़ता; कैसे बाह्य-आन्तरिक जगत् से सम्बन्ध स्थापित करता है ?

उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलाद ने कहा- तू बहुत पूछ रहा है; ब्रह्म में तेरी आस्था है अतः उत्तर देता हूँ। ये आत्मा से पैदा होते हैं; छाया-समान आत्मा के साथ आते; शरीर में रहते हैं।

राजा-समान यह साथियों को अलग-अलग नियुक्त करता है। इसके ५ भेद हैं— प्राण-अपान-समान-व्यान-उदान। आँख-नाक-कान-मुख-हाथ-पैर आदि में प्राण; गुदा-उपस्थ मेंअपान; मध्य नाभि में समान रहता है जिससे भोजन पच कर एक-रस बनता और सब इन्द्रियाँ पुष्ट रहती हैं। हृदय के पास विभिन्न नाड़ियों में व्यान रहताहै। हृदय से एक नाड़ी ऊपर जाती है जहाँ पर उदान रहता है। इस के साथ आत्मा पुण्य कर्म से पुण्य लोक, पाप से नीच योनि; और दोनों से मनुष्य-योनि में जाता है।

आत्मा हृदय-गर्त कौड़ी प्रदेश में रहता है जहाँ १०१ नाड़ियाँ हैं; प्रत्येक की सौ-सौ शाखाएँ और प्रत्येक शाखा की ७२-७२ उपशाखा (केशिका कैपिलरी); सब ७२००० में व्यान रहता है।

उदान का कार्य वर्णन करते हुए कहा कि मृत्यु-समय आत्मा प्राण से कहता है कि चलो; इस शरीर से बाहर चलें, वह उदान को आदेश देता है जिसके साथ सभी प्राण बाहर निकल जाते हैं। उस समय मनुष्य के कर्मानुसार जैसे भाव-संस्कार-वासना-विचार होते हैं; ईश्वर की व्यवस्था से आत्मा प्राण-सहित नये शरीर में प्रवेश करता है।

इस प्राण को बाह्य और आन्तरिक जगत् कैसे धारण करता है ? यह स्पष्ट करते हुए पिण्ड-ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध बताया— यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे; यद् ब्रह्माण्डे तत्पिण्डे जो शरीर में है वह ब्रह्माण्ड में है, जो ब्रह्माण्ड में है वह शरीर में। यह पिण्ड ब्रह्माण्ड का छोटा भाग या नमूना है; सूर्य का प्रकाश-प्राण नेत्रों में सजल पृथिवी से अपान; आकाश से समान; वायु से व्यान; अग्नि से उदान हमें मिलता रहता है। ❀

## प्रतिक्रिया

आप के पत्र वेद-ज्योति में प्रचुर पठनीय सामग्री रहती है अतः साधुवाद स्वीकार करें।

डा० विष्णुकान्त वर्मा, विलासपुर

## साहित्य-समीक्षा

'वेद; और वेदार्थ';लेखक-डा० ज्वन्तकुमारशास्त्री; ऐम०ए० अमेठी(सुल्तानपुफ) मूल्य२५) पठनीय है

ऋग्वैदिक अध्यात्म विद्या प्रथम भाग; लेखक— डा० विष्णुकान्त वर्मा ऋग्वेदाचार्य; ऐम.ऐससी; ऐल ऐल. बी.; पूर्व प्रिंसिपल; इंजिनियरिंग कालेज विलासपुर म० प्र०; पृष्ठ २६०; मूल्य ८०) आर्यसमाज! और आर्यसमाज-सदस्य को २० प्रतिशत कम; कागज-जिल्द-छपाई उत्तम-आकर्षक; पुस्तक पठन-योग्य और संग्राह्य है; प्राप्ति स्थल- इन्द्रप्रस्थ; सीपतरोड सरकन्डा; विलासपुर म.प.

वीरेन्द्र सरस्वती

**शोक है कि ६२ वर्षीय श्री महेन्द्रप्रताप शास्त्री कुलपति कन्या गुरुकुल हाथरस का ६ सितम्बर १९९३ को देहान्त हो गया**

**श्राद्ध मरों का नहीं, जीवितों का ही निमन्त्रण देकर करना चाहिए।**

**आर्यो! २४-१०-९३ विजया दशमी पर दुष्टों को विजय के लिए निकल पड़ो।**

# गान्धी और आर्यसमाज

स्व. प. चमूपति के लेख का संक्षेप

२८-५-१९२४ के 'यंग इण्डिया' में महात्मा गान्धी ने निम्न आक्षेप किये हैं—

१. स्वा. श्रद्धानन्द जल्दबाज; शीघ्र रुष्ट होने वाले थे; उनका प्रत्येक मुसल्मान को आर्य बना लेने का विश्वास गलत है;

२. स्वामी दयानन्द का मैं बड़ा सम्मान करता हूँ किन्तु उन्होंने हिंदू धर्म को तंग बना दिया; तथा अनजाने जैन-इस्लाम-ईसाई-हिन्दू धर्मों की मिथ्या व्याख्या की है,

३. सत्यार्थप्रकाश एक आशा न देने वाली कृति है,

४. वेदों को पूर्ण सत्य मानना भी मूर्ति-पूजा ही है;

५. हिन्दू धर्म में शुद्धि का विधान नहीं; असली शुद्धि अपने ही धर्म में पूर्णता पाना है;

६. आर्यसमाज ने प्रचार में ईसाइयों की नकल की जिससे लाभ के बजाय हानि हुई;

७. मुझे बताया गया कि आर्यसमाजी इसाई-मुस्लिम स्त्रियों को बहका ले जाते हैं

इनके संक्षिप्त उत्तर— १. स्वामी श्रद्धानन्द के विषय में अन्त में लिखा जायगा;

२. [जैनी आदि की आलोचना से जैनी-सनातनी गान्धी तिलमिला गये, यद्यपि वे महर्षि के शिष्य रानाडे के शिष्य गोखले के शिष्य थे तथा महर्षि से ४५ वर्ष पश्चात् पैदा हुए थे -सम्पादक] महर्षिने हिन्दू धर्म को नहीं; बल्कि तंग बने हिन्दूधर्म को उदार-विशाल-व्यापक सच्चा वैदिक आर्यधर्म बनाया; जो पहले केवल सन्तानों के लिए ही था उसे समस्त मानवों के लिए खोल दिया;

३. गान्धी ने यदि वास्तव में समझ कर सत्यार्थप्रकाश पढ़ा होता तो ऐसा न लिखते; उन्होंने तो जेल से उसके केवल कुछ पन्ने ही पलटे तथा गलत धारणा बना ली

मतों के सम्बन्ध में महर्षि ने 'अनजाने में' 'मिथ्या-कथन' किया ये दोनों ही बातें मिथ्या-असत्य हैं. उन्हों ने सब मतों को खूब जान-समझ कर सत्य ही लिखा, अनजाने की मिथ्या-वादिता तो स्वयं गान्धी ने ही की; मुस्लिमों के अत्याचार जान-बूझ कर छिपाये; हिन्दुओं के न होने पर भी बताये; साधारण को बड़ा-चढ़ा कर बताया। वैसे तो दोनों ने ही हिन्दुओं को अपना समझ कर उन्ही की अधिक आलोचना की।

४. सत्यार्थप्रकाश से गान्धी को निराशा हुई क्योंकि यह आर्यसमाज का हृदय है; उसमें सत्य है मुसलमानों-जनियों का खण्डन है; मुस्लिम-परस्ती नहीं।

५. वेद आर्यों की आत्मा है उसे बुत कहना उसका अपमान है, उसका पढ़ना-पढ़ाना सुनना सुनाना परम धर्म है। क्या इसीसे मूर्ति हो गया? उसपर फूल-बताशे तो नहीं चढ़ाये जाते?

गान्धी तो वेद को ही मिटाने पर तुले हैं; मुसलमानों की कुरान को 'बुत' नहीं कहा? वस्तुतः जिन्होंने वेद को पढ़ा ही नहीं; वे वेद का महत्त्व क्या समझें?

६. मान लो कि प्रचार में ईसाइयों की नकल की तो इस में क्या दोष आया? और क्या हानि हुई यह भी नहीं बताया।

७. हिन्दुओं में शुद्धि सदा वेद-शास्त्र-अनुमोदित; प्रचलित थी, तथा है इसका प्रमाण इतिहास है। शक हूण मिश्र आदि शुद्ध हुए। अपने मत में पूर्णता से तो कुर्बानी आदि अशुद्धि भी बढ़ेगी।

आर्यों पर अन्य मतों की स्त्रियों को भगा लाने का दोष बिलकुल झूट है; कोई घटना नहीं कि सी मुस्लिम मित्र ने उन्हें बहका दिया लगता है। (क्रमशः)

# शतपथ ब्राह्मण काण्ड ७ अध्याय २ (४५) ब्राह्मण ३

[खोदने के क्रम से क्यारियों में जल का सिंचन]

अब जल-चमचों से सींचता है। देवों ने कहा था- चेतो और चिति चाहो। उन्होंने वर्षा को ही चिति किया, वैसे ही यजमान यहाँ करता है। १

४ नालियों के गूलर के चमचे से सींचता है जिसका कारण बता दिया। इससे सभी चारों दिशाओं में जल-वर्षा करता है। २

३-३ चमचा भर कर सींचता है। त्रिवृत् अग्नि जितनी है उतना ही सींचता है। ३

१२ चमचा भर कर सींचता है। १२ मास = संवत्सर = अग्नि जितनी, उतना ही सींचता है। ४

वह जुते, न जुते हुए दोनों भागों को सींचता है, वर्षा भी तो दोनों पर होती है। ५

जुते, न जुते पर ३ बार सींचता है क्योंकि त्रिवृत् अग्नि की उतनी ही मात्रा है। ६

जैसे देवों ने संस्कार करते हुए जल-चमचों से सामने सींचा वैसे ही यह करता है। ७

३-३ जल-भरे चमचे छिड़कता है, जितनी कि अग्नि है उतना ही जल सींचता है। ८

१२ जल-चमचे जुते पर छिड़कता है क्योंकि १२ मास (संवत्सर) अग्नि है। ९

जुते अनजुते दोनों पर सींच कर प्राण-आत्मा दोनों में जल पहुँचाता है। १०

३ बार जुते अनजुते पर सींच कर मानो त्रिवृत् अग्नि तक जल सींचता है। ११

१५ जल-चमचे सींच कर १५ वें वज्र से सब पाप नष्ट करता है। २१

अब सर्वौषध अन्न बोता है जैसा कि देवों ने कहा था कि अन्न-चिति चाहो, और किया था। १३

सब प्रकार का अन्न बोता है। एक ही अन्न न खाया करे। जीवन-पर्यन्त गूलर की चम्मच से, कारण बता दिया। ४ नालियां वाले चमचे से, अनुष्टुप् से, जो वाणी है जिससे अन्न खाते हैं। १४

३-३ ऋचा पढ़कर बोता है। त्रिवृत् आग जितनी है उतनी से ही इसमें अन्न रखता है। १५

१२ ऋचों से जुते पर बोता है, १२ मास संवत्सर, वह आग जितनी, उतना ही अन्न रखता है। १६

वह जुते-अनजुते पर बोता है अतः दोनों पर अन्न पकता है। १७

३ से बोता है, त्रिवृत् आग जितनी है उतना ही अन्न इसमें रखता है। १८

देवों ने अन्न को सब औषधियों से नहलाया, संस्कृत किया, वैसे ही यह करता है। १९

यह अन्न सर्वौषध, सब की दवा है उससे चिकित्सा करता है। २०

३ ३ ऋचाओं से बोता है। त्रिवृत् आग जितनी है उतनी से चिकित्सा करता है। २१

१२ ऋचाओं से जुते पर बोता है, १२ मास का संवत्सर आग, वह जितनी उतना बोता है २२

वह जुते-अनजुते दोनों में बोता है, इससे प्राण-आत्मा दोनों का वैद्य बनता है। २३

३ से जुते-अनजुते पर बोता है। त्रिवृत् आग जितनी है उतनी से ही चिकित्सा करता है। २४

१५ जल-चमचों से सींचता और १५ ऋचाओं से बोता है, यह ३०-३० अक्षर की विराट् है जो सब अन्न है जिसे वह धारण करता है। २५

या ओषधीः पूर्वा जाताः देवेभ्यः त्रियुगं पुरा। मनै तु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त **च॥ य १२**।७५

जो अन्नौषधियाँ वसन्त-वर्षा-शरद् ऋतुओं के लिए ३ वर्ष पहले हुईं उन सौम्यों का सेवनकर्ता शतायु मैं और सिर के ७ प्राण और १०७ मर्म स्थलों को जानूँ। २६

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः। अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ (१२.७६)

हे माता और सैकड़ों प्रज्ञा-कर्मवाले वैद्यो ! तुम्हारे सैकड़ों मर्मस्थान हजारों नाड़ियों-औषधियों के अङ्कुर हैं, उन्हें जान कर मेरा यह शरीर नीरोग करो । २७

ऐसे अनेक अनुष्टुप् हैं जो वाणी हैं,अतः सब औषधि हैं उन्हीं से चिकित्सा करता है । २८

अब आगे निरुक्त-अनिरुक्तों का ही । यजु से २ बैल जोड़ता है, अन्य मौन, यजु से ४ क्यारी जोतता है, अन्य मौन, मौन दर्भ-गुच्छे रखता, यजु से यज्ञ करता, मौन जल-चमचो सींचाता, यजु से बोता है । २९

यह अग्नि प्रजापति है दोनों प्रकार का, निरुक्त-अनिरुक्त, परिचित-अपरिचित, । जो यजु से करता है वह इसका पहला, और जो मौन करता है वह दूसरा रूप है । यह सब प्रजापति का ही संस्कार है, बाह्य निरुक्त आन्तरिक अनिरुक्त, क्योंकि यह अग्नि पशु है । ३० ❀

# अध्याय ३ ब्राह्मण ४

## सोम-क्रय आदि

गार्हपत्य का चयन होता, आहवनीय अचित है । यह लोक गार्हपत्य, द्यौ आहवनीय, जो वायु चलती यह सोम दोनों के मध्य में इन लोकों को पवित्र करता है । १

अथवा राजा-सोम को क्रय करता है । आत्मा अग्नि, प्राण सोम है, आत्मा में प्राण रखता है । २

अथवा आत्मा-अग्नि को रस-सोम से अनुषत करता है । ३

सोम क्रय करके इसके लिए आतिथ्य-हवि देता है(देखो य. १.१५.३), हविष्कृत् को मौन कराता, अध्वर-कर्म और अग्नि-कर्म कर्म-समानता के लिए समान हैं । ४

अथवा आत्मा-अग्नि में प्राण-अध्वर को मध्य में रखता है । ५

अथवा आत्मा-अग्नि को रस-अध्वर से युक्त करता और आहवनीय का अर्ध पाता है । ६

कुछ लोग दोनों में ही पलाश-शाखा से व्युदूहन-चयन करते हैं; किन्तु ऐसा न करे, गार्हपत्य के अवसान पर आहवनीय के ऊपर ही वह बढ़ता है अतः वैसा न करे । ७

अब गार्हपत्य में ही ऊसर बिछाता है, आहवनीय में नहीं । यह लोक गार्हपत्य है; पशु ऊसर, अतः इस लोक में पशु रखता है अतः ये यहाँ हैं । ८

आहवनीय में ही पुष्कर-पर्ण रखता है, गार्हपत्य में नहीं । जल ही पुष्कर (कमल) के पत्ते हैं; द्यौ आहवनीय है । अतः द्यौ में जल रखता है । दोनों में बालू बिछाता है, वह वीर्य है, दोनों में विकृत होता है, अतः वीर्य से पुरुष होता है । ९

उन्हें नाना मन्त्रों से बिछाता है, मनुष्य-लोक ही गार्हपत्य है, देवलोक आहवनीय । मन्त्र दैव-मानुष हैं । बड़े मन्त्र से आहवनीय में, देव-आयु बड़ी, मनुष्य-आयु छोटी । वह परिश्रितों से पूर्व गार्हपत्य में बालू-वीर्य बिछाता है जिसके ये विकार हैं । १०

कहते हैं — योनि में परिश्रित वीर्य बालू है; और परिश्रितों से पूर्व गार्हपत्य में बालू बिछाता है तो कैसे इसका यह वीर्य अपरासिक्त परिगृहीत होता है ? उल्ब ही ऊसर है, उन्हें जब पूर्व बिछाता ही है तो इससे ही इसका वीर्य उल्ब के साथ अपरासिक्त-परिगृहीत हो जाता है । और आहवनीय में परिश्रितों का अभिमन्त्रण होता है उसका कारण बता दिया । और बालू-वीर्य बिछाता है इससे योनि से वीर्य अपरासिक्त-परिगृहीत होता है । ११

१७१ अग्ने वृतपाः त्वे व्रतपाः या तव तनूः इयं सा मयि यो मम तनूः एषा सा त्वयि ।
सह नौ व्रतपते व्रतानि अनु मे दीक्षां दीक्षापतिः मन्यताम् अनु तपः तपस्पतिः ॥ ६
७२ अंशुः अंशुः ते देव सोम आप्यायताम् इन्द्राय एकधनविदे ।
आ तुभ्यम् इन्द्रः प्यायताम् आ त्वम् इन्द्राय प्यायस्व ।
आप्यायय अस्मान् सखीन् सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्याम् अशीय ।
एष्टा रायः प्रेषे भगाय ऋतम् ऋतवादिभ्यः नमः द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ ७
७३या ते अग्ने अयःशया तनूःवर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा उग्रं वचो अपावधीत् त्वेषं वचो अपावधीत्
स्वाहा। „ रजःशया „ „
„ हरिशया „ „ स्वाहा ॥ ८
७४ तप्तायनी मे असि वित्तायनी मे असि अवतात् मा नाथितात् अवतात् मा
व्यथितात् । विदेत् अग्निः नभः नाम अग्ने अङ्गिरः आयुना नाम्ना आ इहि
यः अस्यां पृथिव्याम् असि यत् ते अनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे; विदेत्
अग्निः नभः नाम अग्ने अङ्गिरः आयुना नाम्ना आ इहि यः द्वितीयस्यां पृथिव्यां
असि यत्ते अनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे, विदेद् अग्निः नभः नाम अग्ने
अङ्गिरः आयुना नाम्ना आ इहि यः तृतीयस्यां पृथिव्याम् असि यत् ते अनाधृष्टं
नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । अनु त्वा देववीतये ॥ ९
७५ सिंहो असि सपत्नसाहो देवेभ्यः कल्पस्व सिंहो असि सपत्नसाहो देवेभ्यः शुन्धस्व
„ शुम्भस्व ॥ १०
७६ इन्द्रघोषः त्वा वसुभिः पुरस्तात् पातु प्रचेताः त्वा रुद्रैः पश्चात् पातु मनोजवाः त्वा
पितृभिः दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वा आदित्यैः उत्तरतः पातु इदं अहं तप्तं
वाः बहिर्धा यज्ञात् निः सृजामि ॥ ११
७७ सिंही असि स्वाहा सिंही असि आदित्यवनिः स्वाहा सिंही असि ब्रह्मवनिः
क्षत्रवनिः स्वाहा सिंही असि सुप्रजावनिः रायस्पोषवनिः स्वाहा सिंही असि आ
वह देवान् यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यः त्वा ॥ १२
७८ ध्रुवः असि पृथिवीं दृंह ध्रुवक्षित् असि अन्तरिक्षं दृंह अच्युतक्षित् असि दिवं
दृंह अग्नेः पुरीषम् असि ॥ १३
७९ युञ्जते मनः उत युञ्जते धियः विप्रा विप्रस्य बृहतः विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविद् एक इत् मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥ १४

१८० इदं विष्णुः वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढम् अस्य पांसुरे स्वाहा ॥ १५
८१ इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनवे दशस्या ।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णो एते दाधर्थ पृथिवीम् अभितः मयूखैः स्वाहा ॥ १६
८२ देवश्रुतौ देवेषु आघोषतं प्राची प्रेतं अध्वरं कल्पयन्तौ ऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्
स्वं गोष्ठं आवदतं देवी दुर्ये आयुः मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टं अत्र
रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ १७
८३ विष्णोः नु कम् वीर्याणि प्रवोचम् यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।
यः अस्कभायद् उत्तरं सधस्थम् विचक्रमाणः त्रेधा उरुगायः विष्णवे त्वा ॥ १८
८४ दिवः वा विष्णो उत वा पृथिव्याः महः वा विष्णोः उरोः अन्तरिक्षात् ।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्व आ प्रयच्छ दक्षिणात आ उत सव्याद् विष्णवे त्वा ॥ १९
८५ प्र तद् विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगः न भीमः कुचरः गिरिष्ठाः ।
यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु अधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ २०
८६ विष्णोः रराटम् असि विष्णोः श्नप्त्रे स्थः विष्णोः स्यूः असि विष्णोः ध्रुवः
असि । वैष्णवम् असि विष्णवे त्वा ॥ २१
८७ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम् । आददे नारी
असि इदं अहं रक्षसां ग्रीवाः अपि कृन्तामि बृहन् असि बृहद्रवाः बृहतीं इन्द्राय वाचं वद ॥ २२
८८ रक्षोहणं बलगहनं वैष्णवीं इदं अहं तं बलगम् उत् किरामि
यं मे निष्टयः यं अमात्यः निचखान ,,
यं मे समानः यं असमानः ,,
यं मे सबन्धुः यं असबन्धुः ,,
यं मे सजातः यं असजातः ,, उत् कृत्यां किरामि ॥ २३
८९ स्वराड् असि सपत्नहा सत्रराड् असि अभिमातिहा ।
जनराड् असि रक्षोहा सर्वराड् असि अमित्रहा ॥ २४
९० रक्षोहणः वः बलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणः वः बलगहनः अवनयामि वैष्णवान्
,, अवस्तृणामि ,, हणौ वां बलगहनौ उप दधामि वैष्णवी
रक्षोहणौ वां बलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवम् असि वैष्णवाः स्थ ॥ २५
१८१ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम् । आददे
नारि असि इदं अहं रक्षसां ग्रीवाः अपि कृन्तामि । यवः असि यवय अस्मद् द्वेषः
यवय अरातीः दिवे त्वा अन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्तां लोकाः पितृषदनं असि ॥ २६

१६२ उद् दिवं स्तभान अन्तरिक्षं पृण दृंहस्व पृथिव्यां द्युतानः त्वा मारुतः मिनोत मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंह आयुः दृंह प्रजां दृंह ॥ २७

६३ ध्रुवा असि ध्रुवः अयं यजमानः अस्मिन् आयतने प्रजया पशुभिः भूयात्। घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथाम् इन्द्रस्य छदिः असि विश्वजनस्य छाया ॥ २८

६४ परि त्वा गिर्वणः गिरः इमाः भवन्तु विश्वतः वृद्धायुं अनु वृद्धयः जुष्टाः भवन्तु जुष्टयः ॥ २९

६५ इन्द्रस्य स्यूः असि इन्द्रस्य ध्रुवः असि। ऐन्द्रम् असि वैश्वदेवम् असि ३०

६६ विभूः असि प्रवाहणः वह्निः असि हव्यवाहनः श्वात्रः असि प्रचेताः तुथः असि विश्ववेदाः ॥ ३१

६७ उशिक् असि कविः अङ्घारिः असि बम्भारिः अवस्यूः असि दुवस्वान् शुन्ध्यूः असि मार्जालीयः सम्राट् असि कृशानुः परिषद्यः असि पवमानः नभः असि प्रतक्वा मृष्टः असि हव्यसूदनः ऋतधामा असि स्वर्ज्योतिः ॥ ३२

६८ समुद्रः असि विश्वव्यचाः अजः असि एकपात् अहिः असि बुध्न्यः वाक् असि ऐन्द्रं असि सदः असि ऋतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तम् अध्वनाम् अध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मे अस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३

६९ मित्रस्य मा चक्षुषा ईक्षध्वम् अग्नयः सगराः सगराः स्थ सगरेण नाम्ना रौद्रेण अनीकेन पात मा अग्नयः पिपृत मा अग्नयः गोपायत मा नमः वः अस्तु मा मा हिंसिष्ट॥ ३४

२०० ज्योतिः असि विश्वरूपम् विश्वेषां देवानां समित्। त्वं सोम तनूकृद्भ्यः द्वेषोभ्यः अन्यकृतेभ्यः उरु यन्ता असि वरूथं स्वाहा जुषाणः अप्तुः आज्यस्य वेतु स्वाहा ॥ ३५

२०१ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनः भूयिष्ठां ते नमः उक्तिं विधेम ॥ ३६

२ अयं नः अग्निः वरिवः कृणोतु अयं मृधः पुरः एतु प्र भिन्दन्।
अयं वाजान् जयतु वाजसातौ अयं शत्रून् जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ॥ ३७

३ उरु विष्णो विक्रमस्व उरु क्षयाय नः कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८

४ देव सवितः एषः ते सोमः तं रक्षस्व मा त्वा दभन्। एतत् त्वं देव सोम देवः। देवान् उपागाः इदं अहं मनुष्यान् सह रायस्पोषेण स्वाहा निः वरुणस्य पाशात् मुच्ये ॥ ३९

५ अग्ने व्रतपाः त्वे व्रतपा या तव तनूः मयि अभूत् एषा सा त्वयि यो मम तनूः त्वयि अभूत् इयं सा मयि यथायथं नौ व्रतपते व्रतानि अनु मे दीक्षां दीक्षापतिः अमंस्त अनु तपः तपस्पतिः ४०

२०६ उरु विष्णो ··· [देखो संख्या २०३] ४१

२०७ अति अन्यान् अगाम् न अन्यान् उपागाम् अर्वाक् त्वा परेभ्यः अविदं परः अवरेभ्यः । तम् त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्याय देवाः त्वा देवयज्यायै जुषन्ताम् विष्णवे त्वा । ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनम् हिंसीः । ४२

२०८ द्याम् मा लेखीः अन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या सम्भव ।
अयम् हि त्वा स्वधितिः तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय
अतः त्वं देव वनस्पते शतवल्शः विरोह सहस्रवल्शाः वि वयम् रुहेम ॥ ४३

—०—

१६६ हे विष्णु यज्ञ), तू अग्नि-सोम का शरीर, अतिथि का आतिथ्य है,बाज-समान शीघ्रगामी तुझ को सोमधारी यजमान और धन-पुष्टि-दाता आग के लिए लेता हूं । १

६७ (हे यज्ञ); तू आग का जनक है; वर्षक सूर्य-वायु हैं, उर्वशी (बहुत सुखद यज्ञक्रिया) आयु है बहुत शब्दकर्ता उपदेशक है मैं तुझको गायत्री-त्रिष्टुप्-जगती छन्द से मथता हूं । २

६८ प्राकृत-वचन-रहित विद्या-साधक अध्येता-अध्यापक हमारे लिए समान-मन-चित्त हों । तुम दोनों यज्ञ और उसके पति की हिंसा न करो हमें आज (सदा) मङ्गल-कारी होओ । ३

६९ अग्नि-विद्वान् अग्नि-बिजली-विद्या में प्रविष्ट, वेद-द्रष्टाओं का पुत्र (पढ़ाया) हिंसा-रक्षक होकर विचरता है। वह हमें सुखद होकर यहाँ सुयज्ञ से देवों के लिए हव्य और प्राप्य पदार्थ प्रमाद-रहित देता हुआ यज्ञ करे । यह आहुति है । ४

७० (हे ईश्वर-बिजली !) तुझे सब ओर से पति के रूप में देहप्राप्ति-शक्ति-वीरसेना-ओजस्वी व्यवहार के लिए लेता हूं, तू अधर्षित तेज है मुझको देवों का अधर्षित-अधृष्य-अहिंस्य-अविनाशी तेज दे, कष्ट-रक्षक मैं स्पष्टता से ओज-सत्य जानूँ मुझ को सरल व्यवहार में रख । ५

७१ हे व्रत-पालक परब्रह्म और बिजली ! तुझमें जो व्रतपालक व्याप्ति है वह यह मुझ में है, और मेरा शरीर है वह तुझ में है। हे व्रत-दीक्षा-तप के पति! हम दोनों के ये तीनों साथ मानें । ६

७२ हे देव सोम (ईश्वर-बिजली-विद्वान्), आपका प्रत्येक बल एक-धन-पाने वाले जीव के लिए बढ़ा है । आपको ज्ञान बढ़ाये, आप ज्ञान को बढ़ाएँ । हे देव सोम हम सखाओं को सम्मा पदार्थ-पूरक बुद्धि से बढ़ा, तेरी सवन-क्रिया में मैं हितकारी धन पाऊँ; अन्न-इच्छा-ऐश्वर्य में सत्य-वादियों से सत्य और द्यावा-पृथिवी से अन्न-सत्कार पाऊँ । ७

७३ हे अग्नि-बिजली, जो तेरी सोने आदि-सूर्यादि-अशनादि में रहने वाली, अन्दर रहने वाली है वह उग्र-दीप्त वचन को दूर करती है। यह सत्य-वचन-आहुति है । ८

७४ (हे बिजली, जाठर-यज्ञिय-सूर्य अग्नि ); तू मेरी स्थापनीय-वित्तों का स्थान है मुझ को ऐश्वर्य-भय से बचा । हे अंगों में रस पहुँचाने वाली जल-प्रकाश नाम अग्नि; तू आयु नाम से इस भूमि, दूसरी पृथिवी (अन्तरिक्ष), और तीसरी कक्षा की भूमि पर आ, हम तुझको जानें-पायें। जो तेरा यज्ञिय प्रसिद्ध तेज है उस से दिव्य गुण पाने के लिए स्वीकार करता हूं । ९

७५ सिंही (अरि-नाशक), दोष-निवारक है, विद्वानों के लिए बनी, उन्हें शुद्ध-शोभायुक्त कर ।१०

१७६ हे वाणी, तुझ को ईश्वर-वेद- बिजली का घोष वसुओं के साथ पूर्व से, प्रकट चेतना-वाणी रुद्रों के साथ पश्चिम से, मनोवेगज वाणी पितरों के साथ दक्षिण,विश्वकर्मा आदित्यों के साथ उत्तर से बचायें, मैं अन्दर का तप्त और बाहर का शीतल जल यज्ञ से सर्वथा सिद्ध करता हूं । ११

१७७ हे वाणी, तू सिंही (दोष-नाशक), मास-विभाजक, ईश्वर-वेद-सेवन-कर्त्री, क्षत्रि-सेविका, सुप्रजा-सेविका, धन-पोषण-सेविका है, विद्वानों के गुण, ऋतु-भोग ला; यजमान और प्राणियों के लिए तुझको सिद्ध करता हूं। यह सुवचन और आहुति है। १२

१७८ हे यज्ञ, तू अटल है पृथिवी को दृढ़ कर; अटल सुख-शान्ति-निवास है अन्तरिक्ष को बढ़ा, अविनाशी पदार्थों का निवास है विद्या-प्रकाश को बढ़ा, तू बिजली आदि से पशु-पालक साधन है। १३

७६ मेधावी होता विद्वान्-व्यापक-ज्ञानी ईश्वर में मन-बुद्धियों को योग-युक्त करते, करुंज्ञा मैं अकेला ही विशेष धारण करता हूं, यह देव सविता परमात्मा की बड़ी स्तुति सत्य वाणी है। १४

८० यह जगत विष्णु व्यापक परमात्मा ने रचा है, जो तीन प्रकार से पद रखता है- प्रकाशवान्, अप्रकाशवान् और अदृश्य परमाणु, यह तीसरा धूलिकण-रमणस्थान अन्तरिक्ष में है।

इसका अर्थ यास्क ने निरुक्त में सूर्यपरक किया है कि वह पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ में स्थान रखता है, इसकी एक प्रकाश-किरण धूल-भरे अन्तरिक्ष में गुप्त रहती है। १५

८१ हे जगदीश्वर-पूर्ण, तू अन्न-पशु वाली, सुन्दर मिश्रित-अमिश्रित वाली भूमि-वाणी-चक्षु और ये विद्वान् इन द्यौ-भूमि को दया-सामन बोध के लिए किरणों से सब ओर धारण करते हैं।१६

८२ देवों में प्रसिद्ध ईश्वर-सूर्य घोषणा करते हैं कि समर्थ द्यौ-भूमि उच्च विज्ञान-शिल्प लायें, दूसरों तक पहुँचायें, कुटिल न हों, दिव्य घर-गोष्ठ में आयें, हमारी आयु-प्रजा को नष्ट न करें, वर्षा-युक्त भूमि-अन्तरिक्ष में रस रहें। १७

८३ मैं उस आनन्दी परमात्मा के पराक्रम कहूं जो पार्थिव लोक तीन प्रकार से बनाता है, गति और वेद-उपदेश देता हुआ, कारण रूप प्रकृति को तुझ यज्ञ के लिए धारण करता है। १८

८४ हे परमात्मा, हम यज्ञ के लिए तेरी पूजा करें। हमें अग्नि-बिजली या भूमि से या महान् अन्तरिक्ष से धन-पूर्ण कर। दाएँ-बाएँ दोनों हाथों को धन से भर दे। १६

८५ अतः वह परमात्मा अपने बल से भयकर बुरी तरह गति करते पहाड़ी शेर-समान बताता है जिसके तीन बड़े पराक्रमों में सभी भुवन रहते हैं। २०

८६ हे जगत्, तू परमात्मा का परिभाषित; जड़-चेतन २ शुद्ध रूप लिया हुआ, अटल है। तुझे यज्ञ के लिए लेता हूं। २१

८७ हे यज्ञ। देव सविता के उत्पादित संसार में मैं प्राणापान और अध्वर्यु की बाहों तथा पृथिवी के हाथों से इस तुझ को लेता हूं। तू नरों की शक्ति है मैं राक्षसों की गरदनें काटता हूं। तू बड़ा बड़े शब्द वाला है इन्द्र के लिए बड़ी वाणी बोल। २२

८८ राक्षस-नाशक बल-अवगाहक ईश्वरीय बल-दायक इस यज्ञ को मैं (होता-भूगर्भशास्त्री-अध्यापक-शिष्य-मित्र) उन्नत करूँ/करता हूं और बिछाए जाल को उखाड़ फैंकता हूं जिसे मेरा श्रेष्ठ अमात्य-खनक-समान-असमान-सबन्धु-असबन्धु-सजात-असजात खोदता-बनाता है; और कृत्या (यज्ञ-क्रिया) बढ़ाता तथा नाश-क्रिया उखाड़ फैंकता है। २३

८९ हे विद्वान्-सूर्य ! तू स्वयं दीप्त, स्व-रिपु-नाशक है; यज्ञ का राजा, अभिमानी-नाशक है, जन-राजा, अतः दुष्ट-नाशक है; और अन्त में सबका राजा बन कर अमित्र-नाशक है। २४

१९० राक्षस-हन्ता, सेना-बल-विलोडन-कर्ता मैं याज्ञिकों को जल से, दुष्टों को रक्त से सींचता हूँ, पाता-बचाता हूँ वैसे ही तुम दोनों प्रजा-सभा-अध्यक्ष को पास रखता; उनका और यज्ञ-क्रिया का निरीक्षण करता हूँ। यह यज्ञ-विज्ञान है तुम यजमान हो-बनो-रहो। २५

१९१ मैं देव सविता ईश्वर की सृष्टि में तुझे अश्वी (प्राण-अपान) के बाहु (बल-वीर्य) और पोषक वीर के हाथों से लेता हूँ. तू नारी है, यह मैं राक्षसों की गरदनें निश्चय से काटता हूँ, तू (यव) हटाने वाला है हमसे द्वेष और वैरियों को हटा। तुझे यज्ञ को द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी के लिए लूं, विद्वत्-सदन लोक शुद्ध हों, तू विद्वत्-सदन है। २६

१९२ हे विद्वान्! द्यौ (प्रकाश)-अन्तरिक्ष और तत्स्थ प्राणियों को उच्च स्तम्भित-तृप्त कर, बढ़ बढ़ा, विद्या-गुण भूमि पर फैलाता हुआ वायु और प्राण-अपान तुझे स्थिर धर्म से युक्त करें। मैं ब्रह्म-क्षत्र-धन-पोषण के सेवन-कर्ता तुझको समझता हूं. ब्रह्म-क्षत्र-आयु-प्रजा को बढ़ा। २७

१९३ हे याज्ञिक. तू इस स्थान-घर-यज्ञ में स्थिर है यह यजमान भी प्रजा-पशुओं-सहित स्थिर हो; दोनों द्यौ-भूमि को घी से भर दो, तू ऐश्वर्य-प्रापक और सब जनों का आश्रय है। २८

१९४ हे वाणी-प्रशंसनीय ईश्वर और सभापति! ये सब वाणियाँ आप के सब ओर हों, वृद्ध आप के पीछे भी बढ़ने वाली, प्रीति-वर्धक, सेवनीय हों। २९

१९५ हे ईश्वर और सभापति, आप ऐश्वर्य के योजक-अटल, ऐश्वर्य और सब देवों के आधार हैं। ३०

१९६ आप वैभव-युक्त, वायु-महा नद-समान पदार्थ-प्रापक, अग्नि-समान हव्य-वाहक, ज्ञानी-वायु-समान विद्या-वर्धक, प्राण-समान चेतना-दायक हो। ३१

१९७ हे ईश्वर और विद्वान्, आप कान्तिमान्-कवि, कुटिल-पाप-बन्धन के अरि, आनन्द-तानों के तानने वाले पूज्य-शुद्ध-शोधक-सम्राट्, दुष्ट-कृश-कर्ता पवित्र-कर्ता सभासद्, पर-पदार्थ-गृहीता के हन्ता, दर्पक-सहनशील, हव्य-शोधक, सत्य-जल-धारक, सुख-अन्तरिक्ष-प्रकाशक हैं। ३२

१९८ हे परमात्मन्, आप सबके गति-दाता, विराट्-व्यापक, एक पैर से सबके धारक अजन्मा; विद्या-पूर्ण, आकाश-व्यापक-वाणी-ऐश्वर्य का घर हैं। हे धर्म-मार्गों के पति, सत्य-कारण व्यवहार के अन्दर-बाहर के दोनों द्वार तुझे नष्ट न करें, मुझे तार; इन देव-यान मोक्ष-पथ में मेरा कल्याण हो। ३३

१९९ हे विद्वानो, अवकाश वाले आप मुझे मित्र की दृष्टि से देखें. अन्तरिक्ष के साथ प्रसिद्ध, रुलाने वाली सेना से मेरी रक्षा करो विद्या-गुणों से पूर्ण करो, मेरा पालन करो; आप के लिए नमः हो। मेरी हिंसा न करो। ३४

२०० हे सोम परमात्मा, आप सब देवों की विश्वरूप ज्योति सम्यक् दीप्त समिधा-समान हैं। आप अन्य विस्तारक पापी दुष्टों के नियामक हैं। विशाल-वरण-योग्य घर और वाणी वाला घी-विज्ञान-सेवी उसे वेद-वाणी से जाने। ३५

२०१ हे देव, अग्रणी विद्वान् नेता परमात्मा, आप हमें सुपथ से ऐश्वर्य के लिए सब उत्तम कर्म और प्रज्ञा दिखाइये। हम से कुटिल पाप हटाइए। हम आपकी अत्यन्त नम्र: उक्ति सदा करें। ३६

२०२ यह हमारा अग्रणी वीर रक्षा करे, यह निन्द्य अरियों का विदारण करता हुआ सामने आये, यह युद्धों में संग्राम जीते; यह हृष्ट होता हुआ शत्रुओं को जीते। ३७

२०३ हे परमात्मा और शूर, आप विक्रम करें, हमें निवास के लिए समर्थ करें। हे घी से प्रदीप्त आग-समान शूर, घी पी और वाणी से यज्ञ-पति को पार करो। ३८

२०४ हे देव सविता (सभाध्यक्ष), यह आपका सोम (ऐश्वर्य) है उसकी रक्षा कर; पूजा-जन आपकी हिंसा न करें। हे देव सोम राजन्, आप विद्वानों और मैं मनुष्यों के पास धन-वृष्टि के साथ सत्य वाणी से पहुँचें और मैं वरुण (तिरस्कर्ता) के पाश से छूटूँ। ३९

२०५ हे व्रत-पालयिता आचार्य, मैं तेरा व्रत-पालनूँ, जो आपका शरीर (विद्या) मुझमें हुआ यही वही आप में है, जो मेरी विद्या आपमें थी यह वह मुझ में है। यथायोग्य हम दोनों व्रत करें, दीक्षा-तपः-पति मुझे दीक्षा-तप ठीक बताता है तदनुसार करूँ। ४०

६ [देखो संख्या ३८] ४१

७ मैं अन्य (मूर्ख)-भिन्न विद्वानोंके पास पहुँचूँ, अन्यों के पास नहीं, आपको बड़ों से बड़ा निकृष्टों से दूर पाया है। हे वन-पति देव ईश्वर! दिव्य-गुण पाने के लिए उस आपको हम और विद्वान् यज्ञ के लिए सेवा करें। हे दोष-निवारक विद्वान्! आप विनाश न करें। ४२

२०८ हे विद्वान्! विद्या-प्रकाश को मत छोड़, अवकाश (समय) नष्ट न कर; पृथिवी के साथ रह क्योंकि यह तीक्ष्ण [काल] वज्र आपको बड़े सौभाग्य के लिए प्राप्त कराता है। हे वन-रक्षक विद्वान्! आप सैकड़ों अंकुर वाले वृक्ष-समान बढ़ें और हम हजार अंकुर वाले वृक्ष-समान बढ़ें। ४३

अध्याय ५ का सारांश और अध्याय ४ से सङ्गति

यज्ञ १-२ याज्ञिक ३, विद्या-प्राप्ति ४, प्राणता ५, यज्ञ-सिद्धि ६, वाणी १०-११; अध्ययन-अध्यापन १२, योग १४, सृष्टि १५, ईश्वर-सूर्य प्राणापान १६-१७, विभु-व्याप्ति १८-२१, यज्ञ २२, सृष्टिसे उपकार २३; सूर्य-सभाध्यक्ष २४, यज्ञ २५-२८, ईश्वर-सभाध्यक्ष ३०-३२, ईश्वर-विद्वान् ३३-३६, शूर ३७, बिजली ३८, ईश्वरोपासना, बिजली के गुण, यज्ञ-सिद्धि आदि ३९-४३ के बताने से अध्याय ४ के साथ सङ्गति है। —०—

# यजुर्वेद अ० ६

## विषय-सूची; ऋषि; देवता, छन्द, स्वर, विनियोग।

विषय-सूची— १ दुष्ट-ताडना०, ३ विष्णु-सूर्यादि-पदार्थविद्या, ४-५ विष्णु-परमेश्वरादि-पदार्थ-विद्या, ७ त्वाष्ट्रादि०, ६ अग्नीश्वर-स्तुत्यादि०, ११ यज्ञादि-पदार्थविद्या, १७ जलादि-पदार्थ-विद्या, २० प्रार्थनादि०, २१ ईश्वरोपदेशादि०, ईश्वराशीर्वादादि-पदार्थविद्या। २२ ओषध्यादि-पदार्थ-विद्या। २५ हृद ओषध्यादि-पदार्थविद्या। २६ दुरेवादि-विद्या, वीरेश्वर-धिषणादि-विद्या। २७ देवीरित्यादि-पदार्थविद्या। २८ समुद्रादि-विद्या। ३० निर्वैर-धर्मोपदेश उत्तमेनेत्यादि विद्या। ३१ मनो मे तर्पयत इत्यादि-पदार्थविद्या। ३३ यत्ते ज्योतिरित्यादीश्वरादि०।

ऋषि— अगस्त्य १। शाकल्य २। दीर्घतमा ३ ८-६ १७-२३। मेधातिथि ४ ५ ७ १०-१६ २४-२८। मधुच्छन्दा २६-३६। गौतम ३७।

देवता- सविता १ २ ३०। विष्णु ३ ४-६। विद्वांसः ६ १२ १४-१५। त्वष्टा ७ २०। बृहस्पति ८। सविता-अश्विनौ-पूषा ९। आपः १० १३ १७ २७। वातः ११। द्यावा-पृथिवी १६ ३५। अग्नि १८ २६। विश्वेदेवाः १६। प्रजापति २१। वरुण २२। अप्-यज्ञ-सूर्य २३। लिङ्गोक्त २४। सोम २५ २६ ३३ ३६। प्रजा २८। प्रजा सभ्यराजानः ३१। सभापति-राजा ३२। यज्ञ ३४। इन्द्र ३७।

छन्द— पंक्ति १-२ ९ ५ ३०। आसुरी उष्णिक १। गायत्री २ ४ ५ २२ २४ २६ २६। आर्ची उष्णिक ३ ११ ३६। प्राजापत्या बृहती ३ ९-१०। आसुरी गायत्री ३। उष्णिक ६ ११ २१ इकतीस। साम्नी बृहती ६। बृहती ७ १० तेंतीस-चौंतीस। प्राजापत्या अनुष्टुप् ८ १२ १८। बृहती ८-६। याजुषी त्रिष्टुप् ६। आसुरी अनुष्टुप् १२। अनुष्टुप् तेरह तेइस २५ २८ तीस पैंतीस सैंतीस। जगती १४ ३२। आर्ची त्रि०१५। ब्राह्मी उष्णिक १६ २१ २२ इकतीस। ब्राह्मी अनु०१७ १६। दैवी, आर्ची पंक्ति १८। ब्राह्मी त्रिष्टुप् २०। साम्नी उष्णिक २१। त्रिष्टुप् २४ २६ २७।

स्वर— छन्द के अनुसार (देखो पृष्ठ २) विनियोग— सोम-याग। —०—

२०६ देवस्य त्वा सवितु प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम । आददे नारि असि इदम् अहम् रक्षसा ग्रीवाः अपि कृन्तामि । यवः असि यवय अस्मद् द्वेषः यवय अरातीः दिवे त्वा अन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धन्ताम् लोकाः पितृषदनाः पितृषदनम असि ॥ १

१० अग्रेणीः असि स्वावेशः उन्नेतृणाम् एतस्य वित्ताद् अधि त्वा स्थास्यति देवः त्वा सविता मध्वा अनक्तु सुपिप्पलाभ्यः त्वा ओषधीभ्यः । द्यां अग्रेण अस्पृक्षः आ अन्तरिक्षम् मध्यमेन अप्राः पृथिवीम् उपरेण अदृंही ॥ २

११ या ते धामानि उश्मसि गमध्यै यत्र गावः भूरिशृङ्गाः अयासः । अत्र अह तत् उरुगायस्य विष्णोः परमं पदम् अव भारि भूरि । ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि परि ऊहामि । ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंह आयुः दृंह प्रजां दृंह ॥ ३

१२ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतः व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४

१३ तत विष्णोः परमम् पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवि इव चक्षुः आ ततम् ॥ ५

१४ परिवीः असि परि त्वा दैवीः विशः व्ययन्तां परि इमम् यजमानं रायः मनुष्याणाम् ॥ दिवः सूनुः असि एषः ते पृथिव्यां लोकः आरण्यः ते पशुः ॥ ६

१५ उपावीः असि उप देवान् दैवीः विशः प्र अगुः उशिजः वह्नितमान् ।
देव त्वष्टः वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७

१६ रेवतीः रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि ।
ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रति मुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८

१७ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम् । अग्नीषोमाभ्यां जुष्टम् नियुनज्मि । अद्भ्यः त्वा ओषधीभ्यः अनु त्वा माता मन्यताम् अनु पिता सगर्भ्यः अनु सखा सयूथ्यः । अग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्र उक्षामि ॥ ९

१८ अपां पेरुः असि आपः देवीः स्वदन्तु स्वात्तं चित् सत् देवहविः । सम् ते प्राणः वातेन गच्छताम् सम् अङ्गानि यजत्रैः सम् यज्ञपतिः आ शिषा १०

१९ घृतेन अक्तौ पशून् त्रायेथाम् रेवति यजमाने प्रियम् धाः आ विश । उरोः अन्तरिक्षात् सजूः देवेन वातेन अस्य हविषः त्मना यज सम् अस्य तन्वा भव । वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा ११

२२० मा अहिः भूः मा पृदाकुः नमः ते आतान अनर्वा प्र इहि ।
घृतस्य कुल्याः उप ऋतस्य पथ्याः अनु ॥ १२

ऋ० भाष्य भू० **मन्त्र-व्याख्या**

क्रमाङ्क ६; ऋषि प्रजापति, देवता परमात्मा, छन्द त्रिष्टुप्, स्वर धैवत, विनियोग प्रार्थना।

**य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।**

**यस्यच्छाया अमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥**

[ऋ १०-१२-२, यजु २५-१३, अ ४-२-१, १३-३-२४]

जो जगदीश्वर अपनी कृपा से ही अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला, विद्या और सत्य सुखों की प्राप्ति कराने वाला है, जिसकी उपासना सब विद्वान् करते आये हैं, और जिसका अनुशासन जो वेदोक्त शिक्षा है उसको अत्यन्त मान से सब शिष्ट लोग स्वीकार करते हैं, जिसका आश्रय करना ही मोक्षसुख का कारण है और जिसकी अच्छाया अकृपा ही जन्म-मरण-रूप दुःखों को देने वाली है, जो सुखस्वरूप और सब प्रजा का पति है उस परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिए सत्य, -प्रेम भक्ति रूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें, जिससे हम लोगों को किसी प्रकार का दुःख कभी न हो। इसकी व्याख्या महर्षिने आर्याभिविनय-सत्यार्थप्रकाश-संस्कारविधि और यजुर्भाष्य में की है

## पतञ्जलि का योग दर्शन शास्त्र

(गताङ्क से आगे)

**१११ तज्जयात् प्रज्ञालोकः। ५। ११२ तस्य भूमिषु विनियोगः। ६।**

जब मनुष्य को संयम (धारणा-ध्यान-समाधि) पर पूरा अधिकार हो जाता है तब उसकी बुद्धि पर से परदा हट जाता है और उसमें प्रज्ञा का प्रकाश हो जाता है।

जब संयम सिद्ध होने लगे तो अभ्यासी को उतावला न होना चाहिए किन्तु धैर्य-पूर्वक उसे अगली भूमियों (अवस्थाओं) में लगाना चाहिए।

**११३ त्रयम् अन्तरङ्गम् पूर्वेभ्यः ॥ ७॥ ११४ तदपि बहिरङ्गम् निर्बीजस्य। ८**

**११५ व्युत्थान-निरोध-संस्कारयोरभिभव-प्रादुर्भावौ निरोधक्षण-चित्तान्वयो निरोधपरिणाम ६**

यम आदि पहले ५ अंगों से अन्तिम ३ (धारणा-ध्यान-समाधि) अन्तरंग हैं। (शास्त्रार्थ-संग्रह सबीज-सम्प्रज्ञात समाधिके लिए अन्तरंग होता हुआ भी संयम-त्रिक निर्बीज-असम्प्रज्ञात समाधि के लिए बहिरंग है।

जब चित्त-वृत्ति-निरोध हो गया, किन्तु पूरी तरह नहीं, तब चित्त चञ्चलता के संस्कार दबाकर निरोध-संस्कार जगाता है यह भी चित्त की एक परिणाम-वृत्ति है। जबतक वह निस्तरंग समुद्र समान सर्वथा शान्त नहीं हो जाता तबतक कभी व्युत्थान, कभी निरोध ऐसा वृत्ति-चक्र चलता ही रहता है।

११६ तस्य प्रशान्त-वाहिता संस्कारात्। १०

निरोध-संस्कारों-दृढ़ता से चित्त-प्रवाह प्रशान्त रूप से स्थिर हो जाता है।

११७ सर्वार्थता-एकाग्रतयोः क्षय-उदयौ चित्तस्य समाधि-परिणामः। ११

चित्त की सर्वार्थता का क्षय और एकाग्रता का उदय होना समाधि का फल है।

११८ ततः पुनः शान्त-उदितौ तुल्य-प्रत्ययौ चित्तस्य एकाग्रता-परिणामः। १२

जब चित्त किसी वस्तु पर ऐसा लग जाय कि समय बीतना पता ही न चले तब एकाग्र होता है

११६ एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्म-लक्षण-अवस्था-परिणामाः व्याख्याताः। १३

चित्त-समान ५ भूत और इन्द्रियें भी प्रकृति विकार हैं, इनमेंभी धर्म-लक्षण-अवस्था-परिणाम हैं।

वर्ष १७ अंक १० नभस्य (द्वि० भाद्रपद) **वेदज्योति** अक्टूबर १९९३ न० ६६८२१।६२, डाक लख २०६

श्रीमन्! नमस्ते, आपका वर्ष २-१०-९३ को पूर्ण हो चुका, कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजिये।

**नया प्रकाशन—**

वेद में सब विद्या १०)
अथर्ववेद सौ)
संस्कृत-प्रबोध १०)
सामवंश ब्राह्मण, देवताध्याय, संहितोपनिषद्, प्रत्येक १०)
शतपथ भाग ३ प्रत्येक २०)
पारिजा. खण्डन २०)
अष्टाध्यायी २०)

सम्पादक वीरेन्द्र सरस्वती

## समाचार

विश्व वेदपरिषद् की प्रबन्ध-समिति की बैठक वेद-सदन लखनउ में रवि १४-११-९३ को ३ बजे होगी कृपया सभी सदस्य सम्मिलित हों —मन्त्री

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई में वेद-प्रचार-सप्ताह यजुर्वेद-पारायण यज्ञ २९-९ से ५-१०-९३ तक होगा। प० जैमिनि शास्त्री ब्रह्मा होंगे।

अजमेर में ऋषि-मेला २७ से २९ नवम्बर १९९३ तक होगा।

उसी अवसर पर वहीं पर आर्यसमाज फलेरा (जयपुर) द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार १९९३ १००००) श्री सुधाकर चतुर्वेदी बंगलोर को दिया जायगा।

शोक है कि श्री स्वामी गणपतिराय (९०) दिल्ली का १५-८ को और प० जगत राम आर्य (८४) दिल्ली का ४-८ को देहान्त हो गया।

१६-१७ अक्टूबर १९९३ को बहालगढ़ में स्व० प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु-स्मारक जन्म-शताब्दी का समाप -उत्सव सम्पन्न होगा जिसमें 'निरुक्तकार और वेद' के सर्वोत्तम लेखक को श्री म० म० प० युधिष्ठिर मीमांसक १०००) पुरस्कार देंगे।

प० अभिविनय भारथी सम्पादक वेदोद्धारिणी दिल्ली के १-२-९३ को वानप्रस्थ हो जाने पर उनका नाम 'भिक्षु दिवस्पु भारथी' हुआ।

प्रेषक— डा० अनिलकुमार, प्रबन्धक आदर्श प्रेस सी ८१७ महानगर लखनऊ ६। दूरभाष ७२५०१

सेवा में, संख्या, श्री

पुस्तकालयाध्यक्ष
गुरुकुल कांगड़ी

विश्व वेदपरिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य— विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग का प्रचार
मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६ ०८ ५३ ०९४, दयानन्दाब्द १७० (वार्षिक ४०) आजीवन ४००),
सम्पादक- वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम ए. काव्यतीर्थ, अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्
सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ० प्र० २२६००६; दूरभाष ७९५०१ । सहायक- विमला शास्त्री

**विषय-सूची—**



अमर बलिदानी

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

जन्म फाल्गुन १८८१ वि०

बलिदान दीपावली १९४० वि०
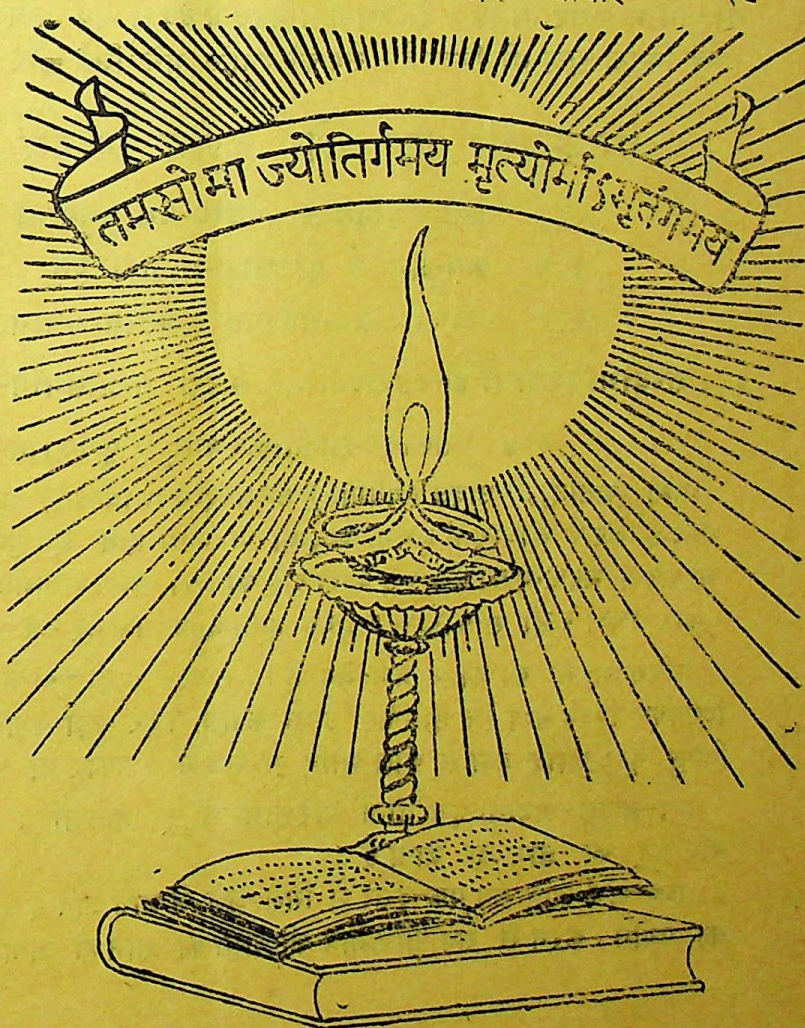
# ऋ० भाष्य भू० मन्त्र—व्याख्या

**ओ३म् द्यौ शान्तिरन्तरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥** [य० ३६-१७

क्रमाङ्क ७— ऋषि दध्यङ् आथर्वण, देवता ईश्वर; छन्दः भुरिक् शक्वरी, स्वर धैवत, विनि० प्रार्थना

हे परमेश्वर ! आपकी भक्ति और कृपा से ही द्यौः सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान सब दिन हमें सुखदायक हो, तथा जो आकाश, पृथिवी ;जल; औषधि, वनस्पति (वट आदि वृक्ष), संसार के सब विद्वान्; ब्रह्म (वेद); सब पदार्थ; और इनसे भिन्नभी जो जगत् है; वे सब सुख देने वाले, हम को सब काल में हों कि सब पदार्थ सब दिन हमारे अनुकूल रहें। हे भगवन् ! यह सब शान्ति हमको विद्या-बुद्धि-विज्ञान-आरोग्य और सब उत्तम सहाय को कृपा से दीजिये तथा हम लोग और सब जगत् को उत्तम गुण और सुख के दान से बढ़ाइये। ऋ० भा० भू०

महर्षि ने इस मन्त्र की व्याख्या यजुर्वेद-भाष्य, आर्याभिविनय में भी की है। भाष्य में ब्रह्म का अर्थ परमेश्वर भी किया है। आर्याभिविनय में देवका अर्थ विश्वद्योतक वेदमन्त्र; इन्द्रिय, सूर्यादि उनके किरण-गुण भी किया है। सब की शान्ति मुझे मिले और बढ़े।

## पतञ्जलि का योग दर्शन शास्त्र [गतांक से आगे]

**१२० शान्त-उदित-अव्यपदेश्य-धर्म-अनुपाती धर्मी । १४**

**१२१ क्रम-अन्यत्वं परिणाम-अन्यत्वे हेतुः । १५**

**१२२ परिणाम-त्रय-संयमात् अतीत-अनागत-ज्ञानम् । १६**

**१२३ शब्दार्थप्रत्ययानां इतरेतराध्यासात् संकरः तत्प्रविभाग-संयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् । १७**

**१२४ संस्कार-साक्षात्करणात् पूर्वजाति-ज्ञानम् ।**

शान्त (अतीत), उदित (वर्तमान); अव्यपदेश्य (भविष्यत्) धर्मों के साथ सम्बन्ध रखनेवाला धर्मी है जिसके आधार से लक्षण-अवस्था-परिणाम होते हैं। मुख्य धर्मी प्रकृति है, उसका धर्म महत्तत्त्व, महत्तत्त्व का धर्म अहंकार, अहंकार का धर्म पंच तन्मात्रा इत्यादि क्रम से जान लें। इस प्रकार चित्त रूभी संस्कारों में अन्वित होता है, क्योंकि यह सब परिणाम चित्त के हैं।

परिणाम-भेद का कारण क्रम-भेद है। जैसे पहले मिट्टी चूर्ण के रूप में होती है; फिर उसमें पानी मिलाकर पिण्ड बना लेते हैं; फिर उससे कपाल, फिर घड़ा बनाते हैं। यह सब धर्म-परिणाम है किन्तु चूर्ण आदि क्रम से काल आदि सम्बन्ध में ३ प्रकार का हो जाता है।

धर्म-लक्षण-अवस्था इन तीनों परिणामों में पूर्व-प्रतिपादित संयम का प्रयोग करने से भूत-भविष्यत् का ज्ञान हो जाता है।

शब्द-अर्थ-ज्ञान सब एक-दूसरे से मिले-जुले से जाने जाते हैं। उनमें अलग विभाग करके संयम का प्रयोग करने से सब प्राणिमात्र की बोली का ज्ञान हो जाता है। क्रमशः

# प्रश्न उपनिषद् का प्रश्न ४

तीसरे प्रश्न प्राण-महत्त्व के बाद चौथा प्रश्न सौर्यायिणी गार्ग्य ने पूछा– भगवन्! इस पुरुष में कौन सोता है; कौन जागता, कौन स्वप्न देखता; किसे सुख होता, यह सब किस में प्रतिष्ठित है कौन इन सब का आधार है?

उत्तर देते हुए महर्षि पिप्पलाद ने कहा– इन्द्रियाँ सोतीं हैं। इस विषय में उदाहरण देते हुए वे कहते हैं कि सूरज के अस्त होने पर उसकी सब किरणें उसमें समा जातीं और उदय होने पर फिर चारों ओर फैल जातीं हैं वैसे ही मनुष्य जब सोता है तब सब ज्ञान-इन्द्रियाँ मन में एकाकार हो जातीं हैं। उस समय वह न तो कानों से सुनता; न आँखों से देखता; न नाक से सूँघ पाता है। सब अपना काम करना बन्द कर देतीं हैं। नींद में कोई इन्द्रियाँ काम नहीं करतीं; किन्तु प्राण-अग्नि ही इस शरीर में जागतीं रहती है। इन्द्रियाँ सोती; श्वास-प्रश्वास चलते रहते हैं।

स्वप्नावस्था में कौन स्वप्न देखता है? इस विषय में ऋषि ने कहा– जागृत् अवस्था में तो मन इन्द्रियों के द्वारा देखता-सुनता-सूँघता है, किन्तु स्वप्न में वह बिना आँखों के देखता, बिना कान के सुनता, बिना नाक के सूँघता है। यह महिमा मन की है। स्वप्न मन के द्वारा देखा जाता है, उस समय मन कार्य करता है। जब आत्मा तेज से अभिभूत होता है तब सुषुप्ति अर्थात् गाढ़ी नींद में सोता है और सुख का अनुभव करता है।

इन्द्रियाँ-प्राण-मन आदि सब आत्मा में प्रतिष्ठित हैं, उस पर आधारित हैं। आत्मा ही दृष्टा स्पृष्टा-भोक्ता है। इन्द्रियाँ-प्राण-मन आदि भोग्य हैं। इन्द्रियों से आत्मा विषयों का भोग करता है। अतः इन्द्रियों की रचना ही परमात्मा ने ऐसी बनायी है कि ये बाहर की ओर ही देखती हैं। बाहर की ओर से इनकी गति रोकने पर ही आत्म-साक्षात्कार होता है। ❀

# घी-दूध में पशुओं की चर्बी

मेरठ-सहारनपुर आदि में सर्वत्र पशुओं की चर्बी घी-दूध में मिलाई जा रही है; जनता सावधान!

# स्वाध्याय-परिवार का दुष्प्रचार

नये पौराणिक श्री पाण्डुरंग आठवले शास्त्री ने नया 'स्वाध्याय-परिवार' चला कर २ पुस्तकें 'मूर्ति-पूजा', 'संस्कृति-पूजन' बम्बई से गुजराती-मराठी-हिन्दी-अंग्रेजी में प्रकाशित की हैं जिनका उत्तर आर्य विद्वान् वेदज्योति में प्रकाशनार्थ भेजें। प्रधान आर्यसमाज नवाडेरा भरूच पुस्तकें भेजें।

# पजाब में कत्ल-खाना न बने

पंजाब की गान्धीवादी कांग्रेसी सरकार ब्लाक डेरा बसी के गांव फतहपुर बेहड़ा जिला पटियाला में एक स्वचालित कत्लखाना खोल रही है, जिस से रक्त की नदियाँ बहेंगी। कहाँ गयी गान्धी की अहिंसा? पूरा जैन-समाज; समस्त वैष्णव; सम्पूर्ण आर्यसमाज; निरामिष भारत के नर-नारी इसका घोर विरोध करते हैं। मांस खाना वेद-धर्म के विरुद्ध है; इससे भयंकर रोग फैलते हैं। यह विदेशी सहायता से खुल रहा है। राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री इसे न बनने दें।

# महर्षि दयानन्द

१.श्री यदुनाथ सरकार- जब भारत का इतिहास लिखा जायगा तो नंगे फकीर दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर बिठाया जायगा।

२. सर सैयद अहमद खाँ- स्वामी दयानन्द के अनुयायी उन्हें देवता-तुल्य मानते हैं। वे निस्सन्देह इसी योग्य थे। वह इतने विद्वान् और अच्छे आदमी थे कि प्रत्येक धर्म के अनुयायियों के लिए सम्मान के पात्र थे।

३. दीनबन्धु ऐन्ड्र्यूज- स्वामी दयानन्द सर्वथा पवित्र और अपने नियमों के अनुसार सर्वथा आचरण करने वाले महानुभाव थे। वे सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।

४. श्री ए. ओ० ह्यूम (कांग्रेस-संस्थापक)- स्वामी दयानन्द एक महान् श्रेष्ठ पुरुष थे। वह अपने देश के लिए गौरव रूप थे। उनकी मृत्यु से भारत को बड़ी शोचनीय क्षति पहुंची।

५. इग्लैंड के गृह मन्त्री फाक्लपिट- मेरी सम्मति में स्वामी दयानन्द एक जगत्पुरुष; सुधारक थे।

६. प्रिंसिपल रुद्र- इसका श्रेय केवल दयानन्द को ही है कि हिन्दू लोग आधी शताब्दी ही रूढ़िवाद और पौराणिक देवताओं की पूजा छोड़कर अत्यन्त शुद्ध ईश्वर को मानने लगे हैं।

# राम-सीता को भाई-बहिन बताना झूट

सहमत या सहामेट संस्था ने अयोध्या-दिल्ली में १५ अगस्त को प्रदर्शनी की और पोस्टर लगाये कि राम-सीता भाई बहिन थे। जिस दशरथ-जातक में यह लिखा है वह वाल्मीकि-रामायण के बाद का कल्पित, द्वेष-पूर्ण और झूटा है या उसके राम-सीता अयोध्या के न होकर कहीं अन्यत्र के होंगे। आश्चर्य है कि ऐसी झूटी बात के प्रचार के लिए मान्य केन्द्रीय मन्त्री श्री अर्जुनसिंह के मन्त्रालय ने जनता की गाढ़ी कमाई में से ३५ लाख रुपये क्यों और कैसे दे दिये ?

आदर्श पति-पत्नी राम-सीता को भाई-बहिन बताना झूट और वेद-विरोधी बौद्धों की वैदिक धर्म और इतिहास को कलंकित करने की घृणित चाल है जिससे आर्यों (हिन्दुओं) को सावधान रहने की आवश्यकता है। आर्य समाज 'सहमत' से सर्वथा असहमत है और उसे शास्त्रार्थ का आह्वान करता है कि वह अयोध्या के राम को सीता का भाई सिद्ध करे।

# धर्म-हीन राजनीति फाँसी है

'मेरे निकट धर्म-शून्य राजनीति का कोई महत्त्व नहीं। राजनीति धर्म की अनुचरी है। धर्म-हीन राजनीति को फाँसी समझिए। यह आत्मा का नाश कर देती है।'

—महात्मा गान्धी, नवजीवन, ६-४-१९२४

धर्म और राजनीति को अलग करने के लिए लाया जाने वाला विधेयक राष्ट्र के साथ विश्वास-घात है। धर्म का पर्यायवाची अंग्रेजी में है ही नहीं। रिलीजन का अर्थ मजहब-पन्थ-सम्प्रदाय किया जा सकता है, धर्म नहीं। इस विधेयक से उन वेद-स्मृति-उपनिषदों का स्वरूप विकृत हो जाता जिन पर हम आज तक गर्व करते आये हैं।

# शतपथ ब्राह्मण काण्ड ७ अध्याय ३ (४६) ब्राह्मण ४

अब अध्वर्यु आहवनीय में ही दो आप्यानवती ईंटें रखता है। गार्हपत्य में नहीं। यह तो यही लोक है वह स्वर्ग। निश्चय ही यहाँ पैदा हुए यजमान को स्वर्ग में ही जाना इष्ट है अतः इनको आहवनीय में रखता है गार्हपत्य में नहीं। इससे उसे स्वर्ग में ही भेजता है। १२

अब लोगेष्टकाएँ रखता है। ये दिशाएँ हैं जिनको अग्निरूपी लोकों में रखता है। १३

बाहर से अग्नि लाता है। यह इन लोकों से परली दिशाएँ हैं। १४ [अर्धप्रपाठक ५३]

इस वेदि से बाहर रखता है। ये इस वेदि ., । १५

अथवा विस्रस्त प्रजापति का रस सब दिशाओं में बिखरा उसे देवों ने संस्कार कर इनमें रक्खा वैसे ही इसमें यह रखता है। १६

अथवा जो रस इन लोकों तथा वेदि से परे बिखरा वह यह रस है। १७-१८

अब स्फ्य से ४ दिशाओं में इन ४ मन्त्रों य१२.१०२-५ से समेटता है। वह स्फ्य वज्र-वीर्य-वित्ति है-

पूर्व- मा मा हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवः सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। यजु १२.१०२

दक्षिण- अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह। वपां ते अग्निरिषितो अरोहत् ।।

पश्चिम- अग्ने यत् ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत् पूतं यच्च यज्ञियम्। तद् देवेभ्यो भरामसि ।।

उत्तर- इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम्।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥ यजु १२ १०३-५

प्रजापति मेरी हिंसा न करे जो पृथिवी का उत्पादक है, जिस सत्यधर्मा ने द्यौ को रचा, मनुष्यों को पहले रचा, प्रजापति का नाम 'क' है उसके लिए हवि से भक्ति करें। २०

हे पृथिवि, तू यज्ञ और जल के साथ घूम। तेरे वपन के प्रति प्रेरित बिजली बढ़ती है। यह कहकर भूमि की वपा लेकर पक्ष-सन्धि के बीच में रखता है; यह दक्षिण का बिखरा रस है। २१

हे अग्नि! जो तेरा शीघ्रकारी-आह्लादक-पवित्र-यज्ञिय स्वरूप है उसे इस देव कर्म के लिए लेते हैं। यह कहकर उसे लेकर पुच्छ-सन्धि-मध्य रखता है। मानो पश्चिम का बिखरा रस इसमें डालता है। उसे इस समय पश्चिम से न ले। ऐसा न हो कि यज्ञपथ से रस ले लूँ अतः इधर से ही लेता है। २२

मैं इष-ऊर्ज सत्य की योनि, महिष (अग्नि) की धारा यहाँ से लेता हूँ। यह मेरे शरीर-इन्द्रियों में प्रविष्ट हो, मैं हिंसा अन्न-रहित रोग को छोड़ता हूँ। यह कहकर बालू हटाता है, शुद्ध मिट्टी इस दिशा में बिछाता है अतः यहाँ प्रजा भोजनेच्छुक रहती है। उसे लेकर पक्षसन्धि-मध्य रखता है। उत्तर में बिखरा रस इस में डालता है। (महान् एवणावान् होने से आग महिष है)। २३

इन दिशाओं की सब ओर रखता नाना ईंटों को भी खड़े होकर रखता है, ये सूददोहा के साथ खड़ी ही रहती हैं। खड़ा अधिक बलवान् होता है। २४

ये यजुष्मती ईंटें हैं, बीच में ही रक्खी जाती हैं, पक्ष-पुच्छों में नहीं। २५

कहते हैं कि ये इसकी पकी ईंटें कैसे रक्खी जाती हैं। ये स्वयं रस से पकती हैं, जो कुछ इस वैश्वानर आग से मिलता है वह स्वयं पक जाता है। २६

अब उत्तर-वेदि बनाता है। यही द्यौ है, लोगेष्टका दिशाएँ हैं, अतः वेदि-उत्तरवेदि के मध्य रक्खी जाती लोगेष्टका दिशाएँ हैं। उसे एक युग वा ४० पद, जैसा चाहे, बनाता है, और बालू बिछाता है। उसका कारण बता दिया। २७

बालू-वीर्य उत्तरवेदि-योनि में बिछाता हैं जो उत्पादक होता है; उससे अब अपने को ढाँकता है, अपने सब में वीर्य धारण करता है, अतः वह सब शरीर से निकलता है। २८

अग्ने तव श्रवो वयः महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे॥ यजु १२.१०६ २९

हे प्रकाश में बसी, बड़े प्रकाश-युक्त आग, तेरा श्रव (धूम, जो यजमान को पर-लोक पहुंचाता है) तथा दीप्तियाँ बहुत चमकती हैं; तू बल से; हे क्रान्तदर्शी; दानी के लिए अन्न धारण करती है। २

पावकवर्चाः शुक्रवर्चाः अनूनवर्चाः उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे। १०७ ३०

पवित्र-सूर्य-विद्युत्-तेज वाली तू भानु से उद्दीप्त होती है; माता-पिता के मध्य पुत्र के समान विचरती हुई अग्नि! तू रक्षा करती और दोनों द्यावा-पृथिवी का सम्पर्क करती है; धूम से उस द्यौ का और वर्षा से इस भूमि का। ०

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर् सन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे इषः सन्दधुर् भूरिवर्पसश् चित्रोतयो वामजाताः॥ १०८

बल को न गिरने देने वाली आग; तू सुन्दर स्तुतियों के साथ अंगुलियों से रक्खी गयी दीप्त हो; तुझ में नाना रूप वाले, विचित्र रक्षक; सुन्दर उत्पन्न अन्न रक्खे जाते हैं। ३१

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम्॥ १०९

हे दीप्यमान अमर अग्नि; तू मनुष्यों के साथ बढ़; हमें ऐश्वर्य दे; तू दर्शनीय शरीर में विराजती और सनातन यज्ञ का सम्बद्ध करता है। ३२

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम्॥ ११०

हे अग्नि! तू यज्ञ के साधक; उत्तम ज्ञानी, निवासी; महान् प्रशंसनीय धन के दानी को, उत्तम ऐश्वर्यवाली भूमि को; अन्न और सनातन धन को धारण करती है। ३३

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा॥ १११

श्रेष्ठ मनुष्य सत्य-युक्त, महान्, विश्व-दर्शक अग्नि को सामने रखते हैं। हे अग्नि, हम मनुष्य सुनने वाले कान-युक्त; दैव्य विस्तृत तेरा और मानव युगों का वाणी से वर्णन करते हैं। ३४

वह यह वैश्वानर अग्नि ही है जिसे ६ ऋचाओं से आरम्भ के लिए ही इस बालू को बिछाते हैं। इसमें वीर्य बनी वैश्वानर आग को ही सींचते हैं। ६ ऋतुएँ संवत्सर हैं जो वैश्वानर है। ३५

कहते हैं कि जो वीर्य बालू कहा गया उसका क्या रूप है? सफेद है यह बताये। वीर्य सफेद है और पृश्नियों के समान हैं। ३६

कहते हैं कि वीर्य गीला, बालू सूखी, तो यह गीली कैसे मानी जाय? इसका उत्तर यह है कि जिन छन्दों को पढ़कर बालू बिछाता हैं वे रस हैं जो गीला होता है इससे बालू आर्द्र होती है। ३७

# यजुर्वेद अध्याय ६

२०६ हे रभ्रादद ! सविता देव की सृष्टि में तुझे प्राण-उदान के बल-वीर्य तथा पोषक प्राण के धारण-आकर्षण से लूँ; तू नारी है; मैं युद्ध में राक्षसों की गर्दनें काटता हूँ; तू वियोक्ता है, हमारे द्वेष-शत्रु हटा; तुझे द्यौ-अन्तरिक्ष-पृथिवी के लिए पितरों में बैठे दर्शक शुद्ध करें; तू विद्वदाश्रय है। १

१० तू-आगे नेता है; उन नेताओं का नेता हो इसे जान; देव सविता तुझे ऊँचा बैठायेगा; वह तुझे मधु-उत्तम फलयुक्त ओषधियों से सींचे; तू द्यौ को अग्र यश से छू; अन्तरिक्ष को मध्यम अवस्था से भर; पृथिवी को उत्तम नियम से दृढ़ कर। २

११ जो तेरे धाम हैं उन्हे पाने की हमें कामना है जहाँ अति स्तुत्य ईश्वर की बड़े प्रकाश वाली किरणें हैं यहाँ पर विद्वान् विष्णु का वह परम पद सर्वथा पाते हैं, मैं तुझे ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-का सेवक समझता हूँ तू ब्रह्म-क्षत्र-आयु-प्रजा को दृढ़ कर। ३

१२ विष्णु के कर्म देखो जिनसे जीवात्मा का जुड़वाँ सखा वह नियमों को बाँधता है। ४

१३ विष्णु के उस परम पद को विद्वान् सदा देखते हैं जो द्यौ में विस्तृत चक्षु-समान है। ५

१४ हे राजा ! तू सब ओर व्यापक है विद्वानों की प्रजा तेरे सब ओर रहें; तुझे जानें; इस तुझ यजमान को मनुष्यों के ऐश्वर्य सब ओर से मिलें; तू द्यौ का पुत्र है; यह तेरा पृथिवी पर राज्य है; जंगली पशु भी तेरे हैं।

१५ हे देव दुःख-छेदक तू समीप-जन-पालक-है अतः दैवी प्रजा काम्य सुख-प्रापक विद्वानों के पास जाती है। जैसे तुझ में धनी रमते हैं वैसे तू रम; वे हव्यों का भोग करें। ७

१६ हे धनी प्रजाओ ! रमो, हे वेदपति ! तू सत्य के धनों को धारण कर मनस्वी मैं आचार्य देव-चरित्र से तुझे पाश से छुड़ाता हूँ, तू समर्थ बन। ८

१७ हे शिष्य ! मैं आचार्य देव सविता की सृष्टि मे सूर्य-चन्द्र की बाहों तथा पृथिवी के हाथों से अग्नि-सोम गुणों के लिए प्रीत तुझको जल-ओषधियों के लिए नियुक्त करता हूँ, तुझे माता-पिता-सगा भाई-मित्र-साथी अनुमति दें, अग्नि-सोम पाने के लिए तुझे सप्रेम सींचता हूँ। ६३

१८ तू जल का पालक है, सभी दिव्य जल तथा उत्तम ग्रहीत देव-हवि का आस्वादन करें, तेरा प्राण वायु से; अंग याज्ञिकों से, यज्ञपति आशीर्वाद से संगत हों। १०

१६ हे घी में लगे यज्ञकर्ता-कारयिता स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों पशुओं का पालन करो, ऐश्वर्य-युक्त यजमान में वायुदेव से मित्र-समान बड़े आकाश से प्रिय सुख लो, उसमें घुसो, हवि की आत्मा-यज्ञ से संगत होओ। हे सुख-वर्षक ! वर्षक यज्ञ में यज्ञ-पति को स्थित कर। धार्मिक विद्वानों सत्कार तथा उत्तम वाणी हो। ११

२२० हे सुख-विस्तारक ! तू साँप-अजगर-मूढ़-व्याधा-समान कुटिल-अभिमानी-हिंसक न बन। तेरे लिए नमस् (अन्न-सन्मान) हो; तू अश्व के बिना ही घी-जल की धाराओं-समान सत्य के पथों को पा। १२

२१ हे विदुषी आप्त शुद्ध कन्याओ ! तुम देवों (अपने-अपने विद्वान पतियों) में सेवा-भाव से प्रविष्ट होकर हमें मिलो, हम तुम्हारे सब ओर व्याप्त हों। १३

२२ हे शिष्य ! मैं तेरे वाणी-प्राण-चक्षु-श्रोत्र-नाभि-उपस्थ-गुदा-पैर-चरित्र शुद्ध करता हूँ। १४

२२३ हे शिष्य ! तेरे मन-वाणी-प्राण-चक्षु-श्रोत्र बढ़ें। दुष्ट क्रूरता स्थित हुई हो वह नष्ट हो तेरे उद्देश्य पूरे हों। सब दिनों के लिए सुख हो। हे दोष-निवारक अध्यापक! इसे पाल, हे अध्यापिका! इसकी हिंसा मत करे। १५

२०१ देवीः आपः शुद्धाः वोड्ढ्वम सुपरिविष्टाः देवेषु
सुपरिविष्टाः वय परिवेष्टारः भूयास्म ॥ १३
२२ वाचम ते शुन्धामि प्राणम् ते शुन्धामि चक्षुः ते शुन्धामि श्रोत्रम् ते शुन्धामि नाभिम्
ते शुन्धामि मेढ्रम् ते शुन्धामि पायुम् ते शुन्धामि चरित्रान् ते शुन्धामि ॥ १४
२३ मनः ते आप्यायताम् वाक् ते आप्यायताम् प्राणः ते आप्यायताम् चक्षुः ते आप्यायतां
श्रोत्रम् ते आप्यायताम् । यत् ते क्रूरम् यद् आस्थितम् तत् ते आप्यायताम् निष्टचायताम्
तत् ते शुध्यतु शम् अहोभ्यः । आषधे त्रायस्व स्वधिते मा एनम् हिंसीः ॥ १५
२४ रक्षसां भागः असि निरस्त रक्षः इदम् अहम् रक्षः अभि तिष्ठामि इदम् अहम् रक्षः
अवबाधे इदम् अहम् रक्षः अधमं तमः नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वेः
स्तोकानाम् अग्निः आज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृते ऊर्ध्वनभसं मारुतं गच्छतम् ॥ १६
२५ इदम् आपः प्रवहत अवद्यं च मलं च यत् । यत् च अभि दुद्रोह अनृतम् यत्
च शेपे अभीरुणम् । आपः मा तस्माद् एनसः पवमानः च मुञ्चतु ॥ १७
२६ सं ते मनः मनसा सं प्राणः प्राणेन गच्छताम् । रेद् असि अग्निः त्वा श्रीणातु आपः त्वा
सम् अरिणन् वातस्य त्वा ध्राज्यै पूष्णः रंह्यै ऊष्मणः व्यथिषत् प्रयुतम् द्वेषः ॥ १८
२७ घृतम् घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबत अन्तरिक्षस्य हविः असि स्वाहा ।
दिशः प्रदिशः आदिशः विदिशः उद्दिशः दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १९
२८ ऐन्द्रः प्राणः अङ्गे अङ्गे निदीध्यद् ऐन्द्रः उदानः अङ्गे अङ्गे निधीतः ।
देव त्वष्टः भूरि ते सं सं एतु सलक्ष्मा यद् विषुरूपम् भवाति ।
देवत्रा यन्तम् अवसे सखायः अनु त्वा माता पितरः मदन्तु ॥ २०
२९ समुद्रं गच्छ स्वाहा अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा देवं सवितारं गच्छ स्वाहा
मित्रावरुणौ ,, अहोरात्रे ,, छन्दांसि ,,
द्यावापृथिवी ,, यज्ञम् ,, सोमम् ,, दिव्यं नभः ,,
अग्नि वैश्वानरं ,, मनः मे हार्दि यच्छ दिवं ते धूमः गच्छतु स्वः ज्योतिः
पृथिवीम् भस्मना आ पृण स्वाहा ॥ २१
३० मा अपः मा ओषधीः हिंसीः धाम्नः धाम्नः राजन् ततः वरुण नः मुञ्च ।
यद् आहुः अघ्न्याः इति वरुण इति शपामहे ,,
सुमित्रियाः नः आपः ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास् तस्मै सन्तु यः अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २२
२३१ हविष्मतीः इमाः आपः हविष्मान् आ विवासति ।
हविष्मान् देवः अध्वरः हविष्मान् अस्तु सूर्यः ॥ २३

## यजुर्वेद ६.१६

२२४ हे दुष्ट ! तू स्वार्थ-रक्षकों का भाग है निरस्त हो, यह मैं राक्षस का सामना करता बध करता, नीचे अँधेरे में ले जाता हूँ। हे वायु(जिज्ञासु) ! तू छोटे व्यवहार भी जान, घी-जल से द्यौ-पृथिवी आच्छादित हों, अग्रणी घी आदि और होम को जाने, सत्य व्यवहार में तुम दोनों ऊपर आकाश में वायु को मिलो । १६

२५ हे आप्तो ! जल-समान तुम जो निन्द्य, मल द्रोह असत्य तथा अभय को दिये शाप को बहा दो आपः तथा पवित्र व्यवहार मुझे उस पाप से छुड़ाये । १७

२६ हे वीर ! तेरा मन मन से, प्राण प्राण से मिले तू हिंसक है। क्रोधाग्नि तुझे पक्का करे। जल तुझे मिलें, वायु-सूर्य की गति के लिए करोड़ों शत्रु ऊष्मा से व्यथित हों। १८

२७ घी-जल पीने वालो ! घी-जल पियो, हे निवास-रक्षको ! वीरता-वसी नीति पियो (वर्तो), तू आकाश की हवि है, अनुकूल वाणी बोल, दिशा-प्रदिशा-सामने-पीछे-की दिशा-सब दिशाओं के लिए अनुकूल वाणी बोल । १६

२८ हे देव त्वष्टा छेदक सेनापति ! जीव का प्राण बिजली का उदान अंग-अंग में प्रकाशित हो जो तेरा विविध रूप चिह्न वाला है वह बहुत एकता करे । सखा-माता-पितर-देव तुझ जाते हुए को हर्षित करें । २०

२६ हे विद्वान् ! तू जहाज से समुद्र जा विमान से आकाश जा वेद-विद्या से देव सविता-मित्र-वरुण-दिन-रात-छन्द [४वेद]-द्यौ-पृथिवी-यज्ञ-सोम-दिव्य जल-विद्युत्-सर्वत्र प्रकाशमान अग्नि-जान । मेरा मन प्रिय कर । तेरा धुआँ सूर्य ज्योति तक सुखपूर्वक पहुंचे । यज्ञों-यन्त्रों की भस्म से पृथिवी को छड़ा दे । २१

३० हे राजन् ! जल-अन्नों को नष्ट न कर । हे वरुण ! उस स्थान-स्थान से हमें न छुड़ा। आप तथा हम कहते हैं कि गौएँ अहिंसनीय हैं अतः हमें न छोड़ । हमें जल-अन्नौषधियाँ सुमित्र-समान हों । दुष्ट मित्र-समान उसके लिए हो जो हम से द्वेष करता तथा जिससे हम द्वेष करते हैं। २२

३१ ये जल हवियुक्त हैं वायु हविष्मान् होकर सेवा करता है देव अध्वर यज्ञ-सूर्य हविमान् हो । २३

३२ हे ब्रह्मचारिणियो ! मैं तुम्हें गुरुकुल से घर को न आये अग्नि (सभ्य जन) की सभा में स्वयंवर के लिए बैठाता हूँ। तुम सूर्य-बिजली के प्राण-उदान के सब देवों के गुण जानने वाली हो। जो सूर्य के गुणों के पास हैं अथवा जिनके साथ सूर्य के गुण हैं उन्हें हम विवाह-यज्ञ में दें । २४

३३ हे कन्या ! हम विवाहिताएँ तुझे हृदय-सुख-मनन-सुख-प्रकाशन-सूर्य-गुण-ज्ञान पाने के लिए कहती हैं कि तू इस यज्ञ को उत्कृष्टता से ले । गुण-प्रकाश में विद्वानों में यज्ञ-कर्त्री हो । २५

३४ हे सोम (ऐश्वर्य-युक्त) राजन् ! आप सब प्रजा के पास रहें सब प्रजाएँ आप के पास रहें। आप तथा आप्त विद्या-विभूषित देवियाँ अग्नि तथा समिधा के समान मेरी पुकार सुनें । हे स्तोता विवेकी सभासदो ! तुम मेरी स्तुति-पुकार को सुनो । देव सविता ऐश्वर्यवान् आप मेरी स्तुति-पुकार सुनें । [ यह गुरु का उपदेश है ] २६

२३५ हे आप्त दिव्य गुण-युक्त प्रजाओ ! जो तुम्हारा अविनाशी तरंग-समान हवि-हितकारी श्रेष्ठ इन्द्रियों वाला अत्यन्त हर्षकारी भाग वीर्य-रक्षक विद्वानों के लिए है उसे सद्वाणी से लो। जैसे वे दिव्य भोग देते हैं वैसे ही तुम उन्हें कर दो । २७

## ४० यजुर्वेद अ० ६

२३२ अग्नेः वः अपन्नगृहस्य सदसि सादयामि इन्द्राग्न्योः भागधेयीस्थ मित्रावरुणयोः भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ। अमूः याः उप सूर्ये याभिः वा सूर्यः सह ताः नः हिन्वन्तु अध्वरम् ।। २४

३३ हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा। ऊर्ध्वं इमं अध्वरं दिवि देवेषु होत्राः यच्छ ।।२५

३४ सोम राजन् विश्वास् त्वं प्रजाः उपावरोह विश्वास् त्वां प्रजाः उपावरोहन्तु ।
शृणोतु अग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्तु आपः धिषणाः च देवीः ।
श्रोता ग्रावाणः विदुषः न यज्ञं शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ।। २६

३५ देवीः आपः अपां नपात् यः वः ऊर्मिः हविष्यः इन्द्रियावान् मदिन्तमः ।
तं देवेभ्यः देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यः येषां भागः स्थ स्वाहा ।। २७

३६ कार्षिः असि समुद्रस्य त्वा क्षित्या उन्नयामि ।
सम् आपः अद्भिः अग्मत सम् ओषधीभिः ओषधीः ।। २८

३७ यम् अग्ने पृत्सु मर्त्यम् अवाः वाजेषु यम् जुनाः। सः यन्ता शश्वतीः इषः स्वाहा ।। २९

३८ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्यां पूष्णः हस्ताभ्याम्। आददे रावा असि गभीरम इमं अध्वरं कृधि इन्द्राय सुषूतमम्। उत्तमेन पविना ऊर्जस्वन्तम मधुमन्तं पयस्वन्तम् निग्राभ्याः स्थ देवश्रुतस् तर्पयत मा ।। ३०

३९ मनः मे तर्पयत वाचम् मे तर्पयत चक्षुः मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयत आत्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत गणाः मे मा वितृषन् ।। ३१

४० इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवते इन्द्राय त्वा आदित्यवते इन्द्राय त्वा अभिमातिघ्ने ।
श्येनाय त्वा सोमभृते अग्नये त्वा रायस्पोषदे ।। ३२

४१ यत् ते सोम दिवि ज्योतिः यत् पृथिव्याम् यत् उरौ अन्तरिक्षे ।
तेन अस्मै यजमानाय उरु राये कृधि अधि दात्रे वोचः ।। ३३

४२ श्वात्राः स्थ वृत्रतुरः राधोगूर्ताः अमृतस्य पत्नीः ।
ताः देवीः देवत्रा इमं यज्ञं नयत उपहूताः सोमस्य पिबत ।। ३४

४३ मा भेः मा सं विक्थाः ऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथां ऊर्जं दधाथाम् ।
पाप्मा हतः न सोमः ।। ३५

४४ प्राक् अपाक् उदक् अधराक् सर्वतः त्वा दिशः आ धावन्तु ।
अम्ब निष्पर सं अरीः विदाम ।। ३६

२४५ त्वम् अङ्ग प्र शंसिषः देवः शविष्ठ मर्त्यम् ।
न त्वद् अन्यः मघवन् अस्ति मर्डिता इन्द्र ब्रवीमि ते वचः ।। ३७ ।।

# यजुर्वेद अ० ६

२३६ तू कृषक है तुझे समुद्र (आकाश) की [जल-पूर्णता के लिए उत्साहित करता हूँ। जल जल से औषधियाँ औषधियों से मिलें। २८

३७ हे अग्रणी ! तू युद्धों में जिसे बचाता तथा अन्नों में पहुंचाता है वह अविनाशी कमनीय प्रजा को उत्तम वाणी से ले जाने वाला हो। २६

३८ देव सविता की सृष्टि में अश्विओं की बाहों तथा पोषक औषधियों के बाहों (रोग-नाशक-धातु-साम्य-कारक गुणों) से तुझको लेता हूँ, तू कर-दाता है, इन्द्र जीव के लिए इस गम्भीर यज्ञ को सुखोत्पादक, उत्तम वचन से ऊर्जस्वी-मधुर दुग्धयुक्त कर, हे विद्वानों की सुनने वालो ! तुम स्वीकरणीय हो, मुझे तृप्त करो। ३०

३६ हे प्रजाजनो ! मुझ राजा के मन-वाक्-प्राण-चक्षु-श्रोत्र-आत्मा-प्रजा-पशु-सेवकों को तृप्त करो, मेरे सेवक प्यासे न रहें। ३१

४० हे सभापति ! हम तुझे ऐश्वर्य के लिए वसु-रुद्र आदित्य वाला, अभिमानी-हन्ता, बाज-वत् ऐश्वर्य पाने के लिए, धन-पोषण और अग्नि-विद्या के लिए स्वीकार करते हैं। ३२

४१ हे ऐश्वर्य-प्रेरक सभापति ! जो तेरी ज्योति द्यौ-पृथिवी-बड़े आकाश में है उससे तू इस दाता यजमान को बड़ा कर और धन में बढ़ा। ३३

४२ हे विदुषी स्त्रियो ! तुम मेघ-नाशक बिजली-वत् धनवती शीघ्रकारी होकर वह यज्ञ विद्वानों में ले जाओ तथा बुलाई जान पर साम-अमृत पान करो। ३४

४३ हे स्त्री ! बलवती तू मत डर, न काँप, बल धारण कर, दोनों द्यौ-भू वत् बली होकर पराक्रमी बनो, पाप नष्ट हो, चन्द्रवत् बनो। ३५

४४ हे माता ! सुख-प्रापक प्रजा तेरे पास पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण सब दिशा से आये, तू पाल और जान। ३६

२४५ हे बली समृद्ध सभापति देव, तू मनुष्य की प्रशंसा कर, हे इन्द्र ! तुझसे अन्य सुख-दायक नहीं है अतः तुझ से यह वचन कहता हूं। ३७

## सारांश तथा संगति

इस अध्याय में राज्य की शिक्षा १, कार्य २, आश्रय ३, सभाध्यक्ष ४, विष्णु का परम पद ५, उपासना ६, राजा-सभा-कर्तव्य ७, गुरु-उपदेश ८,६, यज्ञ १०, होम का फल ११, विद्वान्-लक्षण १२, मनुष्य-कर्तव्य १३, परस्पर व्यवहार १४-१६, दोष हटाना १७, योद्धा १८, रण-व्यवहार १६-२०, योद्धा २१, राज्य २२, साध्य-साधन २३, राज्यार्थ उपदेश २४, राज्य २५, राजा-प्रजा का २६-३०, परस्पर व्यवहार ३१, प्रजा-द्वारा सभापति का उत्कर्ष ३२, सभापति की प्रेरणा ३३, सभापति का चुनाव और लक्षण ३२, प्रजा-राजसभा की परस्पर प्रतिज्ञा ३१, सभापति का प्रयोजन ३२, कर्तव्य ३३, स्त्रियों का कार्य ३४, परस्पर व्यवहार ३५, माता-पिता के प्रति कर्तव्य ३६, सभापति को प्रजा का निर्देश ३७, है अतः इसके साथ अध्याय ५ की संगति जाननी योग्य है।

—❀—

विषय–सूची, ऋषि, देवता: छन्द, स्वर, विनियोग।

१ वाचस्पतये इत्यादि० ३ ततसत्यमुपरि-धर्मादि पदार्थविद्या ६ ममेत्यादि सोमादिपदार्थ विद्या १०-११ एष ते योनि: कार्यकारण-विद्या। १३ प्रजनयन् पदार्थविद्या। २० पंहि यज्ञं प० २१ सोमादि प०। २२-२४ यज्ञस्य इत्यादि प०। २५ ध्रुवं ध्रुवेण इत्यादि योग विद्यादि प०। २७ प्राणाय मे इत्यादि प०। २६ कोऽसीति प्रश्नोत्तरादि। ३० मासनामेश्वरादि प०। ३ कार्य कारणादिविद्या। ३२ येषामिन्द्रो युवा सखेश्वरादि प०। ३६महत्वन्तं वृषभं इत्यादि। ४३ अग्नीश्वर-प्रार्थनादि प०। ४८ कामेश्वर-विद्या।

ऋषि– गोतम १-६। वसिष्ठ ७। मधुच्छन्दा ८, ३३। गृत्समद ९, ४। त्रसदस्यु १०। मेधातिथि ११। वत्सार काश्यप १२-२३। भरद्वाज २४-२५, ३६। देवश्रवा २६-३०। विश्वामित्र ३१; ३५-३८। त्रिशोक ३२। वत्स ४०। प्रस्कण्व ४१। कुत्स ४२। आङ्गिरस ४३-४८॥

देवता– प्राण १। सोम २, ३१। विद्वान् ३, ४६। मघवा ८। ईश्वर ५। योगी ६। वायु ७ इन्द्र-वायु ८। मित्र-वरुण ९–१०। अश्वी ११। विश्वेदेवा: १२–१७; १९, २२–२४, ३२-३४। प्रजापति १८, २६–३० ३५–३८ ४० ४४ ४५। यज्ञ २० २६। वैश्वानर २५। यज्ञपति २७। २८। इन्द्राग्नि ३१। सेनापति ३९। सूर्य ४१–४२। ईश्वर ४३। वरुण ४७। आत्मा ४८।

छन्द:– अनुष्टुप् १ २२। पंक्ति २ ५ १२ १६ ३९। ब्राह्मी जगती ३। उष्णिक ४ ३८-३६ ४८ त्रिष्टुप् ६ ११ १६ १८ २६ ३१ ३५–३८ ४२–४७। जगती ७ १२ १६ २० ३४५। गायत्री ८ ३२—३४ ४०–४१। आसुरी गायत्री ९ २७। ब्राह्मी बृहती १० २६, ०२८ ब्राह्मी उष्णिक ११। प्राजापत्या गायत्री १३ १८ ३०। ब्राह्मी अनुष्टुप् १५। साम्नी गाम १६ २७। ब्राह्मी त्रिष्टुप् १७ २१। याजुषी जगती २१। अष्टि २२। प्राजापत्या-साम्नी अनुष्टुप्, आर्ची गायत्री २३। याजुषी अनुष्टुप्, बृहती २५। आसुरीअनुष्टुप्–उष्णिक२७ ३ आर्ची-साम्नी पंक्ति २६। याजुषी पंक्ति ३०। आर्ची उष्णिक् ३२। आर्ची बृहती ३३। साम्नी उष्णिक३६। प्राजापत्या त्रिष्टुप् ३७–३८। साम्नी त्रिष्टुप् ३९। प्राजापत्या, आर्ची जगती ४७॥

स्वर– पृष्ठ २ पर बताए छन्द के अनुसार।

विनियोच– सोम–याग।

२४६ वाचस्पतये पवस्व वृष्णः अंशुभ्यां गभस्तिपूतः।
देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागः असि ॥ १

४७ मधुमतीः नः इषः कृधि यत् ते सोम अदाभ्यं नाम जागृवि तस्मै ते सोम सोमाय। स्वाहा स्वाहा उरु अन्तरिक्षम् अनु एमि ॥ २

४८ स्वाङ्कृतः असि विश्वेभ्यः इन्द्रियेभ्यः दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यः मनः त्वा अष्टु स्वाहा ।
त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यः त्वा मरीचिपेभ्यः देव अंशः यस्मै त्वा ईडे ।
तत् सत्यम् उपरिप्रुता भङ्गेन हतः असौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा ॥ ३

४९ उपयामगृहीतः असि अन्तः यच्छ मघवन् पाहि सोमम् । उरुष्य रायः आ इषः यजस्व ॥ ४

५० अन्तः ते द्यावापृथिवी दधामि अन्तः दधामि उरु अन्तरिक्षम् ।
सजूः देवेभिः अवरैः परैः च अन्तर्यामे मघवन् मादयस्व ॥ ५

५१ स्वाङ्कृतः...मरीचिपेभ्यः [मन्त्र तीन के समान] उदानाय त्वा ॥ ६

५२ आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतः विश्ववार ।
उपो ते अन्धः मद्यम् अयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयं वायवे त्वा ॥ ७

५३ इन्द्रवायू इमे सुताः उप प्रयोभिः आगतम् । इन्दवः वाम् उशन्ति हि ।
उपयामगृहीतः असि वायवे इन्द्रवायुभ्यां त्वा एषः ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥ ८

५४ अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमः ऋतावृधा । मम इत् इह श्रुतं हवम् ।
उपयामगृहीतः असि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ ९

५५ राया वयं ससवांसः मदेम हव्येन देवाः यवसेन गावः ।
तां धेनुम् मित्रावरुणा युवं नः विश्वाहा धत्त अनपस्फुरन्तीं एषः ते योनिः ऋतायुभ्यां त्वा ॥ १०

५६ या वां कशा मधुमती अश्विना सूनृतावती । तया यज्ञम् मिमिक्षतम् ।
उपयामगृहीतः असि अश्विभ्यां त्वा एषः ते योनिः माध्वीभ्यां त्वा ॥ ११

५७ तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदम् स्वर्विदम् । प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिम् आशुं जयन्तं अनु यासु वर्धसे । उपयामगृहीतः असि शण्डाय त्वा एषः ते योनिः वीरतां पाहि अपमृष्टः शण्डः देवाः त्वा शुक्रपाः प्रणयन्तु अनाधृष्टा असि ॥ १२

५८ सुवीरः वीरान् प्रजनयन् परि इहि अभि रायस्पोषेण यजमानम् ।
संजग्मानः दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः शुक्रस्य अधिष्ठानं असि ॥ १३

५९ अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम ।
सा प्रथमा संस्कृतिः विश्ववारा सः प्रथमः वरुणः मित्रः अग्निः ॥ १४

६० सः प्रथमः बृहस्पतिः चिकित्वान् तस्मा इन्द्राय सुतं आजुहोत स्वाहा ।
तृम्पन्तु होत्राः मध्वः याः स्विष्टाः याः सुप्रीताः सुहुताः यत् स्वाहा अयाट् अग्नीत् ॥ १५

६१ अयं वेनः चोदयत् पृश्निगर्भाः ज्योतिजरायुः रजसः विमाने । इम अपां सङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्राः मतिभिः रिहन्ति । उपयामगृहीतः असि मर्काय त्वा ॥ १६

२४६ वाचस्पति ईश्वर के लिए पवित्र हो, बलवान् के बाहु-समान किरण-वेदवाक से पवित्र विद्वान् होकर उन विद्वानों के संग से पवित्र बन जिनका सेवक है। १

४७ हे सोम विद्वान् ! तू हमारे अन्न मधु-युक्त कर, जो तेरा अहिंसक जागरूक नाम है अतः ऐश्वर्य तथा तेरे लिए सत्य क्रिया-वचन-महान् अवसर पाऊँ। २

४८ हे सूरजवत् दिव्य आत्मा ! तू दिव्य सब इन्द्रियों, पार्थिव किरण-पालक देवों से स्वयं कृत मन-वाक पा। हे सुन्दर भूषित ! जिस सूरज के जानने को तेरी स्तुति करता हूँ वह सत्य है पर वर्तमान तेरे भजन से वह शत्रु फट मरता है अतः प्राण-व्यान के लिए स्तुति करता हूँ। ३

४६ हे धनी-समान योगिन् ! तू यमों के गृहीतावत् है अतः अन्दर के प्राणादि का निग्रह कर। सोम को बचा, क्लेशों का अन्त कर; धन और इच्छाएँ सिद्ध कर। ४

५० हे धनी-समान् योगिन् ! तेरे अन्दर सूरज-भूमि-समान विज्ञान और पर्याप्त अवकाश रखता हूँ तू देव-निकृष्ट-उत्तमों के साथ मित्रवत् अन्दर के यम आदि से हृष्ट कर। ५

५१ (मन्त्र ३ के समान) हे---उदान के लिए स्तुति करता हूँ। ६

५२ हे पवित्रता-रक्षक ववायु योगिन् ! तू हमें हजारों निश्चित गुणों से भूषित कर। हे सब आनन्द के वरने वाले तेरा हर्षकारक अन्न पास लाता हूँ। हे देव ! जिस तेरा पूर्ण-पेय जल है, उसे मैं तेरे प्राण के लिए लेता हूँ। ७

५३ हे सूर्य-वायु-समान योगोपदेशक--अभ्यासी जन ! ये निष्पन्न सुख-कारक जल आदि तुम्हें चाहते हैं अतः काम्य लक्षणों-सहित आओ ! तू वायु के लिए नियम-गृहीत है। यह योग तेरा घर है मैं तुमको विद्युत्प्राण-समान सेवन-योग्य पूरक-रेचक-युक्त चाहता हूँ। ८

५४ हे प्राण-उदान वत् विज्ञान-वर्धक गुरु-शिष्यो ! तुम्हारा यह सोम (योगैश्वर्य) तैयार है, तुम दोनों यहाँ मेरी स्तुति सुनो। हे यजमान ! तू यम-नियम-युक्त हो है अतः प्राणोदान- सहित वर्तमान तुझको ग्रहण करता हूँ। ९

५५ हे विवेक-युक्त विद्वानो! हम, भूसे से गौ-समान, ग्रहण-योग्य धन से प्रसन्न रहें। हे प्राणवत् अध्यापक-शिष्यो ! तुम दोनों हमारे लिए सब दिन योग-विद्या युक्त वेदवाणी रूपी गौ धारण करो, हे विद्वान् ! यह ज्ञान तेरा घर है। तुझे हम सत्येच्छुकों के लिए लेते हैं। १०

५६ हे सूर्य-चन्द्रवत् अध्यापक-अध्येताओ!जो तुम्हारी उषा-समान मधुर वाणी है उससे योग-यज्ञ-सिद्ध करो। हे शिष्य ! तू नियम-गृहीत है, यह योग तेरा घर है अतः तुझे प्राणापान-युक्त और अध्यापक को सुनीति- योगरीति से लेता हूँ। ११

५७ उस योग को, जिसे तू सब प्राचीन पूर्ववर्ती-वर्तमान योगियों-समान अत्यन्त श्रेष्ठ, हृदय-आकाश में स्थित, सुख-दायक, अविद्या-प्रतिकूल, शीघ्र, जयी, इन्द्रिय-कम्पक मानकर दुहता है, जिन में बढ़ता है, उसे वीर्य-रमक योगि-जन तुझे दें। तू यम-नियम-युक्त है, तुझ शम-युक्त के लिए अदम्य वीरता हो, उसे बचा, यह सुख-हेतु है, तू शुद्ध शम-युक्त हो। १२

२५८ सुवीर तू वीर बनाता हुआ, सब ओर जा, दाता को धन-पुष्टि से संगत कर, द्यौ-पृथिवी से वीर्यवान् होकर सूर्य-दीपन से अन्धकार निरस्त कर; तू शोधक योग का आधार है १३

२५९ हे देव सोम शिष्य ! हम तुझे सुवीर्य, अखण्डित ज्ञान-धन-पोषण के दाता हों; वह आदिम संस्कृति सब की वरणीय है, श्रेष्ठ अग्निवत् अध्यापक तेरा पहला मित्र हो। १४

२६२ मनः व येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथः द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस् तुविनृम्णः अस्य अश्रीणीत आदिशं गभस्तौ एषः ते योनिः प्रजाः ।
पाहि अपमृष्टः मर्कः देवाः त्वा मन्थिपाः प्रणयन्तु अनाधृष्टा असि ।। १७
६३ सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् रायस्पोषेण यजमानम् । संजग्मानः दिवा पृथिव्या
मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तः मर्कः मन्थिनः अधिष्ठानं असि ।। १८
६४ ये देवासः दिवि एकादश स्थ पृथिव्या अधि एकादश स्थ ,
अप्सुक्षितः महिना एकादश स्थ ते देवासः यज्ञं इमं जुषध्वम् ।। १९
६५ उपयामगृहीतः असि आग्रयणः असि स्वाग्रयणः । पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपति
विष्णुः त्वां इन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाहि अभि सवनानि पाहि ।। २०
६६ सोमः पवते सोमः पवते अस्मै ब्रह्मणे अस्मै क्षत्राय अस्मै सुन्वते यजमानाय
पवते इषे ऊर्जे पवते अद्भ्यः ओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय
पवते विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः एषः ते योनिः विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः ।। २१
६७ उपयामगृहीतः असि इन्द्राय त्वा बृहद्वते वयस्वते उक्थाव्यं गृह्णामि । यत्
ते इन्द्र बृहद्वयः तस्मै त्वा विष्णवे त्वा एषः ते योनिः उक्थेभ्यः त्वा देवेभ्यः त्वा
देवाव्यं यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि ।। २२ ।। ६८ मित्रावरुणाभ्यां
त्वा देवाव्यं यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि इन्द्राय त्वा देवाव्यं यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि इन्द्राग्निभ्यां ,, इन्द्रावरुणाभ्यां ,, ,,
बृहस्पतिभ्यां ,, इन्द्राविष्णुभ्यां ,, ।। २३
६९ मूर्धानं दिवः अरतिं पृथिव्याः वैश्वानरम् ऋते आ जातम् अग्निम् ।
कविं सम्राजम् अतिथिं जनानाम् आसन्ना पात्रम् जनयन्त देवाः ।। २४
७० उपयामगृहीतः असि ध्रुवः असि ध्रुवक्षितिः ध्रुवाणां ध्रुवतमः अच्युतानां
अच्युतक्षित्तमः एषः ते योनिः वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोमम्
अव नयामि । अथा नः इन्द्रः इद् विशः असपत्नाः समनसः करत् ।। २५
७१ यस् ते द्रप्सः स्कन्दति यस् ते अंशुर् ग्रावच्युतः धिषणयोः उपस्थात् ।
अध्वर्योः वा परि वा यः पवित्रात् तम् ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् स्वाहा
देवानाम् उत्क्रमणम् असि ।। २६
२७२ प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व
उदानाय ,, वाचे ,,
क्रतुदक्षाभ्यां ,, श्रोत्राय ,,
चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ।। २७

२६० वह पहला आचार्य विद्वान् है उस ऐश्वर्यशाली के लिए सत्य वाणी और श्रेष्ठ व्यवहार करो मधुर होता और मधुर स्त्रियाँ मधुर गुणी योगिना स्त्रियाँ तृप्त हों और योगी तृप्त करे। १५

६१ यह मनोहर चन्द्रमा, अन्तरिक्ष को मध्य में रखने वाले लोक-समान, ज्योतिर्मय तारों को जरायुवत् ढाँकने वाला, लोकों के मध्य परिमाण-हित आकाश में गति करता है। इसे जल-सूर्य संग्राम में मेधावी-जन बुद्धियों से सत्कृत करते हैं। हे सभाध्यक्ष ! तू राज्य-भाग-युक्त है, मर्क [मृत्यु-निमित्त वायु-समान ] तुझे [स्वीकार करता हूं]। १६

६२ जिन धर्म-कार्यों में चेष्टाओं से वज्रवत् तीव्र मन-समान विविध-पालक गतिशील राजा-प्रजा बुद्धि से इच्छा करते हैं उनमें इस धनी सभापति के उँगली के संकेत पर शत्रुओं को भून डालो, मरण-कारी अनीति दूर हो, प्रजा बचा, यह तेरा घर है, शत्रु-नाशकों के पालक देव प्रसन्न करें हे प्रजा ! निर्भय रह। १७

६३ हे न्यायाधीश ! सुप्रजा वाला तू सुप्रजा बनाकर यजमान को धन-पुष्टि से जान। सत्यासत्य का मन्थनकर्ता द्यौ-पृथिवी से गुणी होकर तू न्यायकारियों का घर है अतः तेरी सूर्यवत् दीप्ति से मृत्यु-कारण अन्यायी दूर हो। १८

६४ जो द्यौ में ११ देव (प्राणादि रुद्र) हैं, पृथिवी पर ११ (७ वसु-अहंकार-महत्तत्व-प्रकृति)हैं, प्राणस्थ अपनी महिमा से ११ (ज्ञान-कर्म-इन्द्रिय-मन) हैं, तद्वत् हे राज-सभासदो ! तुम इस यज्ञ (व्यवहार) का सेवन करो। १९

६५ हे राजन् ! आप नियम-युक्त, अग्रणी, उत्तम कर्मों में आगे हैं, यज्ञ-यज्ञपति की रक्षा करें। विद्वान्-यज्ञ आपकी तथा आप उनकी और ऐश्वर्यों की तन-मन-धन से रक्षा करें। २०

६६ यह चन्द्रवत् सौम्य राजा-प्रजा इस ब्राह्मण-क्षत्रिय-सिद्धान्तज्ञ-यजमान (संगति-कारक) को जाने, पवित्र हो, पवित्र करे, अन्न-बल-जल-प्राण-औषधि को पवित्र करे, सूर्य-भूमि सत्य व्यवहार के लिए पवित्र हों। हे राजन् ! यह तेरा राज-धर्म सब दिव्य गुणों, सब विद्वानों के लिए हो। २१

६७ हे सेनापति ! तू नियम-युक्त है, अतः राजा मैं उत्तम कर्म-बड़ी आयु वाले, परम ऐश्वर्य-युक्त तुझे प्रशंसनीय स्तोत्र-शस्त्र देता हूँ। जो तेरी बड़ी आयु है उसके पालन के लिए यज्ञ के लिए तुझे लेता हूँ, यह तेरा घर है, प्रशंसनीय कार्यों, दिव्य गुणों, यज्ञ की आयु के लिए देवों के रक्षक तुझे लेता हूँ। २२

६८ मैं यज्ञोन्नति के लिए देव-रक्षक तुझे मित्र-वरुण-इन्द्र बनने, विद्युत्-अग्नि-जल-विद्या जानने, राजा-विद्वान् बनने तथा ईश्वर-यज्ञ पाने के लिए लेता हूँ। २३

६९ देव धनुर्वेदी विद्वान् द्यौ के सिर-समान, पृथिवी-प्राप्त, सत्य में प्रसिद्ध, सब नरों को सुखद, जनों की अतिथिवत् पूज्य, मुख्य रूप में शिल्प रखने वाली क्रान्तदर्शी आग पैदा करें। २४

७० हे ईश्वर ! आप यमों से ग्राह्य, अटल, पृथिवी जिसमें ध्रुव है, ध्रुव आकाशादि में ध्रुवतम, कारण-द्रव्य तथा जीवों के सर्वथा निवासक हैं। यह सत्य आपका घर है। सब के नेता, जगदुत्पादक आप के लिए ध्रुव मन-वाणी से ध्रुव स्वीकार करता हूँ, दुःख-विदारक आप हमारी प्रजा को शत्रु-रहित तथा समान मन वाली करें। २५

२७१ हे यज्ञपति ! जो तेरा पदार्थ-समूह, मेघ-छुटा यज्ञ-भाग द्यौ-भूमि के निर्मल समीप से, या जो अध्वर्यु आदि के सब ओर वायु के साथ जाता है उसे मैं तुझे सत्य वाणी-मन से संकलिपत-समान देता हूँ। क्योंकि तू देवों का ऊपर उठाने वाला तेज है। २६

२७३ आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ओजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व आयुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यः मे प्रजाभ्यः वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८

७४ कः असि कतमः असि कस्य असि कः नाम असि यस्य ते नाम अमन्महि यं त्वा सोमेन अतीतृपाम। भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम् सुवीरः वीरैः सुपोषः पोषैः ॥ २९

७५ उपयामगृहीतः असि मधवे त्वा उपयामगृहीतः असि माधवाय त्वा

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| ,, | शुक्राय | ,, | शुचये | ,, |
| ,, | नभसे | ,, | नभस्याय | ,, |
| ,, | इषे | ,, | ऊर्जे | ,, |
| ,, | सहसे | ,, | सहस्याय | ,, |
| ,, | तपसे | ,, | तपस्याय | ,, |
| ,, | अंहसस्पतये त्वा ॥ | ३० | | |

७६ इन्द्राग्नी आघतम् सुतम् गीर्भिर् नभः वरेण्यम्। अस्य पातम् धिया इषिता। उपयामगृहीतः असि इन्द्राग्निभ्याम् त्वा एषः ते योनिः इन्द्राग्निभ्याम् त्वा ॥ ३१

७७ आ घा ये अग्निम् इन्धते स्तृणन्ति बर्हिः आनुषक्। येषाम् इन्द्रः युवा सखा। उपयामगृहीतः असि अग्नीन्द्राभ्याम् त्वा एषः ते योनिः अग्नीन्द्राभ्याम् त्वा ॥३२

७८ ओमासः चर्षणीधृतः विश्वे देवासः आगत। दाश्वांसः दाशुषः सुतम्। उपयामगृहीतः असि विश्वेभ्यस् त्वा देवेभ्यः एषः ते योनिः विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः ॥ ३३

७९ विश्वे देवासः आगत शृणुता मे इमं हवम्। आ इदं बर्हिः निषीदत। उपयामगृहीतः असि विश्वेभ्यस् त्वा देवेभ्यः एषः ते योनिः विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः ॥३४

८० इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्याते अपिबः सुतस्य। तव प्रणीती तव शूर शर्मन् आ विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः। उपयामगृहीतः असि इन्द्राय त्वा मरुत्वते एषः ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५

८१ मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानम् अकवारिम् दिव्यम् शासम् इन्द्रम्। विश्वासाहम् अवसे नूतनाय उग्रं सहोदाम् इह तम् हुवेम। उपयामगृहीतः असि इन्द्राय त्वा मरुत्वते एषः ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते। उपयामगृहीतः असि मरुतां त्वा ओजसे ॥ ३६

२८२ सजोषाः इन्द्र सगणः मरुद्भिः सोम पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जहि शत्रून् अप मृधः नुदस्व अथ अभयं कृणुहि विश्वतः नः। उपयामगृहीतः असि इन्द्राय त्वा मरुत्वते एषः ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३७

२८३ मरुत्वान् इन्द्र वृषभः रणाय पिब सोमम् अनुष्वधम् मदाय। आ सिञ्चस्व जठरे मध्वः ऊर्मिं त्वम् राजा असि प्रतिपत् सुतानाम्। उपयामगृहीतः असि इन्द्राय त्वा मरुत्वते एषः ते योनिः इन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥३८

# यजुर्वेद अ॰ ७

२७२ हे वर्चा (प्रकाश-दीप्ति-अन्न-विद्या-बल-सत्यशक्ति-विज्ञान)देने वाले सूर्य-चन्द्रवत् [illegible] गुरु ! आप मेरे वर्चा के लिए मेरे प्राण-व्यान-उदान-वाक्-बुद्धि-मन-श्रोत्र-चक्षु पवित्र करें। २७

७३ हे वर्चोदा सभा-न्यायाधीश-योगियो ! आप मेरे वर्चा के लिए मेरे आत्मा-ओज-आयु-सबप्रजा के लिए पवित्र करें। २८

७४ आप कौन हैं ? बहुतों में कौन हैं ? किसके हैं ? किस नाम के हैं ? जिस तेरे नामको जानें, जिस तुझे सोम-दूध से तृप्त करें (ऐसे पूँछे। सभापति का उत्तर-) भू-अन्तरिक्ष-स्वर्गाभिलाषी प्रजाओं से सुप्रजा, वीरों से वीर और पोषक पदार्थों से सुपुष्ट बनूँ। २९

७५ हे राजा-प्रजा ! तुम नियम-बद्ध हो, तुम्हें मधु-माधव-शुक्र-शुचि-नभः-नभस्य-इष-ऊर्ज-सहः-सहस्य तपः-तपस्य और १३ वें अधिक मास के लिए बल की रक्षार्थ हम लेते हैं। ३०

७६ हे सूर्य-अग्निवत् राजा-प्रजा ! आओ, तुम दोनों स्व-वचनों से वरणीय सुख उत्पन्न करो; बुद्धि-कर्म से इसकी रक्षा करो। [परस्पर कहते हैं—] तू नियम-बद्ध है; तुझे राजा-मन्त्री के लिए मानते हैं; यह सभा तेरा घर है, तुझे राजा-मन्त्री के लिए लेते हैं। ३१

७७ जो बिजली-आग को दीप्त करते, अन्तरिक्ष को प्रयुक्त करते, आकर्षित करते; जिनका युवा सभापति सखा है; तू राजा-मन्त्री के लिए स्वीकृत है; यह तेरा घर है, उनके लिए तुझे लें। ३२

७८ हे जन-पोषक रक्षक सब विद्वानो ! ज्ञानी तुम दानी का पुत्र लो; हे पुत्र ! तू नियम-बद्ध है, यह गुरुकुल तेरा घर है; तुझको सब विद्वानों के लिए देता हूँ। ३३

७९ सब विद्वानो ! आओ; मेरी यह प्रार्थना सुनो। इस आसन पर बैठो। हे पुत्र ! तू नियम-बद्ध है, यह तेरा घर है; तुझे सब विद्वानों के लिए देता हूँ। ३४

८० हे श्रेष्ठ प्रजायुक्त सम्राट् ! यहाँ ऐश्वर्य की रक्षा कर, जैसे कि तूने अंगुलि से चलाये राज्य में सोम पिया है, हे शूर ! तेरे न्यायालय में सुयज्ञ वाले मेधावी तेरी नीति मानते हैं; हम प्रजा-सहित तुझे मानते हैं, यह राज्य तेरा घर है अतः प्रजा वाले ऐश्वर्य के लिए राजा मानते हैं। ३५

८१ हम नवीन रक्षार्थ सैनिक-युक्त उत्तम बढ़े हुए; अधर्मी-शत्रु, शुद्ध, सबके सहन-शील; उग्र; बलदायक शासक को राजा मानते हैं। आप नियम-बद्ध हैं. यह आपका घर है। सैनिकों के ओज के लिए आप नियम-बद्ध हैं। ३६

८२ हे शूर-विद्वान्-सेनापति ! आप सैनिकों-गण-सहित प्रीति-युक्त सूर्यवत् हैं। सोम पीजिए। संग्राम दूर कर हमें सर्वत्र अभय कीजिए। नियम-बद्ध, वायु-अस्त्र वाले आपका यह घर है। ३७

८३ हे प्रजा-सेना-पति ! रण के लिए बली आप हर्ष के लिए अन्न के साथ सोमादि औषध पीजिए, पेट में शहद की लहर सींचिए ; आप प्रत्येक पद पर अन्नों के राजा नियम-बद्ध हैं। वायव्य-अस्त्रों वाले आपके यह सेना-संग्राम घर हैं। ३८

८४ हे महान् इन्द्र परमेश्वर ! आप योग से प्राप्य हैं, यह सृष्टि घर है। हम आपका ऐश्वर्य मानते हैं, आप महान् न्यायी-तुल्य मनुष्यों को सुख से भरने वाले, व्यावहारिक-पारमार्थीक दोनों बुद्धि वाले हमें जानने वाले, अतुल पराक्रमी जीवों के साथ सुकृती; बल-सहित पराक्रम बढ़ाते हैं। ३९

२८५ हे ईश्वर ! आप यमादि योग से प्राप्य हैं अतः हम महान् ऐश्वर्यार्थ आपका आश्रय लें। यह योग आपका घर है, ऐश्वर्य का निमित्त है। महान् वर्षाकारी - मेघ-समान स्तोता की स्तुतियों तथा बल से योगी बढ़ता है। ४०

श्रीमन् ! नमस्ते, आपका वर्ष २-११-९३ को पूर्ण हो चुका, कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजिये ।

नया प्रकाशन—
वेदमेंसबविद्या १०)
अथर्ववेद सौ)
संस्कृत—प्रबोध १०)
साम वंश ब्राह्मण, देवताध्याय, संहितोपनिषद्, प्रत्येक १०)
शतपथ भाग ३ प्रत्येक २०)
पारिजा. खण्डन २०
अष्टाध्यायी २०)

सम्पादक वीरेन्द्र सरस्वती

## समाचार

विश्व वेदपरिषद् की प्रबन्ध-समिति की बैठक वेद-सदन लखनऊ में रवि १४-११ को ३ बजे होगी कृपया सभी सदस्य सम्मिलित हों —मन्त्री

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई में वेद-प्रचार-सप्ताह यजुर्वेद-पारायण यज्ञ २६-९ से ५-१०-९३ तक हुआ । गणेशोत्सव १६ से २६ सितम्बर तक हुआ ।

अजमेर में ऋषि-मेला २७ से २६ नवम्बर १९९३ तक होगा । संस्कार प्रशिक्षण १ से १० नव. तक; इसी अवसर पर वहीं पर आर्यसमाज फलेरा (जयपुर) द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार १९९३ १००००) श्री सुधाकर चतुर्वेदी बैंगलोर को दिया जायगा । १.११ से चतुर्वेद पारायणयज्ञ होगा ।

शोक है कि श्री प० सत्यव्रत वेदालङ्कार ८.८.९३ को देहान्त हो गया ।

१६-१७ अक्टूबर १९९३ को बहालगढ़ में स्व० प० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु-स्मारक जन्म-शताब्दी समापन-उत्सव सम्पन्न हुआ जिसमें 'निरुक्तकार और वेद' के सर्वोत्तम लेखक को श्री म० म० युधिष्ठिर मीमांसक ने १०००) पुरस्कार दिया ।

पूना में ९-८-९३ को श्री विनायक भट्ट के सम्मान में राष्ट्रपति डा० शंकरदयालु शर्मा ने कहा कि वेदों के पठन-पाठन-वाचन की परम्परा जारी रक्खी जाये । वहीं पर महाराष्ट्र के राज्यपाल डा० पी० सी० अलक्जेन्डर ने वेदों को आध्यात्मिकता का अक्षय स्रोत बताकर प्रशंसा की ।

केन्द्रीय आर्य युवक परिषद् दिल्ली के अध्यक्ष श्री अनिल आर्य, मन्त्री श्री अनिल मित्र हुए ।

३० सितम्बर को महाराष्ट्र में आये भूकम्प में सहायतार्थ आर्यसमाज सान्ताक्रुज लिम्बाला पहुँचा ।

बम्बई में महिला स्पेशल से आग के डर से कूद ५०० स्त्रियाँ कटकर मरी व ५०० घायल हुईं ।

उ० प्र० आदि ६ राज्यों में विधान सभाओं के चुनाव नवम्बर में दीवाली बाद होंगे ।

व० १७ अंक ११ इष-ऊर्ज आश्विन-कार्तिक वेदज्योति नवम्बर १९९३ न० ६६२१।६२, डाक



# वैदिक दैनन्दिनी कार्तिक २०५० विक्रम

| तिथि | नक्षत्र | वार | अक्तूबर | नवम्बर | व्यायाम | भ्रमण | स्नान | सन्ध्या | प्राणायाम | हवन | स्वाध्याय |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| कृष्ण १ | भरणी | रविवार | ३१ | | | | | | | | |
| २ | कृत्तिका | सोमवार | | १ | | | | | | | |
| ३ | रोहिणी | मङ्गलवार | | २ | | | | | | | |
| ४ | मृगशिरा | बुधवार | | ३ | | | | | | | |
| ५ | आर्द्रा | गुरु | | ४ | | | | | | | |
| ६ | पुनर्वसु | शुक्र | | ५ | | | | | | | |
| ७ | पुष्य | शनि | | ६ | | | | | | | |
| ८ | आश्लेषा | रवि | | ७ | | | | | | | |
| ९ | मघा | सोम | | ८९ | | | | | | | |
| १० | पूर्वा फल्गुनी | मङ्गल | | | | | | | | | |
| ११ | उ० ,, | ब | | | | | | | | | |
| १२ | हस्त | | | १० | | | | | | | |
| १३ | चित्रा | शुक्र | | ११ | | | | | | | |
| १४-६० | स्वाति | शनि | | १२ | | | | | | | |
| शुक्ल १ | विशाखा | रवि | | १३ १० | | | | | | | |
| २ | अनुराधा | सोम | | १५ | | | | | | | |
| ३ | ज्येष्ठा | मगल | | १३ | | | | | | | |
| ४ | मू | बुध | | १७ | | | | | | | |
| ५ | पूर्वाषाढा | गुरु | | १८ १९ | | | | | | | |
| ६ | उ० अषाढा | शुक्र | | १० | | | | | | | |
| ७ | श्रवण | शनि | | २ | | | | | | | |
| ८ | धनिष्ठा | रवि | | २१ | | | | | | | |
| ९ | शतभिषज | सोम | | २२ | | | | | | | |
| १० | पू० भाद्रपदा | मंगल | | २३ | | | | | | | |
| ११ | उ० ,, | बुध | | २४ | | | | | | | |
| १२ | ती | गुरु | | २५ | | | | | | | |
| १३ | अश्विनी | शुक्र | | २६ | | | | | | | |
| १३ | भरणी | शनि | | २७ | | | | | | | |
| १४ | कृत्तिका | रवि | | २८ | | | | | | | |
| १५ पू० | रोहिणी | सोम | | २९ | | | | | | | |

इस में प्रतिदिन हाँ-न भरिये।

प्रेषक— प्रबन्धक अनिलकुमार, आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६ दूरभाष ७३५०१।

सेवा में, संख्या, १४60 श्री पुस्तकालयाध्यक्ष, गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)

ऋग्वेद यजुर्वेद खण्ड ६

वर्ष १७ अंक १२

# वेद-ज्योति

मार्गशीर्ष २०५० दिसम्बर १९९३

सामवेद अथर्ववेद

विश्ववेद परिषद् की संस्कृत पत्रिका का उद्देश्य-विश्व में वेद, संस्कृत, यज्ञ, योग प्रचार

मानव-वेद-सृष्टि-संवत् १९६ ०८ ५३ ०९४, दयानन्दाब्द १०९,

सम्पादक- वेदर्षि वेदाचार्य वीरेन्द्र मुनि सरस्वती एम० ए० काव्यतीर्थ,

अध्यक्ष विश्व वेद परिषद्, सी ८१७, महानगर, लखनऊ उ०प्र० २२६००६; दूरभाष ७१५०१

सहायक-सम्पादक श्री ओजोमित्र शास्त्री; मन्त्री

सहायक-श्रीमती विमला शास्त्री। वार्षिक शुल्क ४०) आजीवन शुल्क ४००)

विषय-सूची —



अमर बलिदानी

स्वामी श्रद्धानन्द
अब्दुल रशीद की पिस्तौल से बलिदान
दिनांक २३ दिसम्बर १९२६

वेदों के प्रकाण्ड विद्वान्
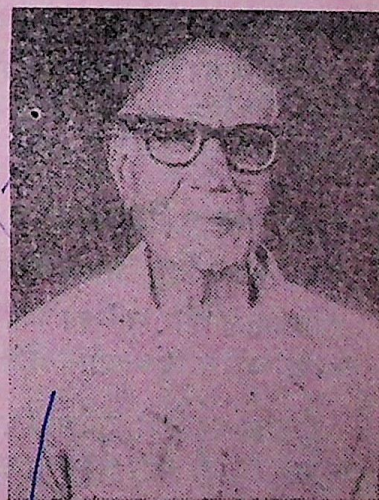
१४।११-९३को उपाध्यक्ष निर्वाचित
डा० सुधीर कुमार गुप्त
वेदाचार्य, ऐम० ए०
जयपुर, राजस्थान

## ऋ० भाष्य भू० मन्त्र—व्याख्या

क्रमाङ्क ८- ऋषि दध्यङ् आथर्वण, देवता, ईश्वर, छन्द उष्णिक, स्वर ऋषभ; विनियोग प्रार्थना।

**आ३म् यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥**

यजुर्वेद अध्याय ३६, मन्त्र २२

हे परमेश्वर! आप जिस जिस देश से जगत् के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस उस देश से हमको भय से रहित करिये, अर्थात् किसी देश से हमको किञ्चित् कभी भय न हो, वैसे ही सब दिशाओं में जो आपकी प्रजा और पशु हैं उनसे भी हम को भय-रहित करें, हम से उन को सुख हो, और उनको भी हमसे भय न हो; तथा आपकी प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं उन सबों से जो धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष पदार्थ हैं उनको आपके अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त हों जिससे मनुष्य-जन्म के धर्मादि जो फल हैं, वे सुख से सिद्ध हों। ऋ० भा० भू०

## पतञ्जलि का योग दर्शन शास्त्र [गतांक से आगे]

संयम का प्रयोग करके संस्कारों का साक्षात्कार किया जाये तो पूर्व-जन्मों का ज्ञान हो जाता है

**१२५ प्रत्ययस्य पर-चित्त-ज्ञानम् । १९**

**१२६ न च तत् सालम्बनम् तस्य अविषयीभूतत्वात् । २०**

**१२७ काय रूप-संयमात् तत् ग्राह्य शक्ति-स्तम्भे चक्षुः-प्रकाश-असम्प्रयोगे अन्तर्धानम् ।**

दूसरे के ज्ञान पर संयम का प्रयोग करने से दूसरे के चित्त की बात जानी जाती है।

पर-चित्त की बात जान तो लेता है किन्तु दूसरे के ज्ञान के आलम्बन के विषय को नहीं जान पाता क्योंकि वह संयम-प्रयोग का विषय नहीं है।

शरीर के रूप में संयम का प्रयोग करने से उस रूप में जो ग्रहण करने की शक्ति है, उसके अवरुद्ध हो जाने पर अग्नि और प्रकाश का संयोग न रहने पर योगी में लुप्त हो जाने की शक्ति (अन्तर्धान) आ जाती है। इसी प्रकार योगी के श्रवण आदि का भी अश्रवण आदि हो जाता है।

**१२८ सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म, तत्संयमाद् अपरान्तज्ञानम् अरिष्टेभ्यो वा। २२**

**१२९ मैत्र्यादिषु बलानि । २३**

क्रियमाण और सञ्चित कर्मों पर संयम का प्रयोग किया जाय तो मृत्यु-दिवस का ज्ञान हो जाता अथवा आध्यात्मिक-आधिभौतिक-आधिदैविक चिह्नों से भी मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

सुखियों पर मैत्री, दुःखियों पर करुणा; पुण्यशीलों पर मुदिता भावना के दृढ़तर अभ्यास से जो जो समाधि हो वही संयम है, उससे ये भावनाएँ अव्यर्थ पराक्रम वाली हो जाती हैं।

**१३० बलेषु हस्तिबलादीनि । २४**

हाथी के बल आदि में संयम करने से वे बल आदि योगी में आ जाते हैं।

# गान्धी और श्रद्धानन्द

[स्व॰ प॰ चमूपति के लेख का सारांश, सितम्बर ६३ अंक से आगे]

महात्मा गान्धी ने अपने लेख में स्वामी श्रद्धानन्द के व्याख्यान का कोई अंश नहीं दिया जिससे
उनका आक्षेप सिद्ध होता हो कि उनके व्याख्यान असन्तोष पैदा करते हैं।
स्वामी जी का यह विश्वास कि हर एक मुसल्मान आर्य बनाया जा सकता है सारे आर्यसमाज
का विश्वास है! बनाया जा सके या नहीं, पर तदर्थ यत्न आवश्यक है और वह भी धार्मिक कारणों
से, राजनीतिक कारणों से नहीं। यदि वे आर्य धर्म स्वीकार न भी करें तब भी उन्हें आर्यों के
साथ मिलकर रहना आना चाहिए, भारतीय नागरिकता के कर्तव्य जीवने चाहिए, अपने पड़ौ-
सियों पर हाथ नहीं डालना चाहिए।
कुछ हो, इस बात पर विश्वास होना कि हर एक मुसलमान आर्य बन सकेगा दुर्भाग्य का
निशान क्यों है? यदि मौलाना मुहम्मद अली प्रतिदिन यह प्रार्थना कर सकते हैं कि महात्मा गान्धी
मुसल्मान हो जायँ तो स्वामी श्रद्धानन्द जी यह विश्वास क्यों नहीं रख सकते कि हर एक मुसल-
मान आर्य बन जायेगा?
आर्यसमाज का बच्चा-बच्चा ही इसी विश्वास के साथ जीता है कि केवल मुसल्मान ही नहीं,
किन्तु समस्त संसार एक दिन आर्य बन जायेगा। श्री कृष्ण ने गीता में कहा है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

तेरा अधिकार काम करने का है; फल के लिए आग्रह करने का नहीं।

यही आर्यों की कार्य-प्रणाली का सुनहरा नियम है। हम यत्न करें, सफलता ईश्वराधीन है।
हम वैदिक धर्म को परमात्मा का धर्म समझते हैं। वेद कहता है—

इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः॥ ऋ॰ ९.६३.५

परमात्मा का राज्य शीघ्रता से बढ़ाओ; अधैर्य से इस काम में कदम बढ़ाओ। प्रश्न हो सकता है
कि कैसे बढ़ाएँ? वेद कहता है कि सारे संसार को आर्य बना कर। हम वेद की इस आज्ञा से बद्ध
हैं। वह आर्य नहीं जिसका सिर वेद की आज्ञाओं के सामने रात-दिन झुका न रहता हो।
हमें शान्ति-सुख-नींद हराम है, यदि रात-दिन यही न सोचा करें कि संसार आर्य हो जाय।
मौलाना मु॰ अली ने कोकानाडा में भाषण करते हुए शुद्धि की यही व्याख्या की थी जो ठीक है।
उन्होंने शिकायत की थी कि हिन्दू धर्म प्रचारक-धर्म नहीं है। उन्होंने कहा था— 'अगर आज जब
कि मेरे हिन्दू भाइयों की सरगर्मियों में तब्लीगी जोश के निशान पाये जाते हैं, मैं उनको अपने धर्म
फैलाने की कोशिशों से नाराज हूँ; तो ताज्जुब है'। मौ॰ मु॰ अली स्वामी श्रद्धानन्द के उक्त
विश्वास से रुष्ट नहीं हो सकते; हाँ; महात्मा गान्धी के लिए रुष्टता का कारण है। क्या सचमुच
यह दुर्भाग्य होगा कि मौ॰ मु॰ अली; जो महात्मा गान्धी के मित्र हैं, आर्य बन जायँ; और वह
मित्रता; जो अपनी वर्तमान अवस्था में कहने-सुनने की मित्रता है, रहने-सहने की; मेल-मिलाप
की, दिल और दीन की मित्रता बन जाय?

❀

स्वामी श्रद्धानन्द का जन्म तलवन जिला जालन्धर। नाम मुंशीराम। जन्मतिथि २२-२-१८५७।
महर्षि दयानन्द से भेंट बरेली में १८७९। प्रिय सूक्त— श्रद्धा ऋषिका का सूक्त ऋ॰ १०-१५१—
श्रद्धयाऽग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः। श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि॥ १

# शिक्षितों की भ्रान्तियाँ

१- श्री सन्तोष कुमार ने वेद में अवैध यौन सम्बन्ध बड़ी भ्रान्ति और नासमझी से लिखा है। यम-यमी सूक्त ऋ० १०-१० में यम-यमी सगे भाई-बहिन का इतिहास नहीं है; यह वैवस्वत (विवस्वान् सूर्य के पुत्र दिन-रात का आलंकारिक वर्णन है क्योंकि वेद एक वैज्ञानिक काव्य है। फिर इसने तो भाई-बहिन के विवाह का निषेध और नियोग का प्रतिपादन अतः यम-यमी पति पत्नी हैं। शतपथ २-१-१० में अग्नि-पृथिवी; द्यावा-भूमि बताया है। ये पुरुष (जीव) और प्रकृति भी है। डा० विश्वेश्वर ने अपने निरुक्त-भाष्य में भ्राता का अर्थ भर्ता और स्वसा का अर्थ पत्नी व्याकरण से सिद्ध किया है अत; इस यम-सूक्त से भाई-बहिन-सम्बन्ध मानना भ्रान्ति है।

२. उनकी दूसरी भ्रान्ति ऋ० १०.६१.६ में आये प्रजापति-दुहिता के सम्बन्ध पर है। यह अन्यत्र भी ऋ० १.१६४.३३ और ३.३१.११ में भी आया है। दुहिता का ठीक अर्थ और दृष्टिकूट अलंकार (उलट बाँसी) तथा अद्भुत रस यहाँ न समझने से यहाँ यह भ्रान्ति हुई। कबीर ने कहा है—

एक अचम्भा हम सुनो कि बिटिया ब्याहिल बाप।

ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, निरुक्त, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में बताया है कि प्रजापति सूर्य है और उसकी दुहिता (दूर रक्खी हुई) उषा है जिसमें किरणें फेंकना गर्भ-स्थापन-समान है। १.१६४-३३ में बताया कि 'पिता यत्र दुहितुर्गर्भमाधात्' अर्थात् पिता (पालक बादल) जहाँ दूरस्थ पृथिवी में वर्षा द्वारा अन्न-औषध आदि को गर्भ में (अन्दर) रखता है। यह तो सूर्य-वर्षा-कृषि भौतिक विज्ञान है जिसे अवैध यौन सम्बन्ध बताना केवल भ्रान्ति है।

# परीक्षा परिणाम

वेद-विश्व-विद्यालय लखनऊ की संवत् २०५० वि० (१९९३ ई०) की परीक्षाओं में निम्नांकित परीक्षार्थी उत्तीर्ण घोषित किये जाते हैं—

लखनऊ केन्द्र— १. अथर्ववेदाचार्य १. मनोरमा यति, प्रथम। २. वेदप्रिय आर्य द्वितीय।
बरेली ,, २. यजुर्वेद-रत्न ३. अशर्फीलाल आर्य, १। ४. सत्यभास्करआर्य २;५. रामचरनलाल २
;; ;; ३. यजुर्वेदविशारद- ६. ज्ञानभास्कर आर्य, प्रथम। —मन्त्री

# प्रति क्रिया

ओ३म् अजमेर २५-६-९३ समादरणीय पण्डितवर; सादर नमस्ते।

आपका निरुक्त-भाष्य; अष्टाध्यायी-भाष्य और अथर्ववेद-भाष्य सभी सार रूप में किन्तु सम्पूर्णता के साथ प्रत्येक बिन्दु को स्पर्श करते हुए अद्वितीय हैं। शायद संस्कृत-विद्वान् तो जहाँ जा-वहाँ उन्हें साथ रखना पसन्द करने लगे होंगे क्योंकि वेदज्ञान-हेतु उनकी उपादेयता और दक्षता सदैव परमानिवार्य रही है। ईश्वर आप को भूयश्च शरदः शतात् आयु प्रदान करे। इति शम्।

आपका ही— रत्नलाल पालड़िया, धर्मतरु; पाल बीसला; अजमेर। ❀

ओ३म् ६६ ई; कमलानगर, दिल्ली ७। १३-११-९३। आदरणीय, सादर नमस्ते। ... में १००) भेज रहा हूँ। ऋषि दयानन्द के मिशन को आप आगे बढ़ाने में सहयोग कर रहे हैं इस हेतु यह सहयोग भेज रहा हूँ। सस्नेह- श्यामसुन्दर आर्य, ६६ ई, कमलानगर, दिल्ली ७।

# शतपथ ब्राह्मण काण्ड७ अध्याय३(४६) ब्राह्मण १

कहते हैं कि इसकी येलू बा दिन-रात से कैसे सगत होती हैं ? उत्तर है कि दिन-रात और बालू दोनों ही श्वेत-काले होते हैं । ३८

कहते हैं बालू दिन-रात के बराबर कैसे ? उत्तर- दोनों अनन्त हैं न कम व बढ़। समुद्रिय छन्द क्यों हैं ? क्योंकि दोनों अनन्त हैं। ३९

कहते हैं कि इसकी ये अलग नाना यजुओं से उपहित क्यों हैं ? उत्तर- मन यजु है जो सब बालू के समान हैं । ४०

कहते हैं कि ये सब छन्दों से उपहित कैसे हैं ? उत्तर- क्योंकि यह जब इन्हे उक्त ६ ऋचओं से से निवपन करता है तो उनके सब अक्षर सातों छन्दों के अक्षरों के बराबर हो जाते हैं। ४१

अथवा यह अग्नि प्रजापति है । सभा ब्रह्म प्रजापति है । बालू ब्रह्म की उत्सिन्न, अग्नि अनुत्सिन्न है। सो यह ब्रह्म का उत्सन्न बालू उतं रखता है जो अनुत्सन्न अग्नि में है उसे को जाता है ! यह सब संस्कार प्रजापति करता है जो ऐसा जानता हुआ बालू का निवपन करता है । ४२

कहते हैं कि इन असंख्यों की क्या संख्या है ? उत्तर- दो बताये सफेद-कृष्ण । या सत्ताईस सौ । वर्ष के इतने ही दिन-रात होते हैं। या १५२ के दुगुने, क्योंकि इतने ही इन ६ ऋचों के अक्षर हैं या २५ कहे क्योंकि वीर्य २५ वाँ है । ४३

वे इतनी यजुष्मती ईँटें हैं उन्हे आत्मा (मध्य) में ही रखता है पक्ष-पुच्छों में नही। ४४

अब इस रेते को आप्यानवती दो ईँटों से दो ऋचाएँ यजु; १२.११२-११३ बोल कर छूता है। इससे सींचे वीर्य में वृद्धि करता है। ये सोम देवता की हैं जो प्राण है अतः वीर्य में प्राण रखता है। ४५

> आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य संगथे ॥
> सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभि मातिषाहः ।
> आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥ यजु १२.११२-१३

हे सोम ! तू बढ़, तृप्त हो, तेरे सब ओर वीर्य हो। तू अन्न के संग्राम में विजयी हो । हे सोम योगी ! तुझे रस (जल-दूध) और अन्न मिलें, अभिमानी-नाशक वीर्य-वेग मिलें। तू सब ओर से बढ़ता हुआ द्यौ (परमेश्वर) में मोक्ष के लिए अन्न और उपदेश तथा चन्द्र को धारण कर । इन गायत्री-त्रिष्टुप् दो मन्त्रों से बढ़ाता है उसका कारण बता दिया । ४६

अब आगे ४ लोगेष्टका रखता है; ६ ऋचाओं से निवाप करता है, २ से आप्यायन, सब मिल कर १२ हुए, जो मास वर्ष-अग्नि है वह जितनी है उतनी ही वह होती है। ४७ ❀

## ब्राह्मण २

[ बैल के चमड़े पर पहली चिति की ईँटों का रखना आदि ]

दो आप्यानवतीसे अभिमर्ष कर; वापस लौटकर; आतिथ्येष्टि कर; प्रवर्ग्य-उपसद करके चर्म पर इस चिति को चुनते हैं; चर्म-लोम रूपों के पाने के लिए रूप है; लाल रंग में सब रूप पाने के लिए बैल के चर्म पर, क्योंकि वह अग्नि है, अग्नि-रूप पाने के लिए, पूर्व को गरदन रख कर क्योंकि यह देव-नियम है । १

उसे गार्हपत्य के आगे वेदि के अन्दर, लोम ऊपर, गरदन पूर्व में रखकर बिछाता है तब यह चिति चुनते हैं; घी से प्रोक्षण कर शुद्ध-पवित्र अनभ्यारोह के लिए मौन रहकर ही करते हैं । २

क्योंकि यह भी हवि है अतः इसका घी से अभिघारण-प्रोक्षण दर्भी से करके शुद्ध करते हैं । ३
कहते हैं कि पहली चिति के प्रोक्षण से सब आग कैसे प्रोक्षित हुई, चर्म पर प्रणीता कैसे रक्खा ?
उत्तर— क्योंकि यहाँ सभी चितियों की ईंटें; चर्म पर प्रणीता; अश्व-प्रणीता भी प्रोक्षित हुए।
अब इस चिति को ऊँचा उठाते हैं । ४

अब कहा कि प्रह्रियमाण अग्नियों के लिए मन्त्र बोलो । यही देवों का उपप्रैष किया, इस यज्ञ के नाशक दुष्ट राक्षसों ने हिंसा की कि न यज्ञ करो, न उसका विस्तार, उन के लिए इन ईंट-वज्रों को छुरे की धार वाली करके प्रहार करके अभय अदुष्ट देश में यज्ञ का विस्तार किया । ५

जैसा देवों ने किया वैसा ही यह करता है । ६

ये चितियाँ बहुत सी अग्नियाँ हैं जिन्हें लाता है । ७

कुछ लोग प्रायण रूप ऋ० ३-२१-४ का यह मन्त्र पढ़ते हैं किन्तु ऐसा न करे—
पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः आग्नेयी ही गायत्री-कामवती य १२.११५-११७ गोते—

आ ते वत्सो मनो यमत् परमाच्चिन् सधस्थात् । अग्ने त्वां कामया गिरा ॥
तुभ्यं ता अंगिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे ॥
अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य । सम्राडेको विराजति ॥ ८

ये मन्त्र अग्नि-रूपों और कामनाओं के पाने के लिए हैं तथा गायत्री अग्नि है ।
गायत्री और त्रिवृत् अग्नि और उसकी मात्रा जितनी है उसी से इस रेतः भूत को सींचता है । पूर्वाग्नि के साथ ये ७ मन्त्र हुए, ७ चिति का अग्नि; ७ ऋतुओं का संवत्सर अग्नि की जितनी मात्रा है उतनी ही, यह मौन कहा जाता है, रेतः-सिञ्चन मौन ही होता है; पीछे यह छन्द के साथ रक्षा करता हुआ आता है । ९

अब श्वेत अश्व को सामने लाते हैं । । पहले देव डरे थे कि कहीं हमें राक्षस न मारें तब वे इस वज्र अश्व-सूर्य से राक्षस रोग कीटाणुओं को मार कर अभय हुए थे वैसे ही यह करता है । अग्नि की वेदि की ओर आते हैं । वेदि की पुच्छ की दक्षिण की ओर चितिको स्थापित करता है। अश्वको वेदि के उत्तर से वेदि पर लाता है । १०

उसअश्व को क्रमशः पूव -दक्षिण-पश्चिम-उत्तर ले जाते और उन दिशाओं के पाप-कीटाणु नष्ट करके उसे उत्तर-पूर्व में रखते हैं । कारण बता दिया । ११

पश्चिम में उसे पूर्व-संचित ईंटें सुँघाते हैं। अश्व सूर्य, ईंटें पृजा है । १२

अथवा इससे इन लोकों को एक-सूत्र में करता है । १३

अथवा जब अग्नि देवों से हट कर जल में घुस गया तो वे प्रजापति से बोले— तू उसे खोज, वह तुझ पिता के सामने प्रकट हो जायेगा । उसे खोजा, पुष्कर-पर्ण पर (जल के ऊपर) पाया । कहा— तुझे वर देता हूँ । १४

जो तुझे इस रूप से खोजेगा वह पायेगा । ऐसा जानकर ही उसका चयन करता है । १५

वह सफेद हो । यही सूर्य का रूप है । यदि सफेद न मिले कैसा ही हो; अश्व हो, यदि न ही मिले तो बैल ही हो, जो आग्नेय और सर्व-पाप-नाशक है । १६

अब उस पर चढ़ना है आगे या पीछे से न चढ़े, सींगों-पैरों से मारेगा, अत; बायीं ओर से चढ़े चढ़कर उत्तर-वेदि कर्म करके अग्नि लेकर सत्य-साम गाये; पुष्कर-पर्ण अग्नि ढाँक दे । १७

इसी प्रकार सायं अस्त-समय भी इस अश्व-सूर्य को वज्र बना कर घुमाते हैं। १८

इसे दिन-रात में तीन-बार चारों ओर घुमा कर उत्तर-पूर्व में बाँध देते हैं । १९

यह ब्राह्मण१, अध्याय २, प्रपाठक २; कण्डिकाएँ १७५ समाप्त हुईं ।

२८४ महान् इन्द्रः नृवद् आ चर्षणिप्राः उत द्विबर्हाः अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यक् वावृधे वीर्याय उरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिः भूत् ।
उपयामगृहीतः असि महेन्द्राय त्वा एषः ते योनिः महेन्द्राय त्वा ।। ३९

८५ महान् इन्द्रः यः ओजसा पर्जन्यः वृष्टिमान् इव । स्तोमैः वत्सस्य वावृधे ।
उपयामगृहीतः असि महेन्द्राय त्वा एषः ते योनिः महेन्द्राय त्वा ।। ४०

८६ उद् उ त्यम् जातवेदसम् देवम् वहन्ति केतवः । दृशे विश्वाय सूर्यम् स्वाहा ।। ४१

८७ चित्रम् देवानाम् उत् अगात् अनीकम् चक्षुः मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः ।
आ अप्राः द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्यः आत्मा जगतः तस्थुषः च स्वाहा ।। ४२

८८ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोधि अस्मत् जुहुराणम् एनः भूयिष्ठाम् ते नमउक्तिम् विधेम स्वाहा ।। ४३

८९ अयं नः अग्निः वरिवः कृणोतु अयम् मृधः पुरः एतु प्रभिन्दन् ।
अयम् वाजान् जयतु वाजसातौ अयम् शत्रून् जयतु जर्हृषाणः स्वाहा ।। ४४

९० रूपेण वः रूपम् असि आ अगाम् तुथः वः विश्ववेदाः वि भजतु ।
ऋतस्य पथा प्र इत चन्द्रदक्षिणाः वि स्वः पश्य वि अन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ।। ४५

९१ ब्राह्मणम् अद्य विदेयम् पितृमन्तम् पैतृमत्यम् ऋषिम् आर्षेयम् सुधातुदक्षिणम् ।
अस्मद्राताः देवत्रा गच्छत प्रदातारम् आ विशत ।। ४६

९२ अग्नये त्वा मह्यं वरुणः ददातु सः अमृतत्वम् अशीय आयुः दात्रे एधि मयः मह्यं प्रतिग्रहीत्रे।

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| रुद्राय | ,, | प्राणः | ,, | वयः ,, |
| बृहस्पतये | ,, | त्वग् | ,, | मयः ,, |
| यमाय | ,, | हयः | ,, | वयः ,, ।। ४७ |

२९३ कः अदात् कस्मै अदात् कामः अदात् कामाय अदात् ।
कामः दाता कामः प्रतिग्रहीता काम एतत् ते ।। ४८

२८६ उस जातवेदस (सब में व्यापक) देव सूर्य (सूरज-समान ईश्वर) को किरणें-प्रज्ञान-झण्डे सबके देखने के लिए सत्य वाणी से प्राप्त कराते हैं । ४१

८७ सूर्य सत्य-क्रिया से देवों (चक्षु आदि इन्द्रियों और विद्वानों), मित्र (सखा-प्राण), वरुण (श्रेष्ठ-उदान), अग्नि (बिजली) का विचित्र, सेना-समान जीवन-दायक दर्शक सूर्य (सूरज और ईश्वर) उदय होकर गति करता है और द्यावा-पृथिवी-अन्तरिक्ष को सब ओर से पूर्ण कर रहा है तथा जंगम-स्थावर का आत्मा (सदा गतिशील) है। दो अर्थ होने से श्लेष अलंकार है। ४२

२८८ यहाँ भी श्लेष है। हे देव विद्वान्-ईश्वर ! हमें सुपथ से ऐश्वर्य के लिए सब ज्ञान-कर्म प्राप्त करा, हम से कुटिल पाप हटा, हम वेद-वाणी से तेरी बहुत नमः-सहित स्तुति करें। ४३

# यजुर्वेद अध्याय ७

२८९ यह हमारा अग्रणी वैद्य युद्ध में सुविद्या से सुख-कारक सेवा करे. यह वीर योद्धा गण-भेदन करता हुआ युद्ध में आगे चले, यह वीरों को जिताये; यह हृष्ट होकर शत्रुओं को जीते । ४४

९० मै सभापति; प्रिय रूप से तुम प्रजाओ का रूप सामने रक्खूँ, बड़ा विश्व-वेत्ता तुम्हें बाँटे, सत्य के पथ से हे सुवर्ण-दानियो, चलो, हे सभापति ! सूर्य-समान अन्तरिक्ष देख, सभ्यों साथ यत्न कर। ४५

९१ मै अब ब्रह्म-वेत्ता, पितरों-युक्त, पितृ-गुण को; ऋषि-गुण-युक्त ऋषि को, उत्तम धातु सोने आदि की दक्षिणा वाले को पाऊँ और तुम हमें दानी पवित्र होकर जाओ, प्रदाता से मिलो । ४६

९२ वरुण प्रधानाचार्य मेरे लिए तुझ अग्नि (२४ वर्षीय वसु), रुद्र (४४ वर्षीय), बृहस्पति (४८ वर्षीय आदित्य) और यम (संयमी संन्यासी के लिए दे वह क्रमशः आयु-प्राण-स्पर्श-सुख-हय (ज्ञान-वृद्धि) पायँ; मैं अमर विज्ञान को पाऊँ । सुख-आयु बढ़े । ४७

२९३ कौन देता है, किस के लिए देता है ! काम (कामना वाला ईश्वर) काम (कामना वाले जीव) के लिए कर्म-फल देता है। काम दाता, काम ग्रहीता है। हे जीव ! यह ज्ञापन तेरे लिए है। ४८

- ❀-

### इस अध्याय ७ की पिछले अध्याय ६ से संगति

बाहर-भीतर का व्यवहार १; परस्पर बर्ताव २, आत्म-कर्म ३, मन की प्रवृत्ति ४; प्रथम-कल्प योगी के लिए उपदेश ५; जिज्ञासु के प्रति उपदेश ६; योगी के कर्म-लक्षण ७-८, अध्यापक-शिष्य-कर्म ९-१०, योगियों के कर्म ११; योग से अन्तःकरण-शुद्धि १२, योगाभ्यासी-लक्षण १३; शिष्य और अध्यापक का व्यवहार १४, स्वामी-सेवक-कर्तव्य १५; न्यायाधीश-द्वारा प्रजा की रक्षा १८, राजा-सभ्यों का कर्तव्य १९, राजा को उपदेश २०, उनके कार्य २१; परीक्षा करके सेनापति बनाना २२, पूर्ण विद्वान् को सभापति का अधिकार २३, विद्वानों का कर्तव्य २४; उपासक के लिए उपदेश २५, यज्ञानुष्ठाता का विषय २६-२८; प्रजा आदि के प्रति सभापति का बर्ताव २९-३०, राजा-प्रजा का सत्कार ३१-३२, अध्यापक-अध्येताओं की परस्पर प्रवृत्ति ३३; प्रतिदिन अध्ययन एवं विद्या-वृद्धि ३४; राजा का कर्तव्य ३५-३६; सेनापति का कर्तव्य ३७, सभाध्यक्ष आदि का कार्य ३८, ईश्वर के गुण और प्रार्थना ३९-४३, शूर-वीरों-द्वारा युद्धानुष्ठान ४४, सेनास्थ पुरुषों का कर्तव्य ४५ ब्रह्मचर्य-सेवन का प्रकार और ईश्वर का जीवों के प्रति उपदेश ४७-४८ है अतः इस अध्याय ७ की उक्त अध्याय ६ के अर्थ के साथ संगति है ।।

—❀—

## विषय-सूची, ऋषि, देवता: छन्द, स्वर, विनियोग ।

विषय-सूची- १-१२ ईश्वर-प्रार्थनादि पदार्थविद्या, ईश्वरविद्या । १३ देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि इत्यादि ईश्वरस्य स्तुति-प्रार्थनादि पदार्थविद्या , २३ धर्मादि-उपदेशादि पदार्थविद्या । २४- ५ यज्ञानेकविध प० । २६-३० निषक-गर्भाधानादिविद्या । । इन्द्रश्चरस्तुत्यादि प० । ३६ ईश्वर-विषया महाब्रह्मविद्या । ३७ इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ त इत्यादीश्वर विद्या । ३८ वर्चाद्यग्नीश्वरप्रार्थना । ३९ ओजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् इत्यादीन्द्रेश्वर-प्रार्थनादि विद्या । ४१ उपयामगृहीतोऽसि सूर्येश्वर-प्राण-ग्रहणादि-प्रार्थना-विद्या । ४५-४६ विविवकर्मेश्वरादि प० ४६ बृहच्छुक्र इतीश्वरादि-विद्या । ५१ इह रतिरित्यादीश्वरोपदेशादि० । ५२-५३ प्रार्थना: । ५५ इन्द्रश्चेत्याद्यनेक पदार्थविद्या ।

स्वर— पृष्ठ २ पर बताए छन्द के अनुसार ।

विनियोग— सोम–याग

ऋषि— आङ्गिरस १-६ । कुत्स ४-२ । भरद्वाज ६-१४ । अत्रि १५-२२-३० । शुन:शेप २३। गोतम ६१ ३३ ३५ । मेधातिथि ३२ । मधुच्छन्दा ३४ । विवस्वान् ३६-३७ । वैखानस ८-३८ प्रस्कण्व ४०-४१ । कुसुरुबिन्दु ४०-४३ । शास ४४—४७ । देवा: ४८ ५३ । वसिष्ठ ५४-६२ । कश्यप ६३ ।

देवता— बृहस्पतिस्सोम १ । गृहपति मघवा २ । आदित्य ३-४ । गृहपतय: ५-२६,३३-३५ । दम्पती २७-३२ । परमेश्वर ३६ । सम्राट्-राजा ३७ । राजादि गृहपति ३८-४० । सूर्य ४१। पत्नी ४२—४३ । इन्द्र ४४ । ईश्वर-सभापति-राजा ४५ । विश्वकर्मा इन्द्र ४६-४७ । प्रजापति ४८—५३ । इन्द्रादि ५५ । विश्वेदेवा: ५६-६१ । यज्ञ ६१-३२ ।

छन्द:— आर्ची पंक्ति १ । पंक्ति २ ३ ६ १२ २५ ४३ ५५ । गायत्री ३१ ३२ ३८ ४१ ४४ ५९ ६२ । जगती ४ ५ ३० ५० ५४ ५८ ५८ । प्राजापत्या अनुष्टुप् ५ २७-२८ । त्रिष्टुप ६ १४ —२२ ४५ ४६ ६२ । ब्राह्मी अनुष्टुप् । प्राजापत्या गायत्री ८ बृहती ८ २९ २५ ६६ ८८ उष्णिक् ९ १३ २१ ३३—३५ ४६ । ब्राह्मी बृहती १० ४७ ५७ । अनुष्टुप् ११ २६ ३३-३५ ४४-४५ ५३ , साम्नी उष्णिक १२ २८ । प्राजापत्या उष्णिक् १३ । आर्ची उष्णिक् २२ ३९ । आर्ची बृहती २२ । याजुषी उष्णिक् २३ । आसुरी गायत्री २३ । आसुरी उष्णिक् २८ ५३ । साम्नी त्रिष्टुप् ३७ । आर्ची त्रिष्टुप् ३७ । आर्ची अनुष्टुप् ३८ । ब्राह्मी उष्णिक ४२ ५४ ६१ । आसुरी त्रिष्टुप् , याजुषी जगती याजुषी त्रिष्टुप् साम्नी बृहती ४८ । प्राजापत्या जगती ४९ । प्राजापत्या बृहती, पंक्ति ५२ । ब्राह्मी त्रिष्टुप् ६० ।

# ५२ यजुर्वेद अ ८

२९४ उपयामगृहीतः असि आदित्येभ्यः त्वा ।
विष्णो उरुगाय एषः ते सोमः तं रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥ १

९५ कदा चन स्तरीः असि न इन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोप इत् नु मघवन् भूयः इत् नु ते दानं देवस्य पृच्यते आदित्येभ्यस् त्वा ॥ २

९६ कदा चन प्रयुच्छसि उभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीय आदित्य सवनं ते इन्द्रियं आ तस्थौ अमृतं दिवि ,, ॥ ३

९७ यज्ञो देवानां प्रति एति सुम्नम् आदित्यासः भवता मृडयन्तः ।
आ वः अर्वाची सुमतिः ववृत्याद् अंहोः चित् या वरिवोवित्तरा असत् ,, ४ ॥

२९८ विवस्वन् आदित्य एषः ते सोमपीथः तस्मिन् मत्स्व ।
श्रद् अस्मै नरः वचसे दधातन यत् आशीर्दा दम्पती वामम् अश्नुतः ।
पुमान् पुत्रः जायते विन्दते वसु अधा विश्वाहा अरपः एधते गृहे ॥ ५

९९ वामम् अद्य सवितः वामम् उ श्वः दिवेदिवे वामम् अस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेः अया धिया वामभाजः स्याम ॥ ६

३०० उपयामगृहीतः असि सावित्रः असि चनोधाः चनोधाः असि चनः मयि धेहि ।
जिन्व यज्ञं जिन्व यज्ञपतिं भगाय देवाय त्वा सवित्रे ॥ ७

३०१ उपयामगृहीतः असि सुशर्मा असि सुप्रतिष्ठानः बृहदुक्षाय नमः ।
विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः एषः ते योनिः विश्वेभ्यः त्वा देवेभ्यः ॥ ८

२ उपयामगृहीतः असि बृहस्पतिसुतस्य देव सोम ते इन्द्रोः इन्द्रियावतः पत्नीवतः ग्रहान् ऋध्यासम् । अहं परस्तात् अहम् अवस्तात् यद् अन्तरिक्षम् तद् उ मे पिता अभूत् । अहम् सूर्यम् उभयतः ददर्श अहं देवाना परम गुहा यत् ॥ ९

३ अग्ना३इ पत्नीवत् सजूः देवेन त्वष्ट्रा सोमम् पिब स्वाहा । प्रजापतिः वृषा असि रेतोधाः रेतः मयि धेहि प्रजापतेः ते वृष्णः रेतोधसः रेतोधा अशीय ॥ १०

४ उपयामगृहीतः असि हरिः असि हारियोजनः हरिभ्यां त्वा ।
हर्योः धानाः स्थ सहसोमाः इन्द्राय ॥ ११

५ यः ते अश्वसनिः भक्षः यः गोसनिः तस्य ते इष्टयजुषः स्तुतस्तोमस्य शस्तोक्थस्य उपहूतस्य उपहूतः भक्षयामि ॥ १२

६ देवकृतस्य एनसः अवयजनम् असि मनुष्यकृतस्य एनसः अवयजनम् असि
पितृकृतस्य ,, आत्मकृतस्य ,,
एनसः एनसः अवयजनं असि । यत् च अहम् एनः विद्वान् चकार यत् च अविद्वान् तस्य सर्वस्य एनसः अवयजनम् असि ॥ १३

२६४ हे नाना शास्त्र-वाहक विद्या-व्याप्त ! तू नियम-गृहीत है, मैं तुझे ४८ वर्षीय आदित्य ब्रह्मचारियों में से वरण करती हूँ, यह तेरा गृहाश्रम मृदु है, तुझे काम-बाण न सतायें । १

९५ हे धनी इन्द्र पति ! तू कभी सङ्कोची न हो, दानशील के पास ही शीघ्र पहुँचा कर; तुझ दानी का ही दान अधिक सम्बद्ध होता है अतः १२ आदित्यों (सदा) के लिए [तुझे लेती हूँ] । २

९६ हे चतुर्थाश्रमीवत् सूर्य-समान पति ! यदि तू कभी प्रमाद करे तो दोनों (यह-अगला) जन्म नीचा करेगा, यदि तेरे इन्द्रिय-मन वश में हैं तो व्यवहार में अमृत पायेगा, तुझे सदा के लिए लेती हूं । ३

९७ हे आदित्य-समान जनो ! तुम विद्वानों का यज्ञ सुख देता है, सुखी होओ, तुम्हारी सुमति; सुख-प्रापक सत्यव्यवहार की ज्ञापक बुद्धि भी वर्तमान रहे; तुझे सदा के लिए लेते हैं । ४

९८ हे विविध स्थान-वासी आदित्य गृही ! यह तेरा सोम-पान-स्थान है, उसमें सब दिन हृष्ट रह; हे नरो ! तुम इस वचन के लिए सत्य को धारण करो । जहाँ पति-पत्नी प्रशंसनीय गृहाश्रम पाते हैं उसमें इच्छा-युक्त निष्पाप पुत्र दुःख-रक्षक उत्पन्न होता, धन पाता और बढ़ता है । ५

२९९ हे देव सविता ईश्वर ! आप हमें प्रशंसनीय सुख आज-कल-दिन-दिन उत्पन्न करें । इस बुद्धि-कर्म से हम बड़े सम्पन्न सुन्दर निवास और प्रशस्य सुख के भागी हों । ६

३०० हे पति ! आप नियम से स्वीकृत हैं, सविताको मानने वाले, सबसे अधिक अन्न-धारक हैं, मुझ में अन्न रखिए, यज्ञ-यज्ञ-पति को पूर्ण कीजिए, धनी सन्तानोत्पादक तुझ देव के लिए वरती हूँ । ७

३०१ आप नियम-बद्ध; सुन्दर घर वाले, सुप्रतिष्ठित हैं वीर्य-सेचक आप के लिए नमः (अन्न-आदर) है, आपका यह घर सब देवों और दिव्य गुणों के लिए है, आपको वरती हूँ । ८

२ हे देव पति ! तू नियम-बद्ध है, बड़ी वेदवाणी-पालक के पुत्र; सौम्य-धनी; श्रेष्ठ-पत्नी-युक्त तेरे ग्राह्य विषयों को आगे-अब सिद्ध करूँ । जो विद्वानों की परम गुहा (बुद्धि) में छिपा विज्ञान है उसे मैं पाऊँ । वही मेरा पालक है । मैंने सूर्य [ईश्वर] को दोनों ओर विद्या-शिक्षा से देखा है । ९

३ हे सर्व-सुख-प्रापक पत्नीवान् पति ! तू मेरे साथ दिव्य सुखद दुःख-छेदक गुण से युक्त सोम को सत्यवाणी के साथ पी । तू वीर्य-सेचक रेतः-धारक प्रजा-पालक है मुझमें रेतः धारण कर । मैं तुझ प्रजापति वृषा पराक्रमी से पराक्रमी पुत्र पाऊँ । १०

४ हे पति ! तू नियम-बद्ध व्यवहारी सारथि-समान है । मैं दो घोड़े-युक्त रथ पर सवार तेरी सेवा करूँ । तुम गृहस्थियो ! ऐश्वर्य के लिए सोम-सहित होकर घोड़ों के धारक बनो । ११

५ जो अश्व (अग्नि आदि) -गौ (वाणी-भूमि-विद्याप्रकाश) के दाता तेरा सेवनीय है उसे तुझ ऋक्सूक्त-प्रशंसक यजुः-प्रेमी साम-गायक निमन्त्रित का निमन्त्रित मैं खाता हूं । १२

६ हे मित्र-ईश्वर! तू देव-मनुष्य-पितर-अपने किये अधर्म-अधर्म को दूर करने वाला है । जो पाप मैंने जाने-अनजाने किया-करता या करूँ उस सब पाप-दुष्ट-आचरण को दूर करने वाला है । १३

३०७ सं वर्चसा पयसा सं तनूभिः अगन्महि मनसा सं शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रः विदधातु रायः अनुमार्ष्टु तन्वः यद् विलिष्टम् ॥ १४
८ सम् इन्द्र नः मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिः मघवन् सं स्वस्त्या ।
सं ब्रह्मणा देवकृतं यद् अस्ति सं देवानां सुमतौ यज्ञियानाम् स्वाहा ॥ १५
९ सं वर्चसा…[क्रमाङ्क ३०७ के समान] ॥ १६
१० धाता रातिः सविता इदं जुषन्तां प्रजापतिः निधिपा देवः अग्निः ।
त्वष्टा विष्णुः प्रजया सं रराणाः यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ॥ १७
११ सुगा वः देवाः सदना अकर्म ये आजग्म इदं सवनं जुषाणाः ।
भरमाणाः वहमानाः हवींषि अस्मे धत्त वसवः वसूनि स्वाहा ॥ १८
१२ यान् आ अवहः उशतः देव देवान् तान् प्रेरय स्वे अग्ने सधस्थे ।
जक्षिवांसः पपिवांसः च विश्वे असुं घर्मं स्वः आ तिष्ठत अनु स्वाहा ॥ १९
१३ वयं हि त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् अग्ने होतारम् अवृणीमहि इह ।
ऋधक् अयाः ऋधक् उत अशमिष्ठाः प्रजानन् यज्ञं उप याहि विद्वान् स्वाहा ॥ २०
१४ देवाः गातुविदः गातुं वित्त्वा गातुं इत । मनसस्पते इमं देव यज्ञं स्वाहा वाते धाः ॥२१
१५ यज्ञ यज्ञम् गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वाम् योनिम् गच्छ स्वाहा ।
एषः ते यज्ञः यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरः तम् जुषस्व स्वाहा ॥ २२
१६ मा अहिः भूः मा पृदाकुः। उरुं हि राजा वरुणः चकार सूर्याय पन्थां अनु एतवै उ । अपदे पादाः प्रतिधातवे अकः उत अपवक्ता हृदयाविधः चित् नमः वरुणाय अभिष्ठितः वरुणस्य पाशः॥२३
१७ अग्नेः अनीकम् अपः आ विवेश अपां नपात् प्रति रक्षन् असुर्यम् ।
दमे दमे समिधं यक्षि अग्ने प्रति ते जिह्वा घृतं उच्चरण्यत् स्वाहा ॥ २४
१८ समुद्रे ते हृदयम् अप्सु अन्तः सं त्वा विशन्तु ओषधीः उत आपः ।
यज्ञस्य त्वा यज्ञपते सूक्तोक्तौ नमोवाके विधेम यत् स्वाहा ॥ २५
१९ देवीः आपः एषः वः गर्भः तम् सुप्रीतम् सुभृतम् बिभृत ।
देव सोम एषः ते लोकः तस्मिन् शं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६
२० अवभृथ निचुम्पुण निचेरुः असि निचुम्पुणः । अव देवैः देवकृतं एनः अयासिषम् अव मर्त्यैः मर्त्यकृतं पुरुराव्णः देव रिषः पाहि । देवानां समिद् असि ॥ २७
३२१ एजतु दशमास्यः गर्भः जरायुणा सह । यथा अयं वायुः एजति यथा समुद्रः एजति । एव अयं दशमास्यः अस्रत् जरायुणा सह ॥ २८

३०७ हम दिन-रात विद्या-प्रकाश-जल-अन्न-शरीर-कल्याणकारी मन से आवश्यक पदार्थ पायें। व्यवहार-सूक्ष्म-कर्ता सुदानी धन दे और शरीर में जो कमी हो उसे पूरा करे। १४

८ हे धनी इन्द्र (अध्यापक-उपदेशक)! आप हमें मन-गौओं और वाणियों से; सुख से, विद्वानों के साथ ज्ञान-धन से; जो इन्द्रियों का किया कर्म है; और यज्ञिय विद्वानों की सत्य वाणी से सुमति में निकला यज्ञ कर्म है उसको प्राप्त कराते हैं। १५

६ [३०७ के समान]। १६

१० गृहस्थ धारक-सुखद-उत्पादक-सन्तान-पालक-निधि-रक्षक-विजेता-अग्रणी अग्नि-समान-सुख-विस्तारक-शुभ गुण-कर्म-व्याप्त, सन्तान के साथ उत्तम दानी होकर उस गृह-कार्य को सत्य कर्म से सप्रीति सेवन करे। यज्ञ-कर्ता के लिए सत्य कर्म से धन दो। १७

११ हे शुभ गुण-कर्म में बसे विद्वानो! हम इन तुम्हारे लिए सदन-भोजन सुगम करें जो इस ऐश्वर्य का सेवन-धारण-प्राप्त करते हुए आएँ। आप हमें सत्य कर्म से धन दें। १८

१२ हे अग्रणी विद्वान्! तू अपने घर में जिन गुणेच्छुक विद्वानों को प्राप्त करे उन्हें प्रेरणा कर। वे खाने-पीने वाले तुम सब सत्य वाणी से प्रज्ञा-अन्न-यज्ञ-सुख को पाओ। १६

१३ हे अग्नि (विद्वान्)! हम गृहस्थ यहाँ प्रयत्न-साध्य यज्ञ में तुझे होता वरण करते हैं; तू हम से समृद्धि कारी यज्ञ में मिल और समृद्धि के साथ शम आदि पाकर जा तथा यज्ञ को जानते हुए शास्त्रोक्त क्रिया के साथ हमारे पास रह। २०

१४ हे पृथिवी के जानने वाले देवो (गृहस्थो)! तुम भूगोल को जानकर पृथिवी के उपकार को पाओ। हे मन के पति देव (गृहस्थ)! तू धर्म-क्रिया से इस यज्ञ (गृहाश्रम) को व्यवहार में ला। २१

१५ हे यज्ञ [कर्म-संगत गृहस्थ]! तू सत्य-क्रिया से गृहाश्रम और उसकेपति राजा को पा तथा अपने स्वभाव को जान। हे यज्ञपति! यह जो तेरा यज्ञ ऋक्सूक्त और यजु-अनुवाकों के साथ सब को वीर बनाने वाला है उसे सत्य वाणी से सेवन कर। २२

१६ हे यज्ञपति राजा! तू साँप-अजगर, बुरी वाणी वाला न हो। तू श्रेष्ठ राजा होकर बाढ़ न्याय कर ईश्वर के पथ का अनुगमन कर। छिपे व्यवहार में पैर रखने के लिए न्याय कर, और मिथ्या-वादी हृदय-वेधक-समान न बन। वरुण तेरा वज्र-पाश सब ओर स्थित हो। २३

१७ हे अग्नि गृहस्थ! तू आग की सेना-समान आपः (जल-आप्तों) में घुस, उन्हें जान, आपः का रक्षक तू मेघ-जल की रक्षा करता हुआ घर-घर प्रदीपन-युक्त है, तेरी जीभ घी की गति पाये। २७

१८ हे यज्ञपति! व्यवहार में तेरा हृदय; प्राणों में अन्तःकरण हो। औषधि और जल तुझे मिलें। क्योंकि हम तुझे यज्ञ की सूक्त-उक्ति वाले, अन्न-स्तुति-वचन में तुझे सत्य वाणी से रखते हैं। २५

१६ हे आप्त देवियो! तुम्हारा यह गर्भ लोक गृहाश्रम है उसे सुप्रीति-रीति-युक्त रक्खो। हे सोम देव गृहस्थ! यह तेरा लोक है उसमें ज्ञान-कल्याण-शान्ति-शिक्षा-रक्षा पा। २६

२० हे गर्भधारक नित्य कमनीय पति! तू नित्य संचयी-कमनीय है, विद्वानों में प्रदीप्त है। हे पतिदेव! मैं देव-कामी-मनुष्यों का किया पाप न पाऊँ, नाना अपराध-हिंसा से मुझे बचा। २७

३२१ दस मास का गर्भ जरायु-सहित चले जैसे यह वायु-समुद्र काँपते-बढ़ते हैं, ऐसे ही यह दस मास का गर्भ जरायु के साथ सरक कर बाहर आये। २८

२२ यस्यै ते यज्ञियः गर्भः यस्यै योनिः हिरण्ययी।
अङ्गानि अह्रुता यस्य तं मात्रा सं अजीगमम् स्वाहा ।२९
२३ पुरुदस्मः विषुरूपः इन्दुः अन्तः महिमानं आनञ्ज धीरः।
एकपदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीं अष्टापदीं भुवना अनु प्रथन्ताम् ॥ ३०
२४ मरुतः यस्य हि क्षये पाथः दिवः विमहसः। सः सुगोपातमः जनः॥ ३१
२५ मही द्यौः पृथिवी च नः इमं यज्ञं मिमिक्षताम्। पिपृतां नो भरीमभिः॥ ३२
२६ आतिष्ठ वृत्रहन् रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी। अर्वाचीनं सु ते मनः ग्रावा कृणोतु वग्नुना।
उपयामगृहीतः असि इन्द्राय त्वा षोडशिने एषः ते योनिः इन्द्राय त्वा षोडशिने ।। ३३
२७ युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा नः इन्द्र सोमपाः गिरां उपश्रुतिं चर।
उप० [शेष २६ के समान] ।३४
२८ इन्द्रं इत् हरी वहतः अप्रतिधृष्टशवसम्। ऋषीणां च स्तुतीः उप यज्ञं च मानुषाणाम्।
उप० [शेष २६ के समान]।। ३५
२९ यस्मात् न जातः परः अन्यः अस्ति यः आविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सं रराणः त्रीणि ज्योतींषि सचते सः षोडशी ।। ३६
३० इन्द्रः च सम्राट् वरुणः च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुः अग्रे एतम्।
तयोः अहम् अनु भक्षं भक्षयामि वाग् देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ।।३७
३१ अग्ने पवस्व स्वपाः अस्मे वर्चः सुवीर्यम्। दधद् रयिम् मयि पोषम्।
उपयामगृहीतः असि अग्नये त्वा वर्चसे एषः ते योनिः अग्नये त्वा वर्चसे।
अग्ने वर्चस्विन् वर्चस्वान् त्वं देवेषु असि वर्चस्वान् अहं मनुष्येषु भूयासम् ।। ३८
३२ उत्तिष्ठन् ओजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः। सोमम् इन्द्र चमू सुतम्।
उपयामगृहीतः असि इन्द्राय त्वा ओजसे एषः ते योनिः इन्द्राय त्वा ओजसे।
इन्द्र ओजिष्ठ ओजिष्ठः त्वं देवेषु असि ओजिष्ठः अहं मनुष्येषु भूयासम् ।। ३९
३३ अदृश्रम् अस्य केतवः विरश्मयः जनान् अनु। भ्राजन्तः अग्नयः यथा।
उपयामगृहीतः असि सूर्याय त्वा भ्राजाय एषः ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय।
सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठः त्वं देवेषु असि भ्राजिष्ठः अहं मनुष्येषु भूयासम् ।४०
३४ उत् उ त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्। उपयाम-
गृहीतः असि सूर्याय त्वा भ्राजाय एषः ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१
३५ आजिघ्र कलशं महि आ त्वा विशन्तु इन्दवः।
पुनः ऊर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्व उरुधारा पयस्वती पुनः मा आविशतात् रयिः ४२

# वैदिक दैनन्दिनी मार्गशीर्ष २०५० विक्रम

| तिथि | नक्षत्र | वार | तारिका | व्यायाम | भ्रमण | स्नान | सन्ध्या | प्राणायाम | हवन | स्वाध्याय |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | इस में प्रति-दिन हाँ या न भरिये। | | | | | | |
| कृ० १ | रोहिणी | मङ्गल | नव० ३० | | | | | | | |
| २ | मृगशिरा | बुध | दिस० १ | | | | | | | |
| ३ | आर्द्रा | गुरु | २ | | | | | | | |
| ४ | पुनर्वसु | शुक्र | ३ | | | | | | | |
| ५ | पुष्य | शनि | ४ | | | | | | | |
| ६ | आश्लेषा | रवि | ५ | | | | | | | |
| ७ | मघा | सोम | ६ | | | | | | | |
| ८ | पूर्वाफल्गुनी | मङ्गल | ७ | | | | | | | |
| ९ | हस्त | बुध | ८ | | | | | | | |
| ११ | चित्रा | गुरु | ९ | | | | | | | |
| १२ | स्वाति | शुक्र | १० | | | | | | | |
| १३ | विशाखा | शनि | ११ | | | | | | | |
| १४ | अनुराधा | रवि | १२ | | | | | | | |
| ३० | ज्येष्ठा | सोम | १३ | | | | | | | |
| शुक्ल १ | मूल | मंगल | १४ | | | | | | | |
| २ | पूर्वाषाढा | बुध | १५ | | | | | | | |
| ३ | उ० अषाढा | गुरु | १६ | | | | | | | |
| ४ | श्रवण | शुक्र | १७ | | | | | | | |
| ५ | धनिष्ठा | शनि | १८ | | | | | | | |
| ६ | शतभिषज् | रवि | १९ | | | | | | | |
| ७ | पू० भाद्रपदा | सोम | २० | | | | | | | |
| ८ | उ० ,, | मंगल | २१ | | | | | | | |
| ९ | रेवती | बुध | २२ | | | | | | | |
| १० | अश्विनी | गुरु | २३ | | | | | | | |
| ११ | ,, | शुक्र | २४ | | | | | | | |
| १२ | भरणी | शनि | २५ | | | | | | | |
| १३ | कृत्तिका | रवि | २६ | | | | | | | |
| १४ | रोहिणी | सोम | २७ | | | | | | | |
| १५ | मृगशिरा | मंगल | २८ | | | | | | | |

वर्ष १७ अंक १२ सहः मार्गशीर्ष ०५० वि० **वेदज्योति** दिसम्बर १९९३ न० ६६२१। ६ ... लख...

श्रीमन् नमस्ते; आपका वर्ष २-१२-९३ को पूर्ण हो चुका है; कृपया वार्षिक शुल्क ४०) शीघ्र भेजि...

## नया प्रकाशन

वेदमेंसबविद्या...

अथर्ववेद स...

संस्कृत-प्रबोध ...

साम वंश ब्राह्मण, ब...ताध्या...
सं हितोपनिषद्, प्रत्येक ...

शतपथ भाग ३ प्रत्ये...

पारिजातखण्डन ...

अष्टाध्यायी २०)

सम्पादक वीरेन्द्र सरस्वत...

## समाचार

विश्व वेद परिषद् की प्रबन्ध-समिति की बैठक वेद-सदन लखनऊ में रवि. १४-११-१९९३ को हुई जिस में डा० सुधीर कुमार गुप्त उपाध्यक्ष बनाये गये। —मन्त्री

आर्यसमाज सान्ताक्रूज बम्बई में वेद-प्रचार-सप्ताह यजुर्वेद-पारायण यज्ञ २९-९ से ५-१०-९३ तक हुआ। गणेशोत्सव १९ से २९ सितम्बर तक हुआ।

अ... में ऋषि-मेला २७ से २९ नवम्बर १९९३, संस्कार प्रशिक्षण १ से १० नवंबर तक हुआ। उसी अवसर पर वहीं पर आर्यसमाज फुलेरा (जयपुर) द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती पुरस्कार १९९३, १००००) श्री सुधाकर चतुर्वेदी बैंगलोर को दिया गया। १.११ से चतुर्वेद पारायण यज्ञ हुआ।

...है कि आ० क्षेमचन्द्र सुमन दिल्ली का २३-१०-९३को; स्वा.सुखानन्द, दारानगर का देहान्त होगया।

... ... को महाराष्ट्र में आये भूकम्प में सहायतार्थ आर्यसमाज सान्ताक्रूज ... पहुंचा।

...र, उस्मानाबाद में १३ नवम्बर को सायं फिर भूकम्प आया।

... गुरुकुल होशंगाबाद में क्रियात्मक योग-प्रशिक्षण-शिविर ४ से ११ दिसम्बर तक लगेगा। ... ११-१२ दिसम्बर को होगा।

... आदि ६ राज्यों में विधान सभाओं के चुनाव नवम्बर में दीवाली बाद सम्पन्न हुए।

... में छिपे आतङ्कवादियों ने १६.११.९३को ३२ दिन बाद चुपचाप हथियार डाल दिये।

... शाह के बलिदान से गुजरात सरकार ने गो-वंश-हत्या पर पाबन्दी लगाई।

प्रेषक— प्रबन्धक अनिलकुमार, आदर्श प्रेस, सी ८१७ महानगर, लखनऊ ६ दूरभाष ७३५०१।

सेवा में, संख्या, श्री लाइब्रेरियन गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार)